पाठ्यक्रमः – पंचमहाभूत

इकाई : 1 – शरीर संरचना परिचय

इकाई : 2 – पंचमहाभूत परिचय

इकाई : 3 – जीवन शैली के रोग एवं पंचमहाभूत

इकाई : 4 – स्वास्थ्य की परिभाषा लक्षण – रक्षण – उपाय, पथ्य, अपथ्य एवं विरूद्ध आहार

इकाई : 5 – मिट्टी (पृथ्वी तत्व) का अर्थ, गुण एवं विभिन्न रोगों के महत्व

इकाई : 6 – जल तत्व का अर्थ, गुण एवं विभिन्न रोगों में महत्व

इकाई : 7 – जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न पट्टीयां, यंत्र एवं सेक का प्रयोग

इकाई : 8 – सूर्य किरण चिकित्सा (अग्नितत्व) का अर्थ, परिभाषा एवं महत्व तथा विभिन्न रोगों में उपचार हेतु 7 रंगों का प्रयोग

इकाई : 9 – वायु तत्व का अर्थ (विधि एवं उपयोगिता)

इकाई : 10 – उपवास (आकाश तत्व) का अर्थ, महत्व एवं विभिन्न प्रकार के उपवास विधियां

इकाई : 11 – प्राक्रतिक चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न यंत्रों का परिचय

इकाई : 12 – एनिमा विधि, यंत्र प्रयोग एवं उसमें प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के द्रव्य

इकाई : 1 - शरीर संरचना परिचय

खण्ड संरचना

प्रस्तावना

उद्देश्य

1.1 कोशिका शरीर की इकाई

1.2 कोशिका

1.3 उत्तक

1.4 पाचन तंत्र

1.5 श्वसन तंत्र

1.6 रूधिर परिसंचरण तंत्र

1.7 पेशीय तंत्र

1.8 अस्थि तंत्र

1.9 तंत्रिका तंत्र

1.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

1.11 संदर्भ सूची

प्रस्तावना

किसी भी चिकित्सा से पूर्व यह आवश्यक है कि शरीर की संरचना एवं क्रियाविधि का ज्ञान हो। रोग के विान एवं उपचार के लिए वह नितान्त आवश्यक है। हालांकि प्राकृतिक चिकित्सा एक योग उपचारक के लिए गहन ज्ञान की इतनी आवश्यकता नहीं है। परन्तु शरीर संरचना के आधार पर भूत ज्ञान के बिना चिकित्सक के अन्दर आत्मविश्विास नहीं आ सकता।

उद्देश्य

शरीर संरचना इकाई में पाठक गणों को कोशिका, उत्तक एवं तंत्र के संदर्भ में मूलभूत ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। जानकारी के विस्तार के लिए शरीर संरचना के साथ साथ शरीर

क्रिया किसी आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर को विखण्डित रूप से नहीं देखा जाता। सम्पूर्ण तंत्रों एवं अंगों का संबंध एक दूसरे के परोक्ष है। इस इकाई में अलग अलग तंत्रों के विषय में पाठक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 कोशिका शरीर की इकाई

क्रियाविधि के अनुसार मनुष्य का शरीर विभिन्न तंत्रों (System) से मिलकर बना होता है। ये विभिन्न तंत्र अंगों से मिलकर बनते है। अंग (Organ) विभिन्न उत्तकें (Tissues) से मिलकर बनते है। उत्तकों का निर्माण कोषों (Calls) से मिलकर बनता है। इस प्रकार एक कोशिका (Cell) शरीर की रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है। उत्तक, अंग व तंत्र कोषों से मिलकर बनते है।

कोशिका –– अंग––तंत्र––शरीर

Cell -Organ--System---Body

रचनात्मक एवं क्रियात्मक रूप से समान कोशिकाओं का समूह उत्तक कहलाता है।

1.2 कोशिका

मानव शरीर के विभिन्न उत्तकों एवं अंगों के अनुसार कोशिका की रचना एक क्रिया अलग अलग होती है। साधारणतः एक कोशिका कोशिका, जीवद्रव्य, कोशिका अंगकों से मिलकर बनी होती है।

मानव शरीर में तंत्रिका कोशिका सबसे बड़ी कोशिका होती है। रक्त कोशिका लगभग 7.0 um व्यास के आकार की होती है।

1. कोशिका झिल्ली – कोशिका झिल्ली प्रोटीन व वसा के मुख्य रूप से बनी होती है। इसकी विशेष बात यह है कि यह विभिन्न द्रव्यों के प्रति अर्ध पारगमी होती है। कोशिका झिल्ली कोशिका को सुरक्षा प्रदान करने का कार्य करती है। कोशिका झिल्ली के ठीक नीचे जीवद्रव्य झिल्ली भी होती है।

2 जीव द्रव्य – जीव द्रव्य में संवेदनशीलता का विशेष गुण होता है। सभी कोशिका अंगक विभिन्न रसायनिक कण (प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, लवण, अकार्बनिक पदार्थ) जीवद्रव्य में उपस्थित होते है। विभिन्न उपाचयी क्रियाओं को जीवद्रव्य में सुलभ वातावरण प्रदान करता है।

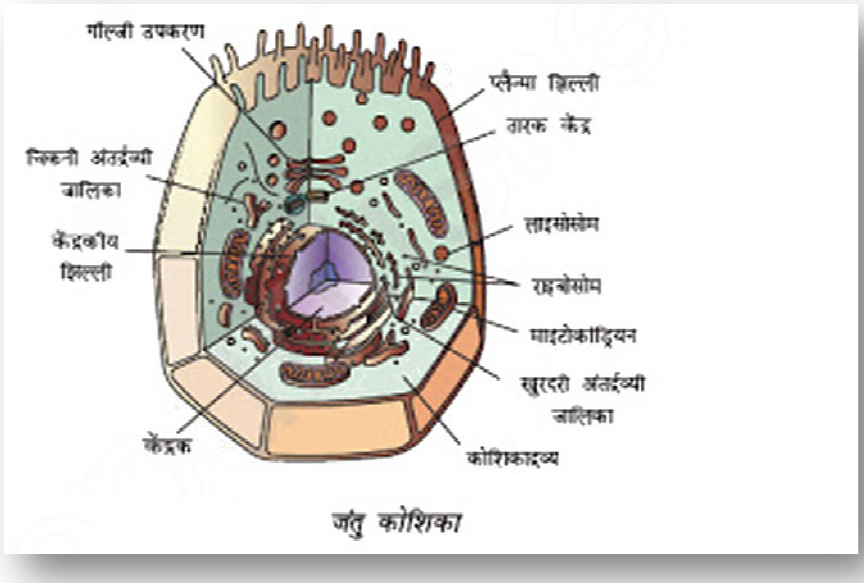
गॉल्जी उपकरण
प्लैज्मा झिल्ली
तारक केंद्र
चिकनी अंतर्द्रव्यी जालिका
लाइसोसोम
केंद्रकीय झिल्ली
राइबोसोम
माइटोकांड्रियन
खुरदरी अंतर्द्रव्यी जालिका
केंद्रक
कोशिकाद्रव्य

जंतु कोशिका

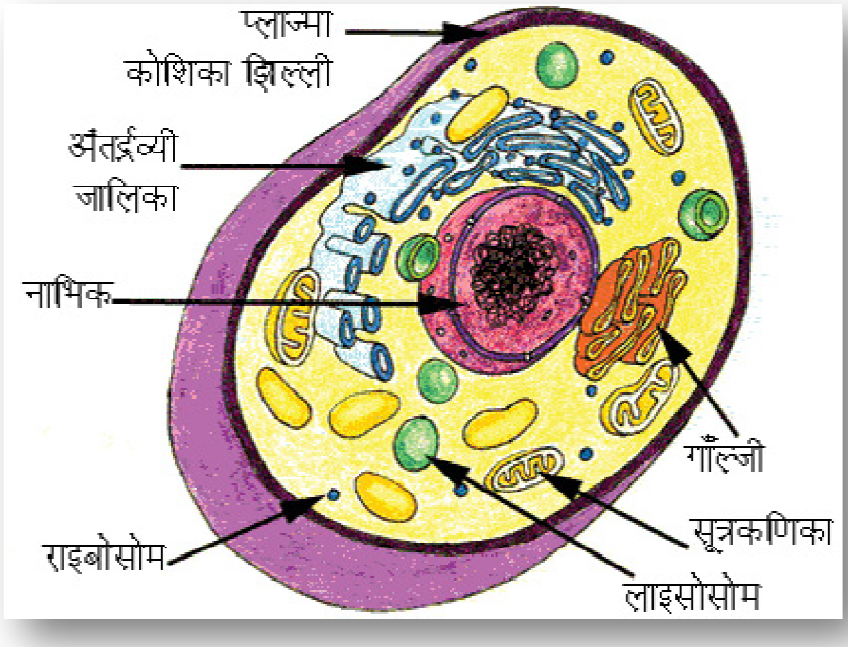
प्लाज्मा
कोशिका झिल्ली
अंतर्द्रव्यी
जालिका
नाभिक
गॉल्जी
सूत्रकणिका
राइबोसोम
लाइसोसोम

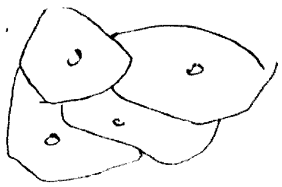

मुख की भीतरी झिल्ली कोशिका

उपकलीय उत्तक

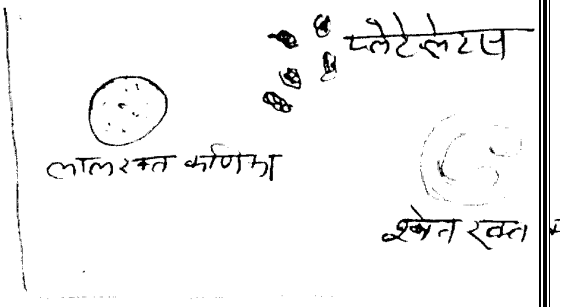

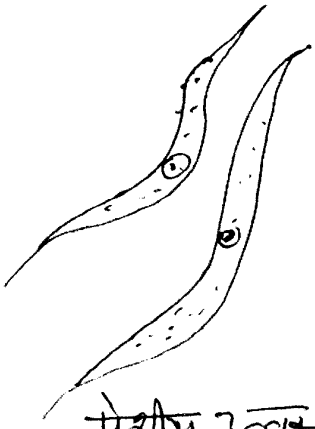

पेशीय उत्तक

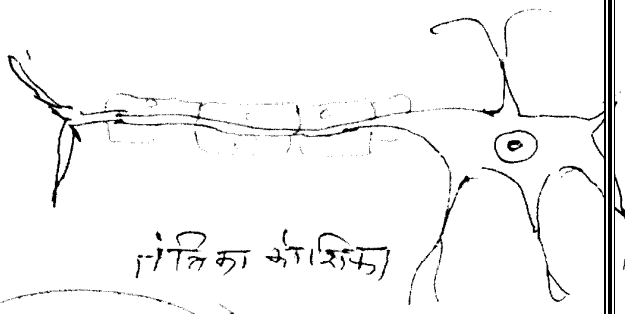

तंत्रिका कोशिका

चित्र - 1

कोशिका अंशक – एक कोशिका विभिन्न ऊतकों से मिलकर बने होते है।

3.1 अन्तर्द्रव्यी जालिका –

एक जालिका नलिकाकार रचना केन्द्रक के चारों और फैली होती है। कुछ जालिकाओं में राइबोसोम कण चिपके होते है। कुछ जालिकाएं बिना राइबोसोम के रूप से चिकने होती है।

कार्य – राइबोसोम युक्त जालिकाऐं प्रोटीन के निर्माण में सहयोगी होते हैं जबकि चिकनी जालिकाएं वसा कणों का संश्लेषण करती है। पेशिय तंतुओं के सिकुड़ने व फैलने में भी ये जालिकाएं सहयोगी है।

3.2 माइटाकोन्ड्रिया (Mitochondria)

ऊर्जा के कणों का संश्लेषण करने के कारण माइटोकोन्ड्रिया को विद्युत ग्रह (Power House) भी कहते है। प्रोटीन व लिपिड़ उपाचय में इनका विशेष कार्य श्वसन क्रिया इन अंगकों के बिना नहीं हो सकती।

3.3 लाइसोसोम (Lysosomes)

इनमें एन्जाइम भरे होते है। जब शरीर अंगों अथवा कोषों को ऊर्जा की आवश्यकता होती है तो ये अंगक टूटकर पाचन क्रिया द्वारा ऊर्जा प्रदान करते है। जीवाणु भक्षी भी होते है। इन्हें आत्महत्या की थैलर भी कहा जाता है।

3.4 साइबोसोम –

प्रोटीन के संश्लेषण में इनका विशेष कार्य है।

3.5 डिक्टियोसोम (Dyctiosome)

इन्हें पादप कोशिका में गोल्जीकाय के नाम से जाना जाता है। का बौहाइड्रेट के संश्लेषण का कार्य करते है।

3.5 नाभिका (Nycleus) कोशिका विभाजन में विशेष सहयोग है।

1.4 पाचन तंत्र (Digestine System)

ऐसा तंत्र जो भोजन के ग्रहण, पाचन, अवशोषण एवं बचे हुए अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से निष्कासन का कार्य करता है पाचन तंत्र कहलाता है। भोज्य पदार्थों को पचाने के लिए विभिन्न पाचक रसों (एन्जाइमों) की आवश्यकता पड़ती है। इन पाचक रसों का

स्त्रावण मुख से ही प्रारम्भ हो जाता है, इसलिए भोजन को खूब चबाकर खाना चाहिए। भोजन के चबाते चबाते उसमें मिठास आने लगता है। इस मिठास का कारण है कि भोजन में उपस्थित स्टार्च, ग्लूकोज में परिर्तित होने लगती है। भोजन ग्रहण के आधा घंटे पहले तक व डेढ़ घण्टे पश्चात का पानी नहीं पीना चाहिए क्योंकि पाचक रस जल में विलय होकर भोजन के पाचन की क्रिया बिगाड़ देते है।

पोषक एवं पोषक तत्व (Nutrition and Nutrients) भोजन में उपस्थित ऐसे पदार्थ जो शरीर ऊर्जा प्रदान करते है, टूट फूट कोषों की मरम्मत करते है एवं विभिन्न अवयवों (विटामिन एवं खनिज पदार्थ) की पूर्ति करते है। ये नियमन है – प्रोटीन – कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, मिन्निरह एवं जल।

पाचन (Digestion) – भोजन के अवयवों का जटिल रूप से सरल में (Complex to simple) टूटना पाचन कहलाता है।

पाचन तंत्र के अंग – मनुष्य का पाचन तंतु निग्मन अंगों से मिलकर बना है।

1 मुख (Mouth) – जीभ, दांत, तालु, एवं लार ग्रंथियां

2 गलनली (Oesphagus)

3 अमाशय अथवा पाकस्थली

4 आंत —— छोटी आंत —— 1 पक्वाश्य 2 जजुनम 3 इलियम

—— बड़ी आंत 1 सीकम 2 कोलोन 3 मलाशय

5 गुदा द्वार

6 पाचन ग्रंथिया – लार ग्रंथि

यकृत

पित्ताशय

अग्नाशय

1.3 उत्तक (Tissue)

रचना, आकार एवं कार्य में समान कोशिकाओं का समूह उत्तक कहलाता है। विभिन्न उततक मिलकर अंगों का निर्माण करते हैं मानव शरीर में चार प्रकार के उत्तक होते है –

1 त्वचीय उत्तक – शरीर व शरीर के ये विभिन्न प्रकार के होते है। मुख्य कार्य शरीर के अंगों की रक्ष कर व पदार्थों का आदान प्रदान करना है। मुख्यतः साधारण एव जोड़ी, ग्रन्थियां उत्तक विशेष है।

2 संयोजी उत्तक – वसीय उत्तक, वायवीय उत्तक, असिि, उपास्थि, रक्त एवं अन्य अंगों को आपस में मिलाने वाले उत्तक संयोजी उत्तक कहलाते है।

3 पेशिय उत्तक – एच्छिक अनैच्छिक एवं ह्रदय मांसीय (Voluntrary Involuntary an cardia muscle tissue) पेशीय उत्तक हैं। हड्डियों पर स्थित पेशियों को अपनी इच्छा द्वारा चला सकते हैं इसलिए इसे एच्छिक पेशीय उत्तक कहते हैं। शरीर के आन्तरिक अंगों को अपनी इच्छा अनुसार नहीं चला सकते इसीलिए इसे अनैक एच्छिक उत्तक कहते है। ह्रदय की मांस पेशियां एक बार धड़क प्रारम्भ करती है व जीवन प्रयन्त धड़कती रहती है।

4 तंत्रिका उत्तक – मस्तिष्क, मेरूरज्जु एवं अन्य शाखान्वित तंत्रिकाएं मिलकर तंत्रिका उत्तक का निर्माण करते हैं। समस्त इंन्द्रियों का ज्ञान इसी तंत्रिका उत्तक द्वारा होता है। मस्तिष्क एवं मेरूरज्जु आिवा सुषुम्ना तंत्रिका उत्तक का मुख्य भाग बनाते हैं।

पाचन तंतु के मोटे रूप में आहार नाल के नाम से जाना जाता है। आहार नाल मुख से प्रारम्भ होकर गुदाद्वार तक रचना है।

मुख – मुख में पायी जाने वाली लार ग्रंथिया लसलसे स्त्राव द्वार मुख को तर बनाये रखने के साथ साथ पाचक रस का स्त्रवण कर स्टार्च का पाचन करने में सहायक है।

Starch - Ptylen/ph 68-- glucose

साथ में 32 दांत भोजन को टुकड़ों में तोड़ते हैं। 16 नीचे के जबड़े व 13 उपरी जबड़े में होते हैं। इन कुतरने, फाड़ने, एवं चबाने वाले दांत से यदि काम न लिया जाये तो आंतों को अधिक काम करना पड़ता है।

जीभ के अलग अलग भाग अलग अलग स्वाद ग्रहण करने का काम करते हैं। इसमें

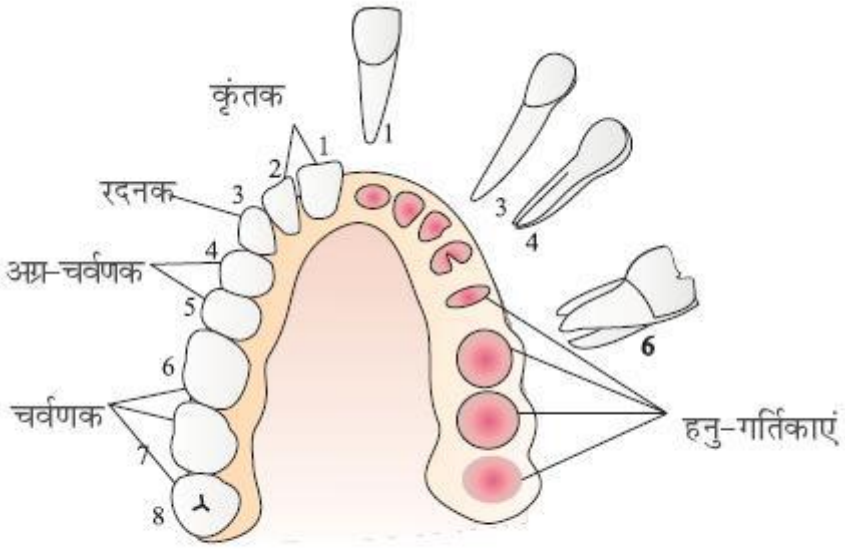

एक ओर हनु में विभिन्न प्रकार के दंत-विन्यास और दूसरी ओर हनु-गर्तिकाओं को दर्शाते हुए।

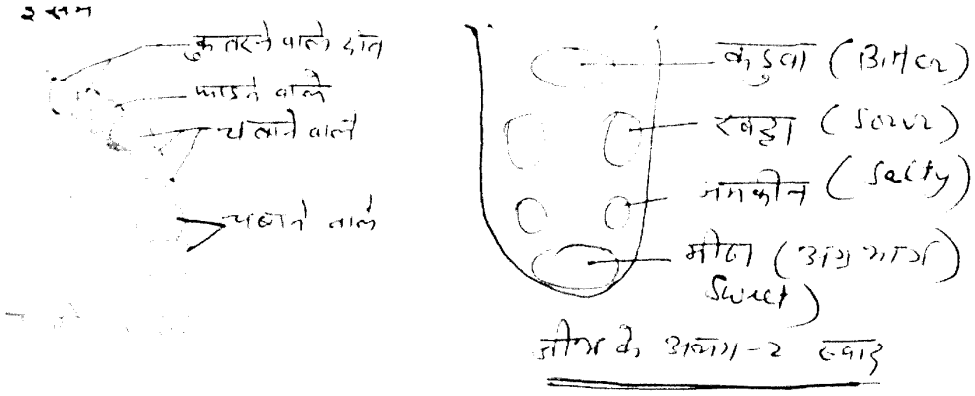

ग्रासनली (Oesophegus) – मुख के पश्चात ग्रासनली से प्रारम्भ होकर आमाशंय तक की नाल सादृश्य रचना (लगभग 10 से 12 इंच तक) होती है। इसमें क्रमाकुचन गति द्वारा भोजन नीचे पहुंचता है।

अमाशय – J आकार की नाशपती सादृश्य थैलीनुमा रचना अमाशय कहलाती है। इसकी 2 लीटर भोजन धारक क्षमता है। यहां पर भोजन 3 से 4 घंटे तक पचकर आंतों को भेज दिया जाता है। ग्रासनली एक आमाशय के मध्य एक वाल्व होता है जो भोजन को वापस उपर आने में रोकता है। उल्टी अथवा कुजल की अवस्था में यह वाल्व क्षण भर के लिए खुल जाता है।

छुद्रांत (Small Intestinal) – आमाशय में प्रोटीन का पाचन होता है, इसके पश्चात यह अर्द्धपचित आहार, छुद्रास में भेज दिया जाता है। पाचन की दृष्टि से यही भाग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यकृत्र, पित्ताशय एवं अग्नाशय द्वारा छोडे गये समस्त रस छुद्रांत के प्रारम्भिक भाग पक्वाश्य में छोड़ दिये जाते है जो कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन व वसा का पाचन करते हैं।

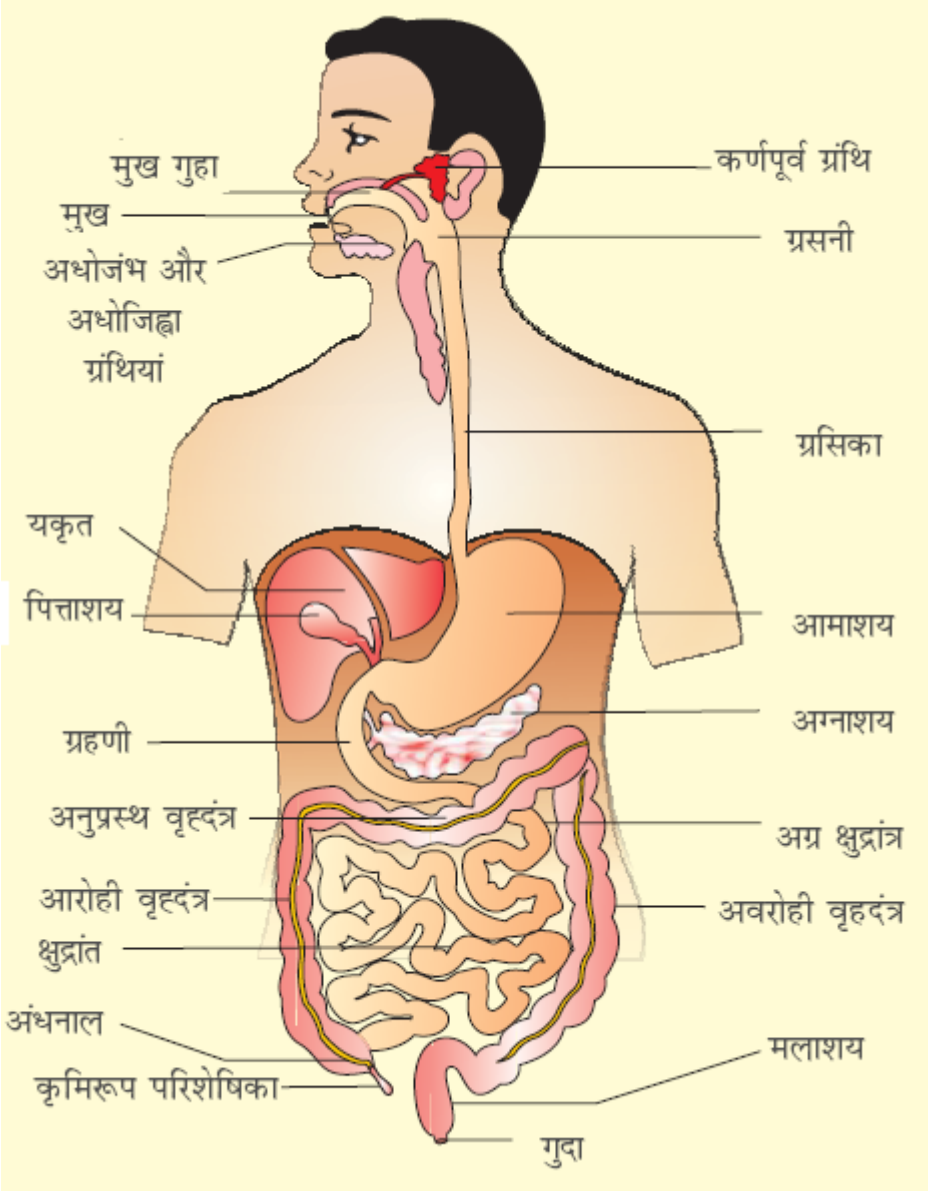

पाचन तंत्र का सामान्य चित्र

क्षुद्रांत्र की लम्बाई लगभग 20–20 फुट एवं चौड़ाई 1.5 ईच होती है। पित्ताशय द्वारा छोड़ा गया रस वसा के पाचन में सहयोगी है। साथ में यह वसा के कणों को जल में मिलाकर छोटे छोटे कणों में तोड़ देता है। जिसे वसीय अम्ल कहते हैं। अग्नाशय द्वारा पाचन इस प्रकार है –

वसा $\xrightarrow{\text{एन्जाइम लाइपेज}}$ वसीय अम्ल + ग्लिसरोल

प्रोटीन $\xrightarrow{\text{ट्रिपसिन/पेप्सिन}}$ Dipeptid/pepsinogeos

Nuclue Acids $\xrightarrow{\text{Nuclease}}$ Nuletides - Nucloosides

आंतों के उत्तकों द्वारा पाचक रसों का स्त्रवण एवं पाचन इस प्रकार से होता है

माल्टोज माल्टेज ग्लूकोज

लेक्टोस लेक्टेस ग्लुकोज+ग्लेक्टोज

सुक्रोज सुक्रेज ग्लुकोज + फुक्टोज

डाइपेप्टाइन डाइपेप्टाइडेज एमीनो एसिड

पाचन तंत्र का त्रिक नलिका तंत्र – पक्वाशय में खुलने वाली पाचन ग्रंथियां यकृत, पित्ताशय एवं अग्नाशय का त्रिक नलिका तंतु बहुत ही महत्वपूर्ण है। यकृत द्वारा छोड़ा गया रस पहले पित्ताशय में आता है यह यकृत से यकृत नलिका द्वारा पित्ताशय में पहुंचता है। पित्ताशय से पित्तनलिका द्वारा यह रस ऐसी नलिका से जुड़ता है जो यकृत से आ रही होती है। यह नलिका संयुक्त पित्त नलिका कहलाती है। यह संयुक्त पित्त नलिका अग्नाशय रस को लाने वाली अग्नाशय नलिका साथ मिलकर एक फूली हुई नलिका द्वारा पक्वाशय में खुलती है। यहां पर तीन ग्रथियों का राज का स्रवज होकर तीनों का पाचन करता है। इसलिए पक्वाशय पाचन तंत्र की पाचन की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण भाग है।

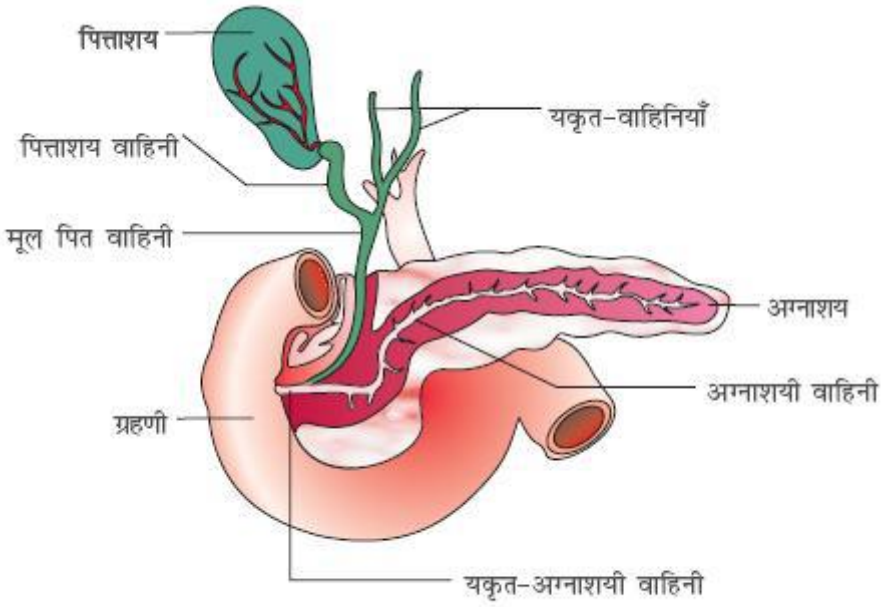

यकृत, पित्ताशय और अनाशय का वाहिनी-तंत्र

नलिका तंत्र

यकृत मनुष्य के शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि है। यह 24 घंटे में आधा लीटर से भी अधिक पाचन रस का स्त्रवण करता है। यह मध्य उदर में दाई और स्थित होता है। यकृत का भार 1.2 से 1.5 किलो तक होता है। यकृत से दो टुकड़ों में होता है।

1.5 श्वसन तंत्र

ऐसा तंत्र जो सांस के लेने, छोड़ने व आक्सीजन लेने व कार्बन डाई ऑक्साइड को फेफेड़ों द्वारा शरीर से बाहर निकालने में कार्य करता है। श्वसन तंत्र कहलाता है। इन गैसों के विनिमय की क्रिया फेफेड़ों में उपस्थित फुफ्फुस कोष करते हैं।

श्वसन क्रिया – भोजन के ऑक्सीकरण की क्रिया श्वसन क्रिया कहलाती है। इस क्रिया में ऊर्जा का उत्सर्जन होता है जो शरीर के विभिन्न कार्यों में सहयोगी है।

श्वसन तंत्र के अंग – श्वसन तंत्र के निम्नन अंग है।

1 नासिका द्वार
2 नासिका नली
3 नसिका गुहा
4 कण्ठ अथवा गल कक्ष
5 स्वर यंत्र
6 वायु नली
7 श्वास नलिका
8 फेफेड़े
9 वायु कोषाऐं
10 वक्षोदर मध्यस्थ पेशी अथवा महा प्राचीरा

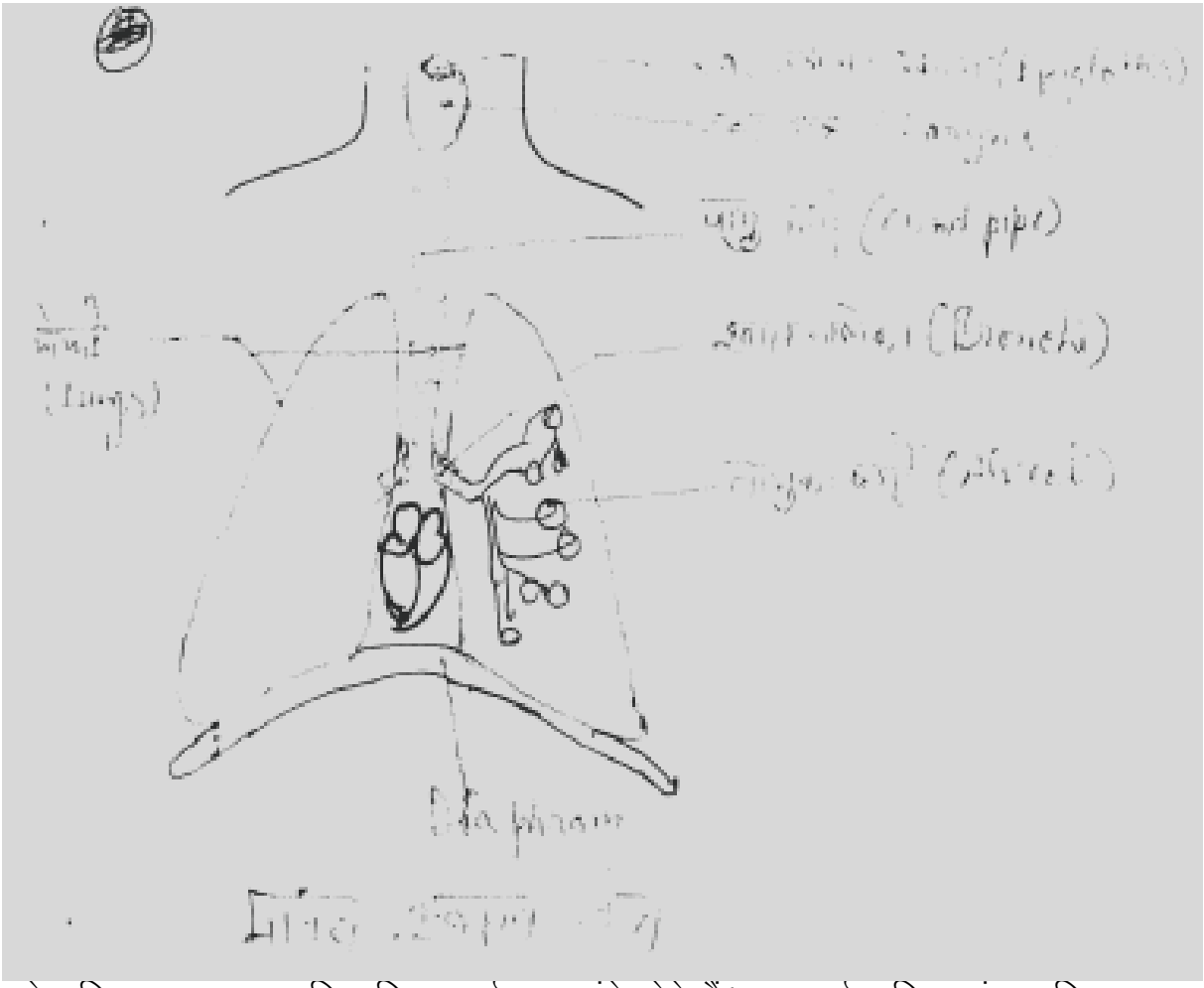

दो नसिका रन्द्र एक नासिकास्थित पर्दा द्वारा बंटे होते हैं। यह पर्दा अस्थि एवं उपास्थि से मिलकर बनी होती है। नासिका द्वारा यह मार्ग पीछे नासिका कक्ष में आकर खुंलता है। यह काफी संवेदनशील भाग है क्योंकि पांचों कमेन्द्रियों (नाक, कान, जीभ, ने एवं त्वचा) से संबंधित नस, नडियां एवं तंत्रिकाएं इस कक्ष के पास से होकर गुजरती हैं। यह भाग से विजातीय द्रव्यों (श्लेष्मा एवं कफ) को साफ करते रहने से एकाग्रता ध्यान एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण शक्ति बढ़ती है।

नालिका कक्ष गल कक्ष के माध्यम से स्वर यंत्र में खुलता है। स्वर यंत्र (Voice box अथवा Larynx Card) एक ढक्कण (एण्डिलोटिस) द्वारा ढका होता है। कुछ भी खाते, पीते अथवा निगलते वक्त यह ढक्कण बंद होकर वायुनली का रास्ता बंद कर देता है। वायु नली Cके आकार की उपास्थियों द्वारा सुरक्षित रहता है। वायुनली शाखान्वित होकर श्वासनली के माध्यम से फेफेड़ों में खुलती है।

फेफड़े – फेफड़े उपरी वक्ष गुहा के दोनों और फुफुसावरण द्वारा फसिलों के नीचे सुरक्षित रहते हैं। नीचे की ओर फेफड़े महाप्रचीरा पेशी पर टिकते हैं। फेफड़ों में वायु के विनिमय

के लिए कोष या थैलियां होते है। ये कोष एक महीन झिल्ली युक्त होते है। इस महीन झिल्ली द्वारा ही गैसों के दबाव के कारण आदान प्रदान सहज एवं प्राकृतिक रूप से होता है। इन्हीं कोष अथवा फेफड़ों की थैलियों में ऑक्सीजन व कार्बन डाई आक्साइड का आदान प्रदान होता है।

मनुष्य के फेफड़े वक्ष में पृष्ठ भाग पर मेरूदण्ड अधर भाग पर छाती की हड्डी व पसलियों के मध्य सुरक्षित होते हैं। नीचे की ओर महाशीरा पेशी से फेफड़े सटे रहते है।

श्वास के लेने व छोड़ने की क्रिया में यह डायफ्राम नीचे व उपर की ओर होता है। सामान्यतः इस श्वसन क्रिया में निम्मन चरण हैं –

1 फेफड़ों की थैलियों में ऑक्सीजन का घुलना व कार्बन डाई ऑक्साइड का फेफड़ों में छोडा जाना। यह कार्बन डाई ऑक्साइड श्वास द्वारा बहार छोड़ दी जाती है।

2 यह ऑक्सीजन रक्त कणिकाओं (RBC)व प्लाज्मा द्वारा सोख ली जाती है। व सम्पूर्ण शरीर को प्रवाहित की जाती है। आगे उत्तकों व कोशिकाओं द्वारा यह ऑक्सीजन काम में आती है।

3 ऑक्सीजन की ऑक्सीकरण क्रिया द्वारा कार्बन डाई ऑक्साइड मुक्त होकर रक्त कणिकाओं द्वारा फेफड़ों में जाकर छोड़ दी जाती है।

फेफेड़ों का हृदय का संबंध – हृदय सम्पूर्ण शरीर के अशुद्ध रक्त शिराओं द्वारा प्राप्त करता है। शिरा द्वारा प्राप्त यह रक्त हमारे हृदय के दायें आलिंद में एकत्र होता है। दाये आलिंद से दायें निलय में रक्त भेजा जाता है। इस दायें निलय से अशुद्ध रक्त शुद्धि करण के लिए फुफ्फुस धमनी द्वारा फेफेड़ों को भेजा जाता है फिर फेफेड़ों में परासरण एवं विसरण क्रिया द्वारा शुद्ध ऑक्सीकृत रक्त हृदय के बाये आलिंद द्वाराग्रहण कर लिया जाता है। फिर बाये आलिंद से बाये निलय को शुद्ध रक्त भेजा जाता है। तत् पश्चात बायें निलय द्वारा रक्त सम्पूर्ण शरीर को महाधमनियों द्वारा पम्प कर दिया जाता है। यही फेफड़ों व हृदय का संबंध है।

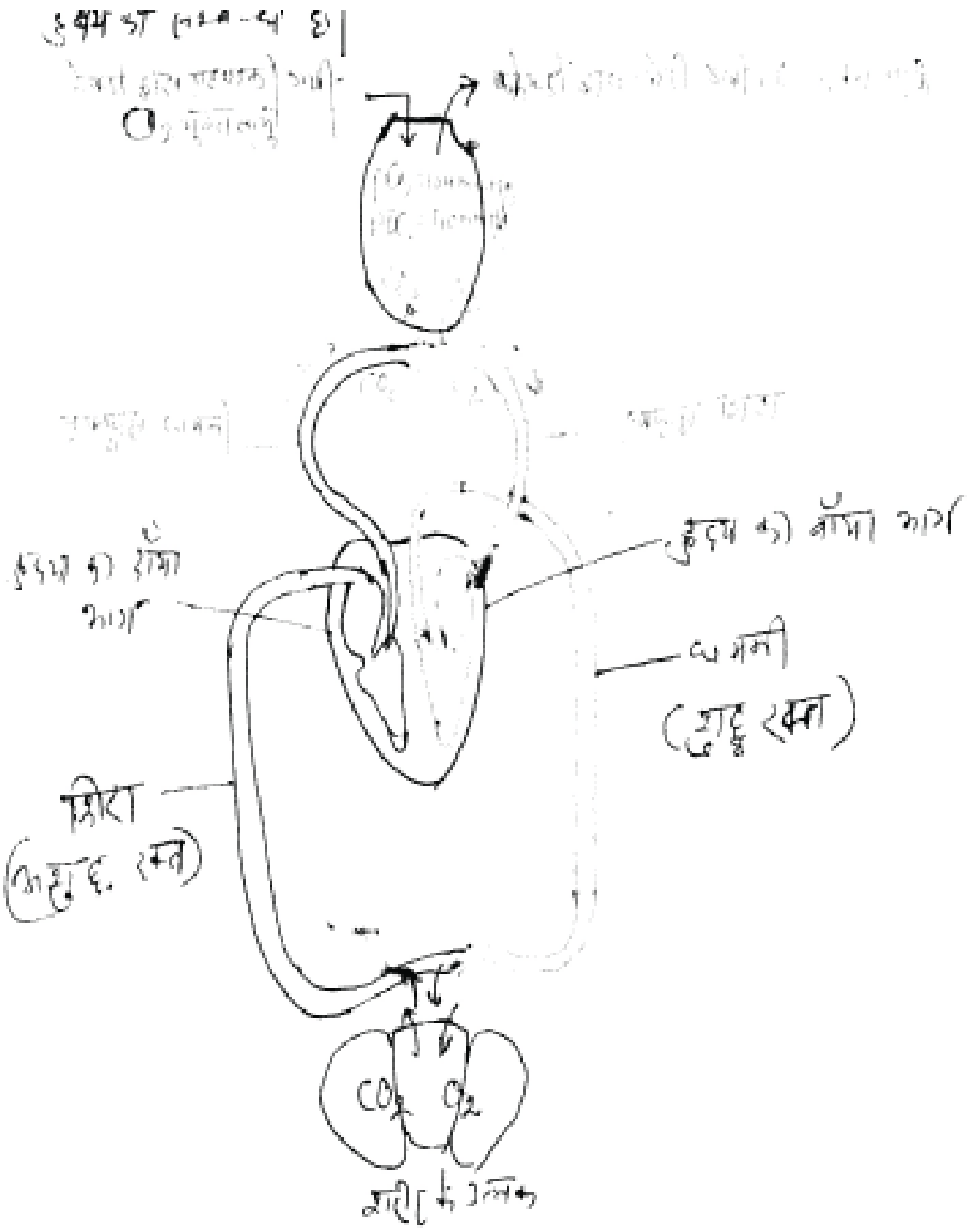

1.6 रूधिर परिसंचरण तंत्र –

हृदय रक्त वाहियों फेफड़ों सब शरीर में रक्त का नियमन जिस तंत्र द्वारा होता है उसे रूधिर परिसंचरण तंत्र कहते हैं। रक्त शरीर का सबसे तरल संयोजी ऊतक है। रक्त के

प्रवाह द्वारा ही सम्पूर्ण शरीर को ऑक्सीजन भोजन एवं अन्य आवश्यक अवयव प्राप्त होते है। इसी रक्त द्वारा शरीर क्रियाओं द्वारा अपशिष्ट पदार्थों का निष्कासन होता है।

रूधिर – रूधिर प्लाज्मा एवं रक्त कणिकाओं से निर्मित तरल पदार्थ प्लाज्मा कहलाता है। व ठोस भाग रक्त कणिकाएं कहलाती है।

प्लाज्मा – रक्त का 55 प्रतिशत भाग प्लाज्मा होता है। इस प्लाज्मा में 90 से 92 प्रतिशज जल होता है। 6–8 प्रतिशत प्रोटीन (फाइब्रोनोजन, ग्लोकोस, एल्यूमिन) होती है। Na^{+}, CA^{++}, Mg^{++},HCO_3^{-},Cl^{-} आदि खनिज प्लाज्मा में होते है। ग्लूकोज, एमिनो एसिड, वसा भी इसमें पाये जाते हैं।

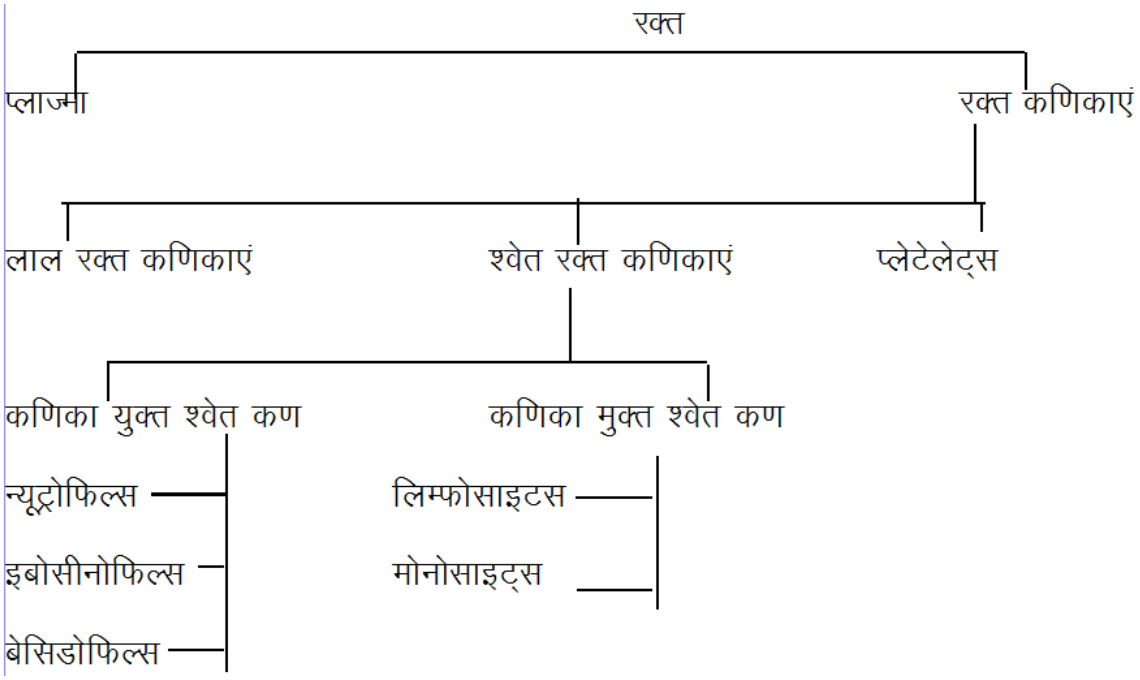

हृदय की रचना – दोनों फेफड़ों के बीच वक्ष गुहा के मध्य में हृदय स्थित होता है। नीचे के भाग से हृदय थोडा बाई और झुका होता है। हृदय एक द्वि–झिल्लीय आवरण हृदय आवरण द्वारा सुरक्षित होता है। मानव हृदयके चार भाग होते है दो आलिन्द व दो निलय दोनों आलिदों व दो निलय को एक पतली मांसल रचना अन्त आलिंद खण्ड द्वारा बंटे होते हैं। दोनों निलय एक मोटी मजबूत मांसल रचना अन्न निलय खण्ड द्वारा बंटे होते हैं। दोनों और के आलिंद अपनी ओर के निलय वाल्वों द्वारा खुलते है। यह वाल्व रक्त को वापस आलिदों में प्रवाह से रोकते हैं।

सम्पूर्ण हृदय विशेष प्रकार की मांसपेशियों हृदय मांसपेशियां से ढका होता है। एक सुक्ष्म रचना सम्पूर्ण हृदय को गति के नियम के लिए दाये आंनिद में स्थित होती है। जिसे गति निर्धारित कहते है। यहां से हृदय के स्पदंन का नियम प्रारम्भ होता है।

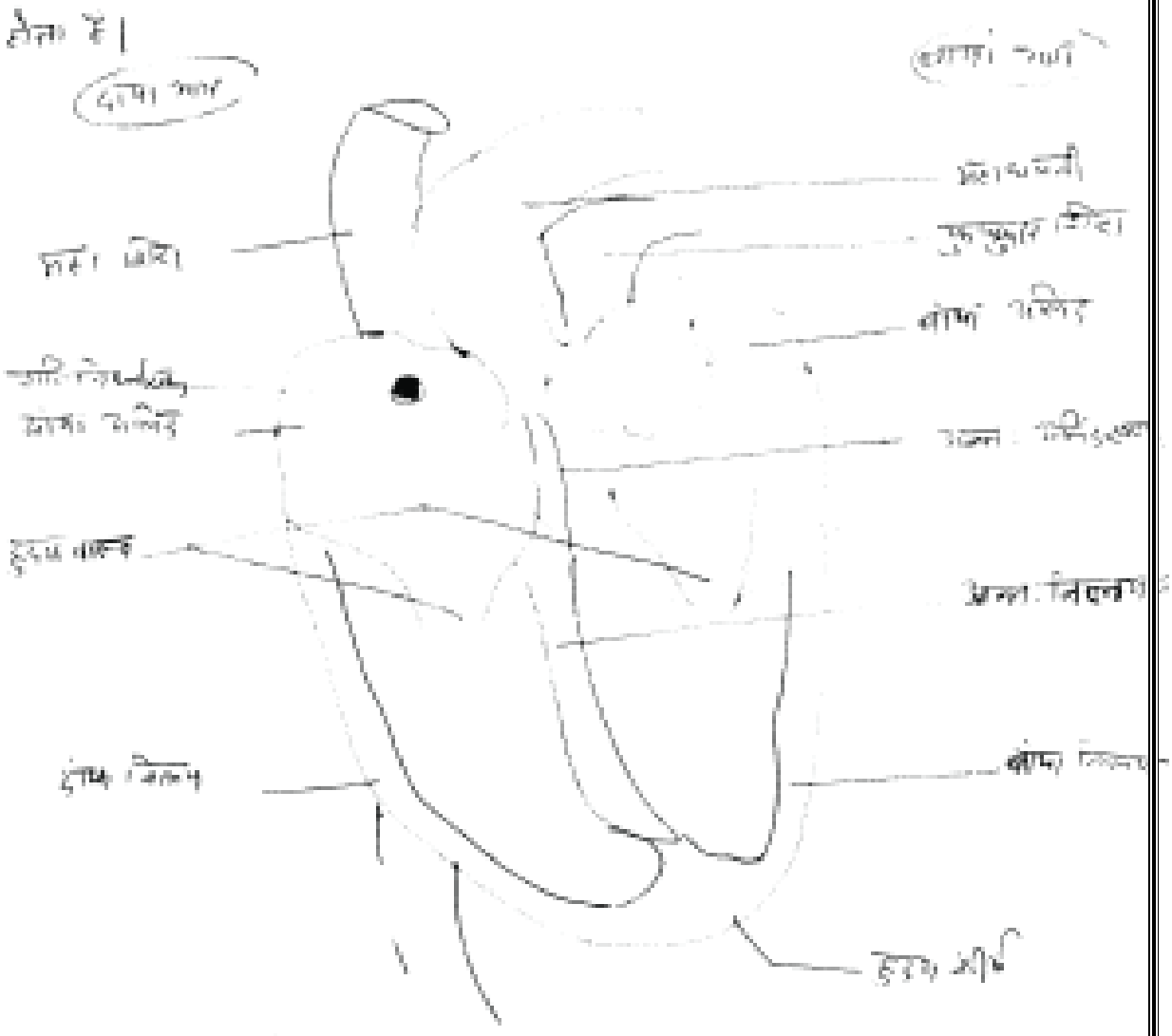

लाल रक्त कणिकाओं की संख्या एक स्वस्थ्य पुरूष के रक्त में 5 मिलियन mm^3 होती है। लाल रक्त कणिकाऐं मज्जा में बनती है। ये कणिकाऐं केन्द्रक विहिन होती है। इन कणिकाओं में लाल रंग युक्त हीमोग्लोबिन होता है जो हिम नामक आयरन व ग्लोबिन नामक प्रोटीन से मिलकर बना होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति में 12 से 16 ग्राम प्रति 100 मि.ली. रक्त का हिमोग्लोबिन होता है। मुख्य रूप से इन कणों का कार्य श्वसन में प्रयोग होने वाली गैसों O_2कार्बनड्राईऑक्साइड की संवहन करता है। ला.र.क. की आयु 120 दिन होती है। नष्ट होने के पश्चात ये कण झिल्ली में जाकर गिरते है।

श्वेत रक्त कणिकाओं (WBC) केन्द्रक युक्त होती हैं। इसकी संख्या 6000–8000 प्रति मि. मी.^{3} रक्त में होती है। इनका बहुत कम होता है। WBC का मुख्य कार्य हमारे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को बल देना है। संक्रमण प्रदाह एवं एलर्जी के समय ये कण अपनी संख्या में वृद्धि करते हैं। WBC के विशेष भागी कण लिम्फोसाइटस B व T लिम्फोसाइट का रंग प्रणाली को मजबूत बनाने में विशेष कार्य है।

प्लैटेलेट्स की रक्त में 1,500,00 से 35,00,00 की संख्या प्रति मि.मी. ^{3} होती है। प्लेटेलेट्स का मुख्य रक्त का थक्का जमाने में होता है। ये रक्त कण शरीर से रक्त की हानी होने से बचाते हैं। प्लेटेलेट्स की मज्जा में होती है।

रक्त समूह (Blood Group)

मनुष्य में चार प्रकार का रक्त समूह होता है – A, B, AB और O । किसी भी रोगी को रक्त चढ़ाने से पूर्व रक्त का मिलान किया जाताहै। नीचे दिखाये गये तीरांकन के अनुसार रक्त को चढ़ाया जाता है।

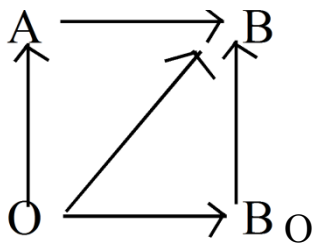

ब्लड ग्रुप को सर्वदाती है। यह रक्त किसी भी रक्त समूह वाले रोगी को चढ़ाया जा सकता है। A रक्त समूह वाला सबसे सर्वग्राही मानते है। यह किसी भी रक्त समूह से

रक्त ग्रहण कर सकता है। विशेष बात यह है कि समान रक्त समूह वाला अपने समान रक्त ले भी सकता है और उसे रक्त दे भी सकता है।

एक विशेष बात ध्यान रखने की यह भी है कि इन चारों समूह को भी दो दो प्रकार के रक्त समूहों में बांटा गया है वह है $Rh^{+ve\ and}$ Rh^{-ve} ।

1.7 पेशीय तंत्र –

पेशियां व अस्थियां दोनों मिलकर चलने की प्रक्रिया करते है। मांस पेशियां मनुष्य के शरीर का लगभग 40 से 50 प्रतिशत भार होती हैं। मांस पेशियों का मुख्य कार्य उत्तेजनशीलता, संकुचनशीलता फैलाव एवं लचीलापन (Excitability,contractility, txtenmbility and leasti) होता है। मनुष्य शरीर में तीन प्रकार की मांसपेशियां होती है।

मांस पेशियों के प्रकार

1 रेखीय पेशीय अथवा अस्थि पेशी अथवा ऐच्छिक पेशी – इन पेशियों को अपनी इच्छा अनुसार चलाया जा सकता है। वे हड्डियों से जुड़ी हुई मांस पेशियां है। इनके तंतु एक ही रेखित दिशा में लगे होने के कारण इसे रेखीय पेशी भी कहते है। शरीर को चलने, उठने, बैठने हिलने डुलने में अस्थियों व उसके जोड़ों के साथ मिलकर कार्य करते है।

2 अरेखीय पेशी अथवा अनैच्छिक पेशी – शरीर के अंगों का निर्माण अरेखित पेशियों द्वारा होता है। इन्हें एक अपनी इच्छा अनुसार नहीं चला सकते । इनके तन्तु अरेखित होते हैं।

3 हृदयी पेशी – देखने में रेखित पेशी के समान सीधे तंतुओं वाली रचना एवं कार्य में अपने आव कार्य करने वाली हृदयी पेशी होती है। जीवन प्रयत्न नित निरंतर में पेशियां कार्य करती रहती है।

रेखीए पेशी के तन्तु अन्य छोटे छोटे तन्तुओं से मिलकर बने होते है। इन पेशियों में एक्टिन व मायोसिन नामक प्रोटीन होती है। कैल्शियम आयन (Co^{++}) व ऊर्जा बंधों (ATP) की सहायता में ये मांसपेशियां अपना कार्य करती है।

मांस पेशी विभिन्न बंधों द्वारा जुड़ी होती है। दो सीधी लाइनें (Z-Line) से भीतरी भाग J बंध व A बंध होते है। इनमें मध्य H बंध होता है।

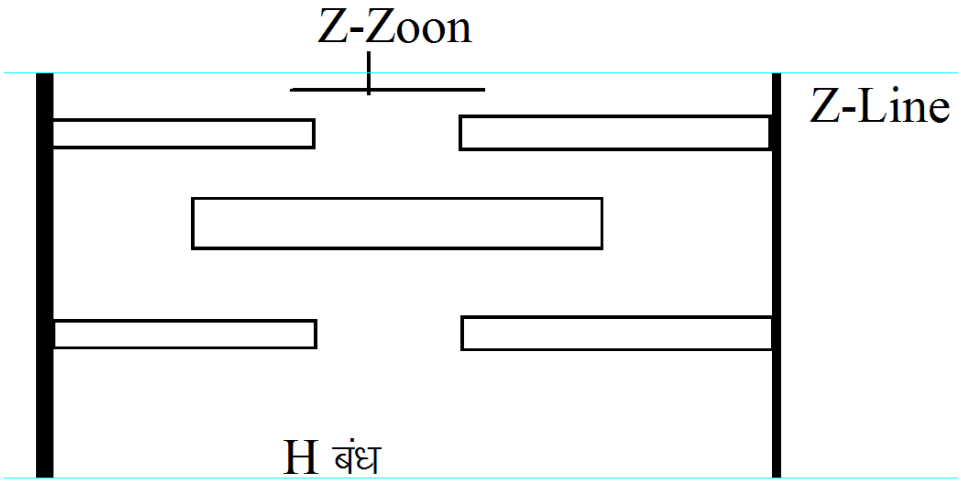

सारकोमीयर

1.8 अस्थि तंत्र (Skeltal System)

अस्थियों व उपास्थियों (Bonesand cartilages) से मिलकर एक ढांचा शरीर को आकार देने का निर्माण करता हैं। इस अस्थि तंत्र कहते है। मांस पेशियों के साथ मिलकर ये हड्डियां चलने, फिरने का कार्य करती हैं।

कैल्शियम व फास्फोरस लवण के साथ ये हड्डियां मजबूती प्राप्त करती हैं। मानव शरीर में 206 हड्डियां होती हैं जिन्हें अध्ययन के लिए दो भागों में बांटा जा सकता है।

केन्द्रिय व पार्व अस्थियां (Axial and Appendicular Sxeleton)

केन्द्रिय अस्थियों में खोपड़ी (Skull), मेरूदण्ड (Vertebral Column) छाती की हड्डी व पस्लियां होती है। खोपड़ी दो प्रकार की अस्थियों से निर्मित होती है। केलियल व फेसियल दोनों मिलकर कुल 22 हड्डियों से मिलकर बने होते है। केनियल में 8 अस्थियां होती हैं जो आपस में बिना हिलने वाले पदार्थ (White fibre tissue) से जुड़ी होती हैं। सामने की ओर चेहरे पर 14 अस्थियां होती हैं। जिसमें कान के भीतर की हड्डियां शरीर के सबसे छोटी हड्डियां होती है।

मेरूरज्जु 26 केशेरूकाओं से निर्मित होती है। इनमें क्रमशः निम्न केशरूकाएं होती है।

ग्रीवा केशेरूकाएं – 7

वक्ष – 12

कटि	–	5
सेक्रम	–	1
पुच्छ	–	1

मेरूदण्ड मेरूरज्जु (Spinal cord) की रक्षा करता हैं। मेरूदण्ड के दोनों ओर 12–12 पसलियां (24 Ribs) आगे शरीर के अधर भाग से छाती की मजबूत अस्थि से जुड़ी होती हैं। सात मसलियां पूर्ण होती हैं जो आगे की ओर छाती की हड्डी से जुड़ती हैं। नीचे की ओर 8वीं, 9वीं, व 10 वीं पसलियां मेरूरज्जु से पीछे की ओर व आगे 7 वीं पसली से उपस्थियों के मध्यम से जुड़ी होती हैं। अंतिम 2 जोड़ी पसलियां (11 वीं व 12 वीं) उदर में खुली होती हैं। मेरूरज्जु पसलियां व छाती की हड्डी मिलकर पसलियों का पिंजरा तैयार करते हैं। इस पिंजरे में केकड़े, हृदय आदि अंग सुरक्षित रहते हैं।

पार्श्व अस्थि तंत्र (Appendicular sxleton) में मुख्य रूप से दोनों हाथ, दोनों पैरों की अस्थियां व दोनों मेखलाएं (अंश मेखला व श्रोणी मेखला) होती हैं। प्रत्येक हाथ व पैर में 30–30 अस्थियां होती है।

हाथ में – 1 ह्यूमरस + 2 रेडियस व अलना + 8 कलाई में + 5 हथेली में + 14 अंगुलियों में।

पैर में – 1 फीमर + 2 टीबिया व फैवुला + 7 टखने में

7 तलवे + 14 पैंर की अंगुलियों में + 1 रूप में

आकृति की हड्डी पटेला घुटने पर होती है।

अंश मेखला व श्रोणी मेखला क्रमशः हाथों व पैरों की हड्डियों में जोड़ने वाली अस्थियों का संयोजन होता है।

अस्थियों में जोड़ (Joints) – अस्थियों के मध्य जोड़ गति में सहायक होते हैं। कुछ जोड़ ऐसे होते हैं जहां पर अस्थियां गति नहीं करती इन्हें तंतु जोड़ (Fibrous Joints) कहते हैं। जैसे खोपड़ी की हड्डियां कुछ हड्डियां आपस में उपास्थियों से जुड़ी होती हैं। जिन्हें उपास्थि जोड़ (Cartilaginous Joints) कहते हैं। ये जोड़ पसलियों व मेरूरज्जु के मध्य होते हैं।

कछ जो ऐसे होते हैं जिनमें गुहा होती हैं व इसके मध्य चिकनी सिनवोयिल द्रव्य भरा होात हैं। जो जोड़ों को घिसने से बचाता हैं। निम्न प्रकार के जोड़ जैसे बाल ओर सोकिट जोड़ ह्यूमरस व अंश मेखला के मध्य होता है।

कब्जानुमा जोड़ (Hinge Joint) – घुटने व कोहनी में होता है व पिवोट (Pivot Joint) ऊपरी प्रथम कशेरूका एटलस व खोपड़ी के मध्य होता है साइल जोड़ – कार्पल व मेटाकार्पल के मध्य होता हैं। और ग्लाइडिंग जोड़ – कार्पल्स के मध्य होता हैं।

1.9 तंत्रिका तंत्र

शरीर के विभिन्न अंगों, प्रत्यंगों का समुचित संचालन एवं संतुलन का काम तंत्रिका तंत्र करता हैं। उदाहरण के लिए व्यायाम करते समय शरीर की ऊर्जा प्रदान करने का काम तंत्रिका तंत्र करते हैं।

तंत्रिका तंत्र की विशेष कोशिका का नाम तंत्रिका कोशिका है किसी भी उद्दीपन को पहचानने, ग्रहण करने के काम (Detect, Receive and transmit) ये तंत्रिका कोशिका (Neuron) करती है।

मानव तंत्रिका तंत्र – मानव तंत्रिका तंत्र के दो भागों में बांटा गया हैं।

केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र (Central Nervous System)

परिसरीय तंत्रिका तंत्र (Peripnel Nervous System)

मस्तिष्क मेरूरज्जु Somatic Nerural System Autonomic Neuro System

Sympatheti Neural System

Autonomic N.Sy.

मस्तिश्क – मनुष्य का मस्तिष्क खोपड़ी के नीचे सुरक्षित रहता है। मस्तिष्क व खोपड़ी के मध्य तरल पदार्थ होता हैं। जो मस्तिष्क को झटकों से बचाता है। मस्तिष्क तीन झिल्लियों द्वारा सुरक्षित रहता हैं। जिन्हें एकत्र रूप से मस्तिष्कावरण कहते है।

अध्ययन की दृष्टि से मस्तिष्क को तीन भागों में बांटा गया है।

1 अग्र मस्तिष्क 2 मध्यमस्तिष्क 3 पश्चमस्तिष्क

अग्रमस्तिष्क में प्रमस्तिष्क काफी बड़ी रचना होती है। प्रमस्तिष्क दो गोलार्द्धों में गहरे तक बंटा होता है। इन्हें दांया व बांया प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध कहते हैं। ये गोलार्द्ध तंत्रिका तंतुओं वाली रचना कार्यस कैलोसम से जुड़े होते हैं। इस गोलाद्धों को एक कुछ कोशिकाओं की सतह ढ़के रखती है। ये विभिन्न वलयनुमा रचना भुरे रंग की प्रतीत होती है। इसे ग्रे मैटर कहते हैं। मस्तिष्क के प्रमस्तिष्क वाले भाग को कार्यों की दृष्टि से विभिन्न संवेडी क्षेत्रों में बांटा गया हैं। इन्हें क्रमशः वाणी क्षेत्र, दृष्टि क्षेत्र, श्रवण क्षेत्र, स्मरण क्षेत्र, प्राण क्षेत्र आदि के नाम से जाना जाता है। मस्तिष्क की भीतरी भाग श्वेत रंग का प्रतीत होता है। जिसे थैलेमस कहते हैं। इसमें ठीक जुड़ी रचना को हाइपो थैलमस कहते हैं। इसमें ठीक जुड़ी रचना को हाइजो थैलेमस कहते हैं। यह हाइयोथैलेमस शरीर का ताप नियमन, भूख, प्यास, अनुभव कराने का कार्य करता हैं। विभिन्न हारमनों, हारमोन जो अन्य हारमोन ग्रंथियों को नियंत्रित करते हैं इसी भाग में साबित होता हैं। यही हाइपोथेलेमस लैंगिक स्वभाव, भावों की अभिव्यक्ति (उत्तेजना, आनंद, सुख, दुख व डर) प्रेरणा आदि भावों का ज्ञान करता है।

मध्य मस्तिष्क अग्र व पश्च मस्तिष्क के मध्य होता है। मध्य व पश्च मस्तिष्क मिलकर एक रचना बनाते हैं। जिसे ब्रेन स्टेग कहते हैं।

पश्च मस्तिष्क में निम्न रचनाएं होती हैं। अनुमस्तिष्क मेडयूला, आंवलेंगेटा व पोन्स। मेड्यूला आव्लेगेटा नीचे मेरू की ओर मेरूरज्जु (सुषुमना) में आकर बंट जाता है।

1.10 महत्वपूर्ण प्र□न

1 एक सामान्य जन्तु कोशिका का चित्र सहित वर्णन करो। कोशिका किसे कहते हैं?

2 उत्तक किसे कहते है? उत्तक कितने प्रकार के होते हैं?

3 पाचन तंत्र की परिभाषा लिखो। पाचन तंत्र का अंगों सहित वर्णन करो। पाचन तंत्र का सामान्य चित्र बनाओ।

4 श्वसन तंत्र का चित्र सहित वर्णन करो। फेफड़ों और हृदय का क्या संबंध है।

5 रक्त का क्या कार्य है? रक्त किन किन घटकों से मिलकर बना होता है।

6 हृदय की संरचना का सचित्र वर्णन करो।

7 पेशियाँ कितने प्रकार की होती है? वर्णन करो।

8 केन्द्रिय अस्थियों का वर्णन करो।

9 पार्श्व अस्थि तंत्र का वर्णन करो।

10 अस्थियों में जोड़ों का क्या लाभ है? ये कितने प्रकार के होते हैं?

11 तंत्रिका कोशिका का क्या कार्य है? मानव तंत्रिका तंत्र कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है।

12 मस्तिष्क की रचना का वर्णन करो।

1.11 संदर्भ सूची

1 प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – आरोग्य प्रकाशन (राकेश जिन्दल)

2 शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान – डॉ. विमल कुमार मोदी

इकाई : 2 – पंच महाभूत परिचय

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

2.4 प्राकृतिक चिकित्सा का भारत वर्ष में इतिहास

2.5 प्राकृतिक चिकित्सा का विदेशों मे विकास

2.6 सारांश

2.7 बोधात्मक प्रश्न (अभ्यासार्थ)

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ

2.1 प्रस्तावना :–

पहले के समय में चिकित्सा क्षेत्र का जब इतना विकास नहीं हुआ था तब रोगों को कभी देवताओं का अभिशाप माना जाता था तो कभी अपने कुकर्मों का फल मान लिया जाता था तो कभी अपने नजर टोटका और भूत प्रेत–आत्मा आदि से जोडकर देख लिया जाता था और उसी के अनुरूप उपचार दिया जाता था। बीमारियों के इस प्रकार भ्रम का उपचार भी उसी के अनुरूप कभी देवताओं को प्रसन्न करके कभी भूत पिचाश की झाड फूक करके यहां तक की शरीर को गर्म लोहे की छडों आदि से जलाकर अथवा पशु बलि चढा कर उपचार दिए जाते थे।

उस समय शरीर में अवांछित विजातीय द्रव्य के आने को शरीर में उपरोक्त प्रकार के तत्वों का आना स्वीकार कर लिया जाता था। उस समय बिमारी के आने पर उसे दबाव देकर ज्यादा भोजन करने को बाध्य किया जाता था। और धारणा थी कि इस तरह के प्रकोप में खाना नहीं खाने से शरीर बहुत ही निर्बल हो जाएगा। इसी कारण उपचार में इसी प्रकार की लापरवाही प्राण घातक बन जाती थी। इसका वर्णन आज वेदों मे भी आया है। ऐसी लापरवाहीयों पर खडा स्वास्थ्य या शरीर कच्ची–नींव की तरह कभी भी गिरने की हालत में रहता है तभी कुछ पशु पक्षियों जैसे प्राणियों

से सीखने को मिला कि स्वास्थ्य खराब होने की स्थिति में खाना छोड कर शरीर के विभिन्न अंगों को विश्राम देकर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। पशु पक्षी ठीक इसी प्रकार अपना खाना छोड देता है। इन सब तथ्यों को समझने के पश्चात ज्ञात हुआ कि यह शरीर पंच–तत्व से बना है और पंच तत्व के असंतुलन से ही स्वास्थ्य का खराब होना समझ मे आया। प्रकृति में यही पंच तत्व मूल स्वरूप में विद्यमान है। जब भी हम प्राकृतिक वातावरण से दूरी बना लेते थे अर्थात पंच तत्वों से विमुख होने पर ही स्वास्थ्य बिगड जाता था जिस प्रकार मकान की दीवार खराब होने पर उसकी मरम्मत करने के लिए रेत, सीमेन्ट, ईंट, पानी इत्यादि की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार शरीर के उपचार के लिए भी पंच तत्वों की आवश्यकता होती है, किसी को भी थकान करने पर आराम करने की सलाह कर जाने पर पानी या मूत्र से भीगे कपडे को बाधना तथा जहरीले कीडे या सांप द्वारा काटने पर मिट्टी का लेप करना, चर्म रोग होने पर पीली मिट्टी का लेप करना इत्यादि सभी प्रकार के उपाय भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के विकास की पहली अवस्था के रूप में प्रादुर्भाव माना जाता है यह काल 5000 वर्ष पूर्व वैदिक ग्रंथों मे बताया गया है। उसके पश्चात भारत और विदेशों मे विभिन्न गम्भीर रोगों की उन अवस्था में किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा सामाजिक वातावरण को छोडकर वनों मे चले जाना तथा विभिन्न पद्धतियों के चिकित्सकों द्वारा इसके प्रयोगों द्वारा वैज्ञानिकता सिद्ध करना आदि के साथ–2 विकसित होता गया। जिन मुख्य भारतीय प्राकृतिक चिकित्सकों द्वारा इस पद्धति में विकसित किया गया। ऐसे प्राकृतिक चिकित्सकों का आप जीवन परिचय हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य :–

1. प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का अध्ययन करना।
2. प्राकृतिक चिकित्सा के प्रमुख संस्थापकों को परिचय।
3. विदेशी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रणेताओं का जीवन परिचय का अध्ययन करना।

2.3 प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास :–

प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास उतना ही पुराना है। जितना स्वयं प्रकृति का यह पद्धति पृथ्वी पर प्रथम जीव के स्वरूप से ही प्रारम्भ हो गयी थी। यह चिकित्सा विज्ञान सभी आज की चिकित्सा प्राणालियों से पुराना है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि यह दूसरी चिकित्सा पद्धतियों कि जननी भी है। इसका वर्णन पौराणिक

ग्रन्थों एवं वेदों मे मिलता है अर्थात वेद काल के बाद पौराण काल में भी यह पद्धति प्रचलित थी। उस काल में दुग्ध काल, फल कल्प, उपवास इत्यादि के द्वारा ही स्वस्थ हो पाते थे। ऐसे लोग जो भोग विलासी होते थे वे उपवास इत्यादि में विश्वास नहीं करते थे। उन्होने कुछ पेड पौधे पत्तें इत्यादि के रूप में औषधि का प्रयोग रामायण काल से प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार जीव के पदार्पण को ही प्रकृति एक भाग मानश जाता है। आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास डा. ईसाफ जेनिग्स (Dr. Isaac Jennings) में जो अमेरिका में 1788 से प्रारम्भ कर दिया था। जोहन बेस्पले (John Wesby) ने भी ठण्डे पानी के स्नान एवं पानी पीने की विधियों से उपचार देना प्रारम्भ किया था। महाबग्ग नामक बोध ग्रन्थ में वर्णन आता है कि एक दिन भगवान बुद्ध भिक्षु को सांप ने काट लिया तो उस समय जहर के नाश के लिए भगवान बुद्ध ने चिकनी मिट्टी, गोबर, मूत्र आदि को प्रयोग करवाया था और दूसरे भिक्षु के बीमार पडने पर भाप स्नान व उष्ण गर्म व ठण्डे जल के स्नान द्वारा निरोग किये जाने का वर्णन 2500 वर्ष पुरानी उपरोक्त घटना से सिद्ध होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के साथ–2 योग एवं स्नान आसाने का प्रयोग शारीरिक एवं आध्यात्मिक सुधारों के लिये 5000 हजारों वर्षों से प्रचलन में आया है पतंजलि योग सूत्र इसका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है इसका प्रचलन केवल भारत में ही नहीं अपितु विदेशों मे भी प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सकों के विषय में यहां वर्णन करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा के इतने (पुराने इतिहास के साथ) इसका विकास प्रायः लुप्त जैसा हो गया था क्यों। आधुनिक चिकित्सा प्राणालियों के आगमन स्वरूप इस प्रणाली को भूलना स्वाभाविक भी था इस प्राकृतिक चिकित्सा को दोबारा प्रतिष्ठित करने की मांग को उठाने वाले मुख्य चिकित्सकों में बडे नाम वाले ऐलोपैथिक डा. मुख्य रूप से विदेशी अर्थात पाश्चातय देशों का योगदान वर्णनीय है। ये वो प्रभावशाली व्यक्ति थे जो औषधि विज्ञान का प्रयोग करते–2 थक चूके थे और स्वयं रोगी होने के बाद निरोग होने मे असहाय होते जा रहे थे। उन्होने स्वयं पर प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग करते हुए स्वयं को स्वस्थ किया और अपने शेष जीवन में इसी चिकित्सा पद्धति द्वारा अनेकों असाध्य रोगियों को उपचार करते हुए इस चिकित्सा पद्धति को दुबारा स्थापित करने की शुरूआत की। इन्होने जीवन यापन तथा रोग उपचार को अधिक तर्क संगत विधियों द्वारा किये जाने का शुभारम्भ किया।

2.4 प्राकृतिक चिकित्सा का भारत वर्ष में इतिहास :–

भारत वर्ष में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रादुर्भाव के विषय मे श्री डी. वेंकट चेलापति शर्मा जी ने वर्ष 1894 में डा. लूई कूने के प्रसिद्ध पुस्तक "The new science of healing" का तेलगू भाषा में अनुवाद करके इसका प्रारम्भ किया। इसके पश्चात 1904 में बिजनौर निवासी श्री कृष्ण स्वरूप ने इसका अनुवाद हिन्दी और उर्दु दोनों भाषाओं मे किया। पुस्तकों के आगमन के साथ–2 लोगों की रूचि और उसके अध्ययन में भी वृद्धि होनी प्रारम्भ हुई और शीघ्र ही यह चिकित्सा पद्धति लोगों मे प्रचलित होनी प्रारम्भ हुई। महात्मा गांधी जी एडोल्फ जूस्ट की पुस्तक "Return to nature" पढकर बहुत प्रभावित हुए। उनके जीवन में यह पद्धति गहराई तक चली गई और उन्होने तुरन्त प्रभाव से अपने स्वयं के शरीर तथा परिवार के लोगों और आश्रम मे रहने वाले लोगों पर उपचार प्रयोग प्रारम्भ किए। अन्ततः भारत जैसे गरीब देशों में स्वास्थ्य के लिए यह पद्धति सर्वोत्तम पद्धति है। इसका प्रचार उन्होने गांव–2 में करने के साथ ही पूना के पास उरलिकांचन में एक प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की और इस चिकित्सालय के चिकित्सक भी बने। उरलिकांचन मे पहला प्राकृतिक चिकित्सालय स्थापित होने के कारण ही दक्षिण भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रादुर्भाव सबसे पहले हुआ है।

डा. कृष्णम राजू ने विजयवाडा से थोडी दूरी पर ही एक विशाल चिकित्सालय की स्थापना की इसके साथ साथ देश में डा. जानकी शरण वर्मा, डा. शरण प्रसाद, डा. महावीर प्रसाद पोद्धार, डा. गंगा प्रसाद गौड, डा. विट्ठल दास मोदी, डा. हीरालाल, महात्मा जगदीशवरानन्द, डा. कुलरन्जन मुखर्जी, डा. वी. वेंकट राव, डा. एस. जे. सिंह, इत्यादि के प्रयासों से कई सरकारी संस्थाएं तथा दिल्ली में केन्द्रिय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद इत्यादि की स्थापना हेतु मुख्य योगदान दिया जिसके फलस्वरूप आज मान्यता प्राप्त चिकित्सालय पद्धति के रूप में स्वीकार की गई। इनमे से कुछ का जीवन परिचय इस प्रकार है।

1. डा. कुलरंजन मुखर्जी :– प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में डा. कुलरंजन मुखर्जी का बहुत बडा योग दान रहा। बचपन से ही इन्हें प्रकृति एवं प्राकृतिक चिकित्सा से विशेष प्रेम था। तथा किशोरावस्था में इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग रोग उपचार के लिए शुरू किया। सन् 1930 में डा. कुलरंजन ने हाजरा रोड, कोलकाता मे नेचर केयर अस्पताल मे कार्य किया। इससे भी पूर्व उन्होनें बांग्लादेश ढाका के मदारीपूर मे नेचर केयर अस्पताल के कार्य किया तथा सफल

परीक्षण प्राप्त किए। अपने जीवन काल में उन्होने हजारों असाध्य रोगियों के रोगों ठीक किया इसी कारण उनकी तुलना ऐलोपैथी के सीनियर डा. विधान चन्द्रा के साथ की जाती थी। गांधी जी को भी इनके द्वारा दी गई उपचार पद्धति पर विश्वास था तथा वह भी इनके पास रोगियों को भेजा करते थे। इन्होने एक पुस्तक भी लिखी प्रोटेक्टिव फुडस इन हेल्थ एण्ड डिसीज। इसके अतिरिक्त इन्होने अग्रेंजी और हिन्दी भाषा में कई महत्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी ये पुस्तकें आज भी सराहनीय एवं सहायक है। डा. मुखर्जी ने केवल रोगियों की चिकित्सा करते थे अपितु वह अपनी आय का 50 प्रतिशत भाग प्राकृतिक चिकित्सा मे ंलगते थे। यह बहुत ही इमानदार तथा सरल व्यक्तित्व के व्यक्ति थे।

सन् 1956 में डा. मुखर्जी ने अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद की स्थापना की इस प्रकार इनके द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा में अद्भूत चमत्कार किए।

2. श्री विट्ठलदास मोदी :– इनका जन्म 25 अप्रैल सन् 1912 ई. में जनपद गोरखपुर मे हुआ था। इन्होने मैट्रिक तक शिक्षा गोरखपुर शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से कि। वह अध्यापक बनना चाहते थे। एक बार यह भंयकर रूप से बीमार पड गए तथा सभी तरह की दवा लम्बे समय तक लेने पर आराम नहीं हुआ तो इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा श्री बालेश्वर प्रसाद सिंह के मार्ग दर्शन मे ंन केवल रोगमुक्त हुए बल्कि उनका स्वास्थ्य पहले से भी उत्तम हो गया इसी से ही उनकी आस्था और निष्ठा प्राकृतिक चिकित्सा में लग गई।

आगे चलकर सन् 1940 ई. मे इन्होने आरोग्य मंदिर प्राकतिक चिकित्सालय की स्थापना की इन्होने एडोल्फ जस्ट द्वारा लिखी पुस्तक "Returne to nature" का हिन्दी अनुवाद करके भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में एक बडा कार्य किया इन्होने गांधी जी की रचनात्मक प्रवृतियों पर केन्द्रियों पत्रिका जीवन–साहित्य का संपादन भी किया।

इन्होने भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र मे ज्ञान व अनुभव का प्रयोग कर खूब सम्मान तथा प्रतिष्ठा हासिन की तथा किसी अनुभव के कारण विदेशों में भी इस पद्धति के अध्ययन के लिए यह अनेकों देशों मे गए वहां यात्रा की दौरे किए। वह अमेरिका भी गए तथा वहां के प्राकृतिक चिकित्सा

केन्द्र देखकर तथा अनुभव प्राप्त कर उन्होने एक पुस्तक यूरोप–यात्रा नामक पुस्तक लिखी।

प्राकृतिक चिकित्सा के लिए एक शिक्षा केन्द्र की स्थापना 1962 में गोरखपुर में स्कूल ऑफ नेचूरल थेराप्यूटिक्स की स्थापना की जिसके द्वारा उन्होने कई हजारों बालक बालिकाओं को प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा दी । तथा आज वे शिष्य देश के विभिन्न भागों मे प्राकृतिक चिकित्सा के काम में लगे है। इन्होने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए रोगो की सरल चिकित्सा स्वास्थ्य के लिए फल तरकारिया बच्चों का स्वास्थ्य एवं उनके रोग दुग्ध–कल्प उपवास से लाभ उपवास चिकित्सा आदि अनेकों पुस्तकों को अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं अनुवाद भी किया। मोदी जी ने प्राकृतिक चिकित्सा में मानस के निर्मलीकरण के लिए भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित विपश्यना ध्यान–साधना का समावेश किया इस प्रकार अपने जीवन के 60 वर्षों प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित किए।

3. डा. जानकी शरण वर्मा :– यह एक सफल चिकित्सक थे। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होने हिन्दी भाषा मे बहुत सारी पुस्तकें लिखी। इन्होने अचूक चिकित्सा और अचूक चिकित्सा के प्रयोग एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक की रचना की इनकी पुस्तक पढकर ही प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमी मार्ग दर्शन प्राप्त करते है। अपनी इन पुस्तकों के कारण ही उनका नाम प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

4. डा. के लक्ष्मण शर्मा :– इन्होनें तमिलनाडू मे जन्म लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त करके सारा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के लिए समर्पित कर दिया। इन्होने अति प्रसिद्ध पुस्तक प्रेक्टिकल नेचर केयर की रचना कि। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में खूब प्रगति की।

5. डा. बालेश्वर प्रसाद सिंह :– प्राकृतिक चिकित्सा योगदान बहुमूल्य है। इन्होने भारत के कोने–2 में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार प्रसार किया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होने बहुत सारे शिविरों का आयोजन कर हजारों लोगों को भी उपचार उपलब्ध करा कर उन्हें रोग मुक्त किया। इनके द्वारा अनेक पत्रिकाओं का सम्पादन कुशलता–पूर्वक किया। जीवन सखा एक श्रेष्ठ पत्रिका थी। इन्होने गांधी जी से प्राकृतिक चिकित्सा की प्रेरणा प्राप्त की तथा अपना पूरा जीवन प्राकृतिक

चिकित्सा को सर्म्पित किया। इन्होने अनेकों युवकों को प्रशिक्षण देकर सुयोग्य प्राकृतिक चिकित्सक बनाया।

6. महात्मा गांधी :– महात्मा गांधी बहुत ही महान प्राकृतिक चिकित्सक थे। इन्होने देश में प्राकृतिक चिकित्सा के अतिरिक्त उपवास और सत्याग्रह के नियमों का भी अनुपालन किया। इन्होने सर्वप्रथम भारत मे प्राकृतिक आश्रम का निर्माण किया। इन्होने आरोग्य की कुजी का सम्पादन किया। जिसका प्रचार प्रसार देश और विदेश में हुआ तथा लाखों लोगों ने इससे लाभ उठाया।

गांधी जी ने एडोल्फ जुस्ट द्वारा रचित पुस्तक "Return to nature" नाम प्रसिद्ध पुस्तक का अध्ययन करके प्राकृतिक चिकित्सा की प्रेरणा प्राप्त की और इस क्षेत्र में बहुत सफलता प्राप्त की। इन्होने भारत के साथ–2 विदेशों मे भी इस पद्धति का प्रचार किया। इनकी लिखी पुस्तकों मे "Dut & dute reform" आहार शास्त्र अपने समय की लाभकारी और उपयोगी पुस्तक है।

7. डा. वेगिराज कृष्णम राजू :– इनका जन्म 1910 सन् में हुआ। इन्होने आन्ध्रप्रदेश में विशाल प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की तथा एक आदर्श प्राकृतिक चिकित्सा शिक्षण संस्था का संचालन किया इन्होने कई पुस्तकें भी लिखी जो प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है।

8. डा. महावीर प्रसाद पोददार :– इस प्राकृतिक चिकित्सक ने महात्मा गांधी जी से प्रेरणा प्राप्त कर इस पद्धति को अपनाया इन्होने अपनी सम्पूर्ण आयु प्राकृतिक चिकित्सालय में रहकर हजारों निराश रोगियों को जीवन दान दिया और इन्होने हिन्दी में अनेक किताबों भी लिखी।

9. सन्त विनोबा भावे :– सन्त विनोबा भावे महात्मा गांधी जी के आध्यात्मिक आचार्य थे तथा इन्होने भी राम नाम तत्व की प्राकृतिक चिकित्सा से महत्वपूर्ण बताते हुए राम नाम एक चिन्तन पुस्तक मे प्राकृतिक जीवन के मूलभूत आदर्शों का बडे सुन्दर विवेचन किया। इन्होने कई सम्मेलनों मे प्राकृतिक चिकित्सकों का विशेष मार्गदर्शन किया।

10. श्री मोरार जी भाई देसाई :– अंग्रेजी शासन के समय एक उच्च पद पर कार्यरत होते हुए भी इन्होने इसका त्याग कर स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया और भारत के प्रधानमंत्री का पद भार को सम्हालते हुए प्राकृतिक चिकित्सा को नया

मोड दिया। इन्होने कई पुस्तकों के द्वारा अपने अनुभवों को जन–2 तक पहुचाया फरवरी 1995 से आप 100 वर्ष होकर जीवन शरद शतम का एक जीवान्त उदाहरण प्रस्तुत करेगें।

11. डा. शरण प्रसाद :– आपने अनेक वर्षों तक भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा विद्यापीठ कलकत्ता मे प्राचार्य एवं मुख्य चिकित्सक के रूप मे कार्य किया तथा इन्होने कई वर्षों तक गांधी जी द्वारा स्थापित निसर्गो उपचार केन्द्र उरूलीकंचन में मुख्य चिकित्सक के पद पर कार्य किया इन्होने अपने अनुभवों के आधार पर कई श्रेष्ठ तथा प्रमाणिक ग्रन्थों का लेखन किया जिनका प्रकाशन सर्व सेवा संघ में किया। डा. शरण प्रसाद एक महान चिकित्सक के उदाहरण है।

12. डा. एस. जे. सिंह :– यह श्रेष्ठ प्राकृतिक चिकित्सकों में से एक है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का प्रशिक्षण विदेश से प्राप्त किया तथा अपने जीवन का बडा काल प्राकृतिक चिकित्सा को सर्म्पित किया। इन्होने लेलिंग का अंग्रेजी भाषा में उर्दु तथा हिन्दी लिपि में सविस्तार, अनुवाद किया जो उस समय के महत्वपूर्ण योग दानों मे से एक था यह बहुत ही लोकप्रिय प्राकृतिक चिकित्सक थे।

13. डा. बी. वेंकटराव वा डा. श्रीमति विजय लक्ष्मी :– ये दोनो ही डा. कृष्णम राजू के शिष्य थे तथा उनसे प्रशिक्षण ग्रहण कर इन्होने हैदराबाद में एक विशाल प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की इसी के साथ नेचर केयर कॉलेज की स्थापना कर उसे उसमानिया युनिवर्सिटी से मान्यता भी दिलाई जहां की M.B.B.S. योग्यता के बराबर उपाधि छात्रों को दी जाती थी।

14. डा. एस. स्वामी–नाथन :– ये एक महान चिकित्सक तथा डा. स्व. के लक्ष्मण शर्मा के शिष्य भी थे। यह उच्च शिक्षा ग्रहण कर केन्द्रीय सरकार मे उच्च अधिकार के पद पर कार्यरत होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार में निस्वार्थ भाव से बढ चढ कर सेवा का काम कर रहे है। यह लाइफ नेचुरल अंग्रेजी मासिक पत्रिका के सम्पादक के साथ–2 जीवन सखा मासिक पत्रिका का भी सम्पादन किया।

15. डा. हीरा लाल :– भारत प्राकृतिक चिकित्सकों मे डा. हीरा लाल जी का विशेष स्थान है। इन्होने डा. विट्ठल दास और डा. महावीर प्रसाद पोटदार के साथ प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य आरोग्य मन्दिर में प्रारम्भ किया। इसके साथ–2

ही इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार के लिए गांव गांव जाकर अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी निभाई साथ ही प्रकाशन के कार्य में भी यह क्रियाशील रहें। चिकित्सा के प्रचार प्रसार में इन्होने अपना जो सहयोग दिया। उसके परिणाम स्वरूप जन जन तक इस चिकित्सा को पहुंचाना सम्भव हो पाया। इन्होने महामंत्री के रूप में अखिल भारत प्राकृतिक चिकित्सा परिषद एवं योग परिषद के कार्य भार को संभाला। इनके द्वारा कई पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी व अंग्रेजी में किया गया।

16 डा. जे. एम. जस्सावला :– यह भी लम्बे समय से प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र से जुडे हुए है तथा इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभवों के आधार पर प्राकृतिक चिकित्सकों को अनेकों उच्च कोटि की प्रमाणिक पुस्तकें भी दी है।

17 डा. गौरीशंकर :– डा. एम. जस्सावला की तरह इन्होने भी अपने जीवन के लगभग 44 वर्ष प्राकृतिक चिकित्सा संगठनों एवं अन्य रचनात्मक कार्यो मे सक्रिय रूप से कार्य करते हुए शिक्षण प्राप्त कर उत्तरप्रदेश में प्रमुख चिकित्सक के रूप में कार्य किया। इन्होने 1980 सन् में महर्षि दयानन्द प्राकृतिक योग प्रतिष्ठान की स्थापना की है। इन्होने तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी।

18 डा. जगदीश चन्द्र जौहर :– इन्होने सन् 1947 में महात्मा गांधी जी के सम्पर्क में आने पर इस पद्धति की ओर अग्रसर होकर कई महत्वपूर्ण कार्य किए तथा आयुर्वेद का प्रशिक्षण प्राप्त कर सेवा में लग गए साथ ही पट्टी कल्याणा प्राकृतिक चिकित्सालय के संस्थापक पं. ओम प्रकाश त्रिखा की के सम्पर्क में आने के पूर्ण रूप से केवल प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार में लग गए। इन्होने बाद में गांधी जी द्वारा लिखी गई पुस्तक आरोग्य की कुजी की उर्दु में अनुवाद भी किया।

19. डा. युगल किशोर चौधरी :– इन्होने अपना पूरा जीवन केवल प्राकृतिक चिकित्सा को सर्म्पित किया तथा इसका प्रचार प्रसार करते हुए तीस से अधिक पुस्तक लिखकर प्राकृतिक चिकित्सा साहित्य को समृद्ध किया।

2.5 प्राकृतिक चिकित्सा का विदेशों मे विकास :–

भारत में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का जन्म हुआ। तथा इसकी उपयोगिता की महत्ता

भी भारत में अति प्राचीन समय से चली आ रही है। जिन–2 स्वास्थ्य सम्बन्धी प्राकृतिक क्रियाओं का हम प्रयोग कर रहे है वे सभी उपचार की पद्धतियां पूर्वावस्था में प्राचीन भारत में विद्यमान थी। भारत में ही रोग निवारण के लिए इस पद्धति का प्रयोग नहीं किया वरन् अन्य कई देशों में भी इस पद्धति का प्रयोग आज किया जा रहा है प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति भारत की ही देन है परन्तु कुछ कारणों तथा अन्य विकासों के प्रभावानुसार यह पद्धति भारत में लुप्त हो गई इसके बाद इसके पुनः निर्माण का श्रेय विदेशों (पाश्चातय देशों) को ही है। ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व ही हिपोक्रेटीज ने प्राकृतिक चिकित्सा का पुनः पुनरूथान किया इसी कारण इन्हें चिकित्सा का जनक कहते है। इनके प्रयासों के परिणाम स्वरूप 18वीं शताब्दी के मध्य से प्राकृतिक चिकित्सा का प्रारम्भ तथा विकास शुरू होने लगा तथा हम इस चिकित्सा को पुनः जानने लगे। इस पद्धति के पुनरूथान में जिन महान और प्रभावशाली व्यक्तियों का योगदान है वह पहले से ही रोगों को ही उपचार के लिए औषधियों का प्रयोग करते थे परन्तु औषधियों के प्रयोग के बाद भी रोगों पर सफलता न पासकने तथा उसके प्रतिकूल प्रभावों को जानने के बाद और स्वयं पर भी औषधि चिकित्सा की प्रणाली के कटुफल चखने के बाद प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ग्रहण कर स्वस्थ जीवन जीने लगे। इन्होने इस पद्धति के चमत्कारों से प्रभावित होने के कारण इस पद्धति के प्रचार प्रसार और विकास में लग कर प्राकृतिक चिकित्सा को नया जन्म दिया इस प्रकार कई विदेशी प्राकृतिक चिकित्सको को इसके पुनः पुनरूथानों का श्रेय जाता है। जिन्होने अपने कठिन प्रयासों द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा को नया रूप प्रदान कर पुनः जीवित किया ऐसे कुछ महान चिकित्सकों का विवेचन नीचे किया जा रहा है।

1. जेम्स क्यूरी और सर ज्ञान फलायर :– डा. फलायर इंग्लैड के लिचफील्ड नगर के निवासी थे। लिचफील्ड के एक सोते के पानी में कुछ किसानों को नहाकर स्वज्ञस्थ्य लाभ करते देख उन्हे जल के स्वास्थ्य वर्द्धक प्रभाव के सम्बन्ध में अधिकाधिक जांच पडताल करने की प्रबल ईच्छा हुइ। जिसके कारण उनका रूझान इस पद्धति की ओर हुआ।

डा. जेम्स क्यूरी लिवर पुल के रहने वाले थे सन् 1717 ई. को लगभग इन्होने एक जल चिकित्सा सम्बन्धित पुस्तक लिखकर उसका प्रकाश कराया।

2. लुई–कूने :– डा. लूई कूने एक प्रसिद्ध चिकित्सक के रूप में जाने जाते है। इनका जन्म 1844 मे जर्मनी में हुआ। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को विशेषकर जल चिकित्सा को उन्नति के शिखर तक पहुंचाने के लिए जीवन का अधिकांश समय दिया। इसके साथ ही उन्होने दो महत्वपूर्ण पुस्तकें "The new science of Healing" तथा "The science of facial Expression" लिखी।

इन्होने रोग के कारण और उपचार पर जोर देते हुए चिकित्सा प्रारम्भ की और अन्ततः लिपजिंग (Leipzing) नगर में अपना एक चिकित्सालय भी स्थापित किया। जल चिकित्सा में प्रयोग होने वाले उपकरणों की डिजाइनिंग करके हिप बाथ आदि की शुरूआत में महत्वपूर्ण योगदान दिया जो आज भी प्राकृतिक चिकित्सा में उनके नाम से प्रसिद्ध है जैसे मेहन स्नान के लूई कूने नाम से ही जाना जाता है। उन्होने विजातीय द्रव्य के पनपते की और उसके विभिन्न स्थानों पर जमा होने पर विस्तृत रूप रेखा तैयार की।

आपका जन्म एक जुलाहे परिवार में हुआ था। लेकिन इन्हे कई दर्दनाक परिस्थितियों का सामना करना पडा। जब आकास्मक माता–पिता के निधन व अपने शरीर के असाध्य फोडों के कारण औषधि विज्ञान के चिकित्सकों के द्वारा हतोत्साहित होना पडा इसी कारण उन्हे अपने लिए किसी सुदृढ चिकित्सा प्रणाली की आवश्यकता हुई और प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ले स्वास्थ्य को प्राप्त करने में सफल भी हो गए।

3. विनसेंज प्रिस्निज :– इनका जन्म सन् 1799 में आस्ट्रेलिया में हुआ। इनको जल चिकित्सा का जनक कहा जाता है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा मे आने से पूर्व एक घायल देखा जो बार–2 अपने उस घाव को लेकर पानी के तलाब में लेंटता था। ऐसा कुछ दिनों करने पर उसका घाव पूरी तरह ठीक हो गया था इसे देखकर उन्होने कई प्रयोग करे परन्तु इन प्रयोगों के करने के कारण उनको न्यायालय मे भी उपस्थित होना पडा परन्तु अन्ततः न्यायालय द्वारा इस पद्धति को हितकारी मानते हुए न्यायालय द्वारा उनके हित मे ही फैसला सुनाया गया। इसके पश्चात उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का खुलकर उपचार अपने घर पर ही देना शुरू किया। तथा प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में उनका विरोध होना पर भी बिना डरे उन्होने अपने पूरे विश्वास और लगन से इसके अनेकों चमत्कार किए तथा पूरी दुनिया द्वारा भी माने गए।

4. डा. इसाक जेनिंग (Dr. Isaac Jennings) :– औषधि विज्ञान के डॉक्टर के रूप में पहुचाने जाने वाले डा. जेनिंग अमेरिका में 1788 में पैदा हुए और उन्होने प्रकृति एवं सफाई को अधिक महत्व देते हुए एक बुखार के रोगी को उपवास, विश्राम और अत्यधिक पानी के सेवन के साथ शान्त वातावरण में रहने की सलाह दी इस प्रकार वह अन्य दुसरे रोगों मे एक टाइफाइड के रोगी को जिस पर दवाओं का कोई असर नहीं हो रहा था का प्राकृतिक उपचार किया। जिससे रोगी की स्थिति में सुधार होने लगा। सन् 1822 में उन्होने पूरी तरह से दवाओं का प्रयोग बन्द कर दिया और प्राकृतिक चिकित्सा करने लगे। इसका प्रयोग करने से रोगियों की मृत्युदर में गिरावट आने पर चमत्कारी प्रभाव सामने आने लगे। तथा स्वस्थ होने में भी परिणाम शीघ्र प्राप्त होने लगे। इससे उन्होने निष्कर्ष निकाला की रोग बाहरी वातावरण की नहीं वरन जीवनी शक्ति के ह्रास की देन है। उनकी उपचार पद्धति को अर्थोपैथी के नाम से जाना जाता है। इन्होने तीन किताबें लिखी "The medicial reform" "Philosophy of human life" तथा "The tree of human life as human degeneracy" है।

5. फादर सेबस्टियन नीप :– फादर नीप ने जल चिकित्सा पर अनेको प्रयोग व आविष्कार किये। इन्होने जल चिकित्सा का प्रयोग कर बडी सफलता प्राप्त की। इन्होने एक स्वास्थ गृह का संचालन 45 वर्षों तक कुशलता पूर्वक किया तथा उसके द्वारा अनेकों लोगों को प्रशिक्षित किया। इनके नाम से जर्मनी में एक नील स्टोर्स है जहां जडी बूटीयों, तेल, साबुन तथा स्नान सम्बन्धी आवश्यक वस्तुएं तथा स्वास्थ्यप्रद प्राकृतिक भोजनों का प्रदर्शन किया जाता है। इन्होने सन् 1857 ई. में जल चिकित्सा पर "My water cose" नामक पुस्तक का हिन्दी रूपान्तरण जल चिकित्सा के नाम से आरोग्य मंदिर गोरखपुर प्रचार प्रसार व प्रशिक्षण के लिए समर्पित कर दिया। इन्होने प्रकृति निकेतन विद्यापीठ डायमण्ड हार्बर जि. 24 परगना पश्चिम बंगाल में प्राकृतिक चिकित्सा के चार वर्षीय कालेज के प्रधानाध्यापक के पद के साथ मुख्य चिकित्सक का पद भी 90 वर्ष की आयु तक पूरी क्षमता के साथ सम्भाला।

इन्होने मासिक पत्रिका प्रकृति वाणी का सम्पादन भी किया तथा इनके द्वारा हिन्दी और अंग्रेजी मे लगभग 40 से उपर पुस्तकें लिखी गई।

5. आर्नल्ड खिली :– ये एक व्यापारी होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा से प्रभावित होकर व्यापार छोड कर इस चिकित्सा क्षेत्र में आ गए। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा में एक अध्ययन वायु चिकित्सा एवं धूप चिकित्सा को जोड दिया।

बाद में इन्होने सन् 1848 ई. में आस्ट्रिया में धूप और वायु का एक सेनेटोरियम स्थापित किया। जो संसार का प्रथम प्राकृतिक चिकित्सा भवन बना।

7. एडोल्फ जुस्ट :– एडोल्फ जुस्ट जर्मनी के रहने वाले थे इनके द्वारा मिट्टी चिकित्सा का विकास तथा प्रयोग और इसकी उपयोगिता की महत्ता को माना जाने लगा। इन्होने मिट्टी के अनेकों प्रयोग कर रोगों की चिकित्सा की। इनके द्वारा ही मालिश की क्रिया का जन्म भी हुआ। इन्होने महत्वपूर्ण पुस्तक "Return to nature" भी लिखी जो आज संसार भर में सुप्रसिद्धी प्राप्त कर रही है।

8. आर्नल्ड एहरेट :– डा. आर्नल्ड भी प्रसिद्ध चिकित्सकों मे से हैं। ये जर्मनी के रहने वाले थे परन्तु इनका कार्यक्षेत्र अमेरिका था। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा की फलाहार और उपवास की पद्धति पर अधिक जोर दिया तथा बडे बडे रोगों को केवल आहार तथा उपवास द्वारा ही मार भगाया। इन्होने कई पुस्तकें लिखी जिनमें से दो पुस्तके अधिक प्रसिद्ध है– "Rational falting" और "Nuculess seit healing system".

9. हेनरी लिण्डल्हार :– हेनरी लिण्डल्हार का जन्म 1 मार्च 1953 को हुआ। इन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार में लगा दिया। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा से होने वाले लाभों तथा प्रभावों को वैज्ञानिक आधार द्वारा प्रस्तुत किया। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त तीव्ररोग अपने चिकित्सक स्वयं होते है का समर्थन दिया जबकि प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के विरूद्ध जाकर रोगों उपचार में दूसरी पद्धतियों की औषधियों के सेवन पर जोर दिया। सन् 1904 में 51 वर्ष की अवस्था मे एम. डी. की उपाधि प्राप्त की। इन्होने कई पुस्तकें लिखी जिनमें मौलिक पुस्तकें, फिलोसफी ऑफ नेचर केयर प्रैक्टिस आफ केयर कुक बुक इनके अपने निजी अनुभवों द्वारा सम्पादित की हुई है।

10. बेनिडिकट लुस्ट :– बेनिडिकट लुस्ट फादरनीप के प्रिय शिष्यों में से एक थे। इनका जन्म 3 फरवरी 1872 ई. को हुआ था। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार प्रसार अमेरिका मे जाकर किया। अमेरिका मे ही इन्होने नीप–वाटर क्योर

नामक एक मासिक पत्र निकाला तथा बाद में एक पत्र नेचर्स–पथ भी स्थापित किया इनके द्वारा न्यूयार्क मे एक स्कूल तथा कालेज की स्थापना की। जो अब सुप्रसिद्ध यंग बार्न्स अस्पताल मे परिणत हो गया है। यही नहीं इसके अतिरिक्त भी इन्होने कई अन्य अस्पतालों स्कूलों तथा संस्थाओं की भी स्थापना की। इनका देहान्त 1950 ई. अपने द्वारा स्थापित अस्पताल मे ही हुआ।

11. जे. एच. टिल्डेन :– इनका जन्म अमेरिका मे हुआ। इन्होने उपचार में कारणों को दूर करने पर जोर दिया जिनके द्वारा रोग उत्पन्न होते है। तथा रोगी को प्राकृतिक जीवन जीने की शिक्षा पर भी इन्होने बल दिया इन्होने प्रसिद्ध पुस्तक "Impatired health" भी लिखी।

12 हेनरिच लेमैन :– यह जर्मनी में रहने वाले तथा एक एलोपैथी को मानने वाले थे। परन्तु बाद में इन्होने ड्रेस डेन मे एक स्वास्थ्य ग्रह भी बनाया जिसके द्वारा इन्होने मानव स्वास्थ के लिए पोपक तत्वों की आवश्यकता पर अनुसंधान किए तथा यह सिद्ध किया कि स्वस्थ रहने के लिए आहार ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

13 राबट हावड :– राबर हाबड भी एक अच्छे प्राकृतिक चिकित्सक थे। इन्होने अपने जीवन काल का बडा भाग प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित किया। राबट हावड ने भी अपने अनुभवों द्वारा प्राकृतिक आहार के सम्बन्ध में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर उसे उपचार में प्रयोग कर सफलता प्राप्त कि।

14 बरनर मैकफेडन :– बरनर मैकफेडन बहुत ही प्रसिद्ध चिकित्सक थे। इन्होने पुरा जीवन प्राकृतिक जीवन व व्यायाम पद्धतियों का अनुभव कर उसे प्रयोग करके रोगों को दूर करने पर जोर दिया। व्यायाम पद्धतियों का स्वयं अनुभव करके "Father of physical culture" की उपाधि को प्राप्त किया। इन्होने "Physical culture" पत्रिका का संपादन भी किया तथा "Book of health, Fasting for health" तथा "Macfaddens eneyolopedia forphysical culture" आदि दर्जनो पुस्तकों भी लिखी। उपवास पर इन्होने अपनी पकड बनाई तथा उपचार मे इसका प्रयोग किया।

15 डैन्सविली :– न्यूयोर्क अर्न्तगत जगत प्रसिद्ध स्वास्थ्य संस्था जैक्शन सेनीटोरियम आजकल आपकी ही संरक्षता में संचालित हो रही है। इन्होने

प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में बडे–2 कार्य किए इन्होने भी अपना जीवन चिकित्सा को दे दिया।

16 सर विलियम अर्बुथ नाट लेन :– यह एक एलोपैथी के चिकित्स थे फिर भी इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रभावों से खूब प्रभावित हुए तथा इस पर विश्वास करके इन्होने इसका खूब प्रचार प्रसार किया। इन्होने एक सुप्रसिद्ध पुस्तक Good Health भी लिखी।

17 जे. एच. केलांग :– इन्हें पूरा संसार प्राकृतिक चिकित्सक के नाम से जानता है। इनका जन्म 26 फरवरी सन् 1852 ई. को अमेरिका में हुआ इन्होने एक विशेष प्रकार का बैटिल क्रीक सेनीटोरियम बनाया जिसमें सभी चिकित्सा प्रणालियों जैसे जल चिकित्सा, आहार चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, स्वीडिश मूवमेन्ट तथा विद्युत–चिकित्सा आदि द्वारा उपचार होता है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में कई प्रकार के आविष्कार भी किए जिनमें विद्युत ज्योतिस्नान (Electric lights bath) महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त इन्होने "दि न्यु डायटेरिक्स" , "रैशनल हाइड्रोथिरैपी" तथा "होम हैंड बुक आफ हाइजीन एण्ड मेडिसिन" आदि पुस्तकें भी लिखी।

18. सर विलियम :– यह भी हेनरिच लेमैन तथा सर विलियम की तरह ही एक प्रसिद्ध ऐलोपैथी के चिकित्सक होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा में अगाध विश्वास रखते थे। इन्होने "The principles practice of medicine" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी।

बेल सेलमन एम. डी., विन्टर निट्रल, आटो कार्क, एडगर, जे. सैकसन

शेल्टन, इलियर, पंज, ओसवाल्ड, हरबर्ट स्पेन्सर, टर्न वेटर जान, बोन पीजली, हैन्स माल्टेन, एडविन बैबिट एन. डी., मिल्टन पावल आदि अनेकों ही और भी चिकित्सक है। जिन्होने अपना जीवन प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित किया तथा इसके द्वारा रोगों का उपचार करके अनेकों रोगों पर विजय प्राप्त कि साथ ही साथ संसार के समस्त अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए तथा इनके द्वारा अनेकों पुस्तकों गई जो आज प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए अनमोल धरोहर है।

2.6 सारांश :– हमने उपरोक्त इकाई में यह जानकारी प्राप्त की है कि प्राकृतिक चिकित्सा तो प्रकृति के साथ ही आरम्भ हुई। परन्तु चिकित्सानूभुति भारतवर्ष में समय समय पर विभिन्न प्राकृतिक चिकित्सकों द्वारा अपनाई गई तथा नए–नए रोगों में एक विश्वास से भरे प्रयोग जुडते चले गए देश के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और भारत वर्ष के स्वर्गीय मोरानूजी देसाई जैसी विभूतियों ने भी इसके महत्व को स्वीकार किया ऐसे ही वैज्ञानिक प्रयोग विदेशों मे भी रहे और उन्हे अनुभव हुआ कि पंचतत्व चिकित्सा का आधार बहुत ही परिणाम दायी है। डा. लूइकूने जैसे प्रसिद्ध चिकित्सकों ने भी इसके विभिन्न रूपों को भी प्रतिपादित किया और इस क्षेत्र में विभिन्न मील के पत्थरों को स्थापित किया इन जैसे महान चिकित्सकों कि प्रेरणा पा कर भारतवर्ष में कृष्णम राजु, विट्ठलदास मोदी, डा. महावीर दास पोटदार, डा. हीरालाल, जैसे लोगों ने इसके चिकित्सालय स्थापित किए इन्हीं सब चिकित्सकों का जीवन परिचय हमने इस इकाई मे पढा।

2.7 बौधात्मक प्रश्न (अभ्यासार्थ)

प्रश्न –1 – प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का वर्णन करते हुए विदेशी प्राकृतिक चिकित्सकों के जीवन पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न –2 – भारत में प्रथम चरण के प्राकृतिक चिकित्सकों एवं देंश के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाए जाने का विवेचन कीजिए।

प्रश्न –3 – विट्ठल दास मोदी, कुलरंजन दास मुखर्जी और महावीर प्रसाद पोद्धार के प्राकृतिक चिकित्सा में योगदान का वर्णन करे।

संदर्भ ग्रन्थ :–

- प्राकृतिक आर्युविज्ञान – राकेश जिन्दल
- वृद्ध प्राकृतिक चिकित्सा – डा. ओ. पी. सक्सेना

इकाई : 3 – जीवन शैली के रोग एवं पंचमहाभूत

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.2.1 जीवन शैली के छः रोग एवं उनके कारण

3.2.2 मधुमेह, कारण – लक्षण एवं चिकित्सा

3.2.3 कब्ज रोग कारण – लक्षण एवं चिकित्सा

3.2.4 हृदय रोग कारण – परहेज एवं चिकित्सा

3.2.5 मोटापा रोग कारण – लक्षण एवं चिकित्सा

3.2.6 तनाव रोग कारण – लक्षण एवं चिकित्सा

3.2.7 अवराध रोग कारण – लक्षण एवं चिकित्सा

3.2.8 पंचमहाभूत चिकित्सकीय महत्व

3.3 सारांश

3.4 बोधात्मक प्रश्न

3.25 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के उद्देश्य जीवन शैली जन्य रोगों के कारण

जीवन शैली जन्य सामान्यतः उत्पन्न विभिन्न प्रकार के रोग

जीवन शैली रोगों के लक्षण

जीवन शैली जन्य रोगों एवं पंचमहाभूत द्वारा चिकित्सा

प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत जीवन शैली जन्य रोग एवं उनकी पंचमहाभूत, प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है। हमारे देश के रीति–रिवाज आदिकाल से यहां के वातावरण पर आधारित होते आये हैं। जिस देश काल में जो मनुष्य रहता आया है, वहां उत्पन्न होने वाली औषधि तथा वहां का आहार–विहार रूपी प्राकृतिक जीवन उन्हीं मनुष्यों के आरोग्य संवर्धन हेतु हितकर होता है। आयुर्वेद शास्त्र में कहा भी है – ''यस्य देशस्य जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्''

जीवन शैली से तात्पर्य अच्छा खाना एवं अच्छे कपड़े पहनना मात्र है। पर्याप्त नहीं है, अपितु प्रातः काल सोकर उठने से लेकर पुनः रात्रि में सोने (शयन) तक मनुष्य जो जो दैनिक जीवन में शारीरिक एवं मानसिक व्यवहार तथा आचरण करता है जैसे – नियमपूर्वक स्नान, ध्यान –जलपान – प्रातः नास्ता, दिन का भोजन, रात्रि का भोजन, निद्रा, बह्मचर्यादि यम नियमों का पालन सभी व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के पहलू जीवन शैली के अन्तर्गत समाहित है।

आज का मानव शरीर से यंत्र रूपी मशीन की भांति कार्य ले रहा है। इसीलिये भांति भांति के शारीरिक एवं मानसिक जीवन शैली के रोग उत्पन्न होने वाले जीवन शैली के रोग यथा – 1 मधुमेह 2 कब्ज रोग, 3 हृदय रोग, 4 स्थौल्य (मोटापा रोग 5 तनाव रोग 6 अवसाद रोगों के कारण उनके लक्षण तथा उनकी प्राकृतिक पंचमहाभूत चिकित्सा एवं अपथ्य परहेज का वर्णन किया गया है। जिससे स्वस्थ व्यक्ति स्वस्थ रहते हुये अपने स्वास्थ्य का संरक्षण करता रहे एवं रोगी व्यक्ति इस इकाई में दी गयी चिकित्सा परहेज एवं रोगों के उत्पन्न होने के कारणों का परित्याग कर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सके। साथ ही प्राकृतिक पंचमहाभूत ''आकाश – वायु – अग्नि – जल – पृथ्वी तत्व द्वारा निर्धारित चिकित्सा द्वारा वंशानुगत रोगों से मुक्ति पाते हुये स्वयं परिवार समाज राष्ट्र एवं विश्व में आरोग्यता संवर्धन कर सके।

जीवन शैली के रोग होने के कारणः

आज के इस भौतिकवादी यांत्रिक युग में पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में मानव अभयनिदित असंतुलित तनावपूर्ण दिनचर्या – रात्रिचर्या में जीवन जी रहा है। अत्यन्त ही दुःख का विषय है कि भौतिक तथाकथित सुखों की तलाश में तनम न और धन के दुरूपयोग को जानते हुये भी सभी आयु वर्गों में विशेषकर युवी पीढ़ी में बीड़ी सिंगरेट, गुटखा, जर्दा, तम्बाकु, मदिरा – नशे की गोलियां एवं स्मैक आदि दुर्व्यसनों का प्रचलन विश्व के सभी देशों में बढ़ रहा है।

भारतीय परिवेश में देखा जाय तो भोग विलाशी संस्कृति, प्रज्ञापराध, अबह्मचार्य, दूषित एवं मिलावटी आहार विहार कीटनाशक रसायनों से उत्पादित अहार सामग्री, इलेक्ट्रिक उपकरणों से उत्पन्न आणविक तरंगों के दुष्प्रभाव, पाश्चात्य चलचित्रों एवं भ्रामक विज्ञापन पर आधारित जीवन पद्धति तथा शारीरिक श्रम के अभाव में मनुष्य रोगी होता जा रहा है।

आज मनुष्य भौतिक संसाधनों को जुटाने के चक्कर में स्वयं घनचक्कर हो रहा है। कभी कभी तो यह संदेह भी होता है कि भौतिक सुख सुविधाओं के संसाधनों को जुटाने का प्रयास करने वाला वह व्यक्ति क्या उनका कभी उपयोग/उपभोग भी कर पायेगा? कब सोना चाहिये? कब खाना चाहिये? कैसे (शयन) सोना चाहिये? कैसे खाना चाहिये? ऋतु के अनुसार आहार – विहार, दैनिक जीवन चर्या, सदाचार सभी को मानव धीरे धीरे भूलकर प्रकृति से दूर होता जा रहा है। उपरोक्त रोग जन्य कारणों से उत्पन्न जीवन

शैली के रोग जैसे – 1 मधुमेह रोग 2 कब्ज रोग 3 हृदय रोग, 4 स्थौल्य – मोटापा रोग 5 तनाव राग 6 अवसाद (डिप्रेशन रोग) आदि के बारे में वर्णन किया जा रहा है।

1 मधुमेह रोग – मधुमेह जिसे डायबिटीज नाम से भी जाना जाता है यह रोग आज के श्रम विहिन समाज का जाना पहचाना रोग है। मधुमेह रोग अकेला रोग नहीं है वरन् इसके दुष्प्रभाव आंखों, व्रक्क, हृदय आदि अंगों पर घातक प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आनुवंशिकता एवं भोगवादी संस्कृति के कारण यह रोग स्थूल व्यक्तियों में बहुतायत से होता है। सामान्यतया जो लोग अधिक समय तक बैठे रहते हैं। जिनके जीवन में श्रम का अभाव होता है तथा जो आहार में चीनी, चावन, मैदा, मिठाई, बिस्कुट, केक, चाकलेट, आइसक्रीम, शीतल पेय, शर्करा युक्त खाद्य पदार्थ का अति सेवन फास्ट फूड, कृत्रिम पेय, शराब, मांस , तला तथा तेज मिर्च मसालों का आहार तनाव, क्रोध, ईर्ष्या एवं तनाव के दबाव में हमेशा रहने वाले व्यक्ति अन्तः स्रावी ग्रंथियों में विकृति आती है।

परिणामस्वरूप अग्नाश्य ग्रंथी का कार्य प्रभावित होता है, उसकी अक्रियाशीलता से इन्सुलिन कम बनता है या नहीं बनता है जिससे मधुमेह रोग हो जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र में आचार्य चरक ने बताया है कि ''आस्थासुखं स्वप्नसुखं दधीनी ग्राम्योकानूपरसभांसपंयासी।

नवापन्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्।।

चरक चि. 6/4

अर्थात् गुदगुडे बिस्तरे पर निश्चेष्ट आराम से पड़े रहना,

सूखपूर्वक अधिक सोना, दही का सेवन अधिक करना,

जलीय प्राणियों के मांस का सेवन, दूध/मावा का अधिक सेवन, शर्करा/गुड़ के बने पदार्थ, कफवर्धक आहार का सेवन अधिक करने से मधुमेह सहित अन्य प्रमेह रोग उत्पन्न होते है।

आधुनिकमतानुसार इस रोग में रक्त के अन्दर ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है। इन्सूलिन की मात्रा की उत्पत्ति कम एवं कार्बोहाइड्रटस का परिपाचन ठीक नहीं होता अग्नाशय की बीटा सेल्स में इन्सुलिन की उत्पत्ति कम होती है।

मधुमेह के लक्षण :

अत्यधिक एवं बार बार मूत्र त्याग करना मूंह सूखना एवं प्यास अधिक लगना

भूख अधिक लगना

शरीर का वजन क्रमशः कम होना

थकावट एवं कमजोरी लगना

घाव का विलम्ब से भरना

त्वचा मसूड़ो ंएवं श्वसन तंत्र में संक्रमण होना

सम्पूर्ण शरीर सहित गुप्तागों पर खुजली होना

आंखों से घुघंला एवं कम दिखना

यौन निर्बलता एवं नपुसंकता आना।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत यम – नियमों का पालन करना। हलासन, संर्वागासन, पश्चिकोतानापन, जानु शिरासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, मण्डूकासन, गुजंगासन, शंशाकासन, गोमुखासन करने से लाभ होता है।

प्राणायाम के द्वारा अग्निसार क्रिया, महाबंध मस्तिक, कपाल भाति क्रिया के द्वारा अग्नाशय की सक्रियता बढ़ती है एवं इन्सुलिन का निर्माण होने लगता है।

मरोचासन आदि मरोड वाले आसनो ंसे विशेष लाभ होता है।

सूर्यनमस्कार द्वारा पादहस्तान की क्रिया में अग्नाशय पर आगों दबाव एवं भुतंगासन की स्थिति में जो दबाव उस पर इन्सुलिन का स्राव नियमित होता है जिसे मधुमेह की नियुक्ति होती है। अग्नाशय ग्रंथि पर गरम ठण्डा सेम, परस्पर ठंडी मिट्टी पट्टी, नीम का एनिमा, गरम ठंडा कटि स्थान से मधुमेह में लाभ होता है। मधुमेह में प्रतिबंधित खाद्य पदार्थ –

शक्कर, ग्लूकोज, जाम, शहड, मिठाइयां, चाकलेट, मीठे पेय, मीठा दूध, मीठे बिस्कूट, केक, पिवरमेट, गुलकन्द, ड्रायफुट, मछली एवं सभी प्रकार के व्यसन नहीं करना चाहिये।

मधुमेह में सेवनीय : जौ चना, बाजरा, मूंग, मैथी, करेला, लौकी, टिण्डा, तुरई, पालक, चौलाई, सलाद, टमाटर का भरपूर सेवन करें।

प्रातः काल बह्म महुर्त में जागरण। करैला – मैथी दाना सलाद का नाश्ते में उपयोग करें।

सम्पूर्ण शरीर की वैज्ञानिक मालिश विशेषकर पैरों में तलवों में अवश्य करनी चाहिये।

2 कब्ज रोग – कब्ज आधुनिक सभ्यता का रोग है कोष बद्धता, मलबंध मलावरोध आदि नामों से पुकारते है। आयुर्वेद शास्त्र में इसे विबन्ध नाम से जानते है। वस्तुतः कब्ज रोग आमाशय की वह स्वाभाविक परिवर्तन ही अवस्था है जिसमें मल निष्कासन की प्रक्रिया मंद हो जाती है। मल की मात्रा कम हो जाती है, या मल कड़ा पिण्डीभूत हो जाता है। उसकी आवृति कम हो जाती है, या मल विसर्जन के समय अधिक जोर (बल) लगाना पड़ता है। मल विसर्जन की आवृत्तिस एवं मल की मात्रा व्यक्ति विशेष एवं आहार की मात्रा पर पृथक पृथक निर्भर करती है।

कब्ज के कारण –

1 शरीर में जल तत्व की कमी होना।

2 भोजन के तुरन्त बाद पानी पीना।

3 रेशेयुक्त आहार का सेवन कम करना।

4 आलस्यमय जीवन, श्रम का अभाव

5 बिना स्वाभाविक भूख के बार बार खाना

6 रात्रि में देर से भोजन करना एवं तुरन्त सो जाना।

7 मानसिक तनाव करना आदि

8 भोजन में अम्ल का प्रयोग अधिक एवं क्षार का प्रयोग कम करना।

9 भोजन के नियमों का पालन नहीं करना।

10 अनाप–शनाप ठूंस ठूंस कर खाना।

कब्ज रोग की प्राकृतिक चिकित्सा

1 कब्ज रोग में जुखाम नुकदानदायक होता है। इससे आंतों की सामाजिक गति एवं कार्यों को नुकसान होता है। आंतों की कार्यक्षमता धीरे धीरे कम होती जाती है। अतः प्राकृतिक नीम के पानी का हल्का गुनगुना प्रातः काल एनिमा लेना

लाभदायक होता है। पेट पर मिट्टी पट्टी मिनट करने से भी कब्ज में आराम मिलता है।

2 हल्का गुनगुना पानी पीकर उपवास करना।

3 उपवास काल में इसाहार फलाहार का सेवन

4 गाजर पालक मूंग की छिलके वाली दाल का सेवन

5 भोजन में फल एवं सब्जियों की मात्रा अधिक लेवें।

6 चोकर युक्त आटे का सेवन करें।

7 घी तेल आचार मिठाइयां, तेज मिर्च मिसालों से बचें।

8 प्रातः ब्रह्म मुहुर्त्त में उठे, उसाः पान 1/2 से 1 लीटर पीवे।

9 सप्ताह में एक दिन उपवास एवं नींबू पानी का सेवन करें।

10 प्रातः प्राकृतिक मनोरम वातावरण में प्रसन्न मुद्रा में घूमे।

11 कटि स्नान 5 से 20 मिनट

12 सूर्य नमस्कार मंत्रों के साथ करें।

13 प्रातः काल खाली पेट 5 से 10 मिनट पेट की सूखी मालिश करें।

14 नाभिक के चारों उपर चार पांच ईंच चौडी पट्टी चारों लपेट तीन चार बार घुमाकर देवें।

15 पादहस्तासन, पश्चिमकान्तानासन, अग्निसारक्रिया कपाल भाति, त्रिबन्ध, मूलबंध, गणेश क्रिया, आदि का प्रयोग लाभदायक हेता है।

16 पेट का गर्म ठंडा सेक, पेडू पर मिट्टी पट्टी देकर गुनगुने पानी का एनिमा तथा पेडू की हल्के हाथ से दांयी से बांयी ओर मसाज करें।

17 उदरशक्ति विकासक क्रियायें, पवनमुक्तासन, उड्डियान बंध का अभ्यास लाभदायक होता है।

3 हृदय रोग – आज के तनाव पूर्ण एवं मागम भाग के युग में अधिकांश व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूपेण अस्थ्वस्थ्य होते जा रहे है। असंमित दिनचर्या प्रदूषित जीवन

शैली, प्रदूषित आहार विहार मानसिक तनाव मोटापा (स्थूलता) मधुमेह आमवात आदि रोगों के दुष्परिणाम स्वरूप हृदय रोगियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है।

हृदय रोगों के लक्षण –

वैवर्ण्यमुर्च्छाज्वर का सछिका श्वासास्येवैरस्यतृषाप्रमोहा

छर्दिकफोल्वेलेशसजोडरूचिश्चहृद्रोगजास्युविविघा स्तर्थाडिन्ये

अर्थात् – विर्वणताः मुर्छा, ज्वर, कासा छिक्का श्वास

मुख कि विरसता, तृष्णा, मोह वमन काम का उत्केलश

वेदना भोजन में अरूचि आदि अनेक लक्षण हृदय रोग

साथ ही शरीर में चक्कर आना काम में मन न लगना

नींद न आना सीने में दर्द, थेडी सी परिश्रम से थकावट आना, सोथ (सुजन) सोफ शिराओं का फूला रहना, पाडुंता पींडा धड़कन प्रलाप ज्वर बेहोशी के दौरे अचानक मृत्यु आदि लक्षण मिलते है।

अन्य लक्षणों में – चक्कर , भ्र म, पसीना अधिक आना, घबराहट, सिर में पीछे की तरफ या सम्पूर्ण सिर में दर्द, बायें हाथ का भारीपन, सून्नपन होना।

हृदय रोगों के बढ़ने के कारण (निदान)

1 विरासत अर्थात् वंशागत

2 मानसिक अनिगम और तनाव

3 नमक का अत्यधिक और अविवेकपूर्ण उपयोग

4 स्थुलता अत्याधिक शारीरिक भार

5 अपर्याप्त शरीर श्रम

6 धूमपान

7 मद्यपान

8 आरामदायक जीवन, आयाम का अभाव

9 मांस, मेदा, चीनी, तेल खटाई, कोलेस्ट्रायुक्त आहार का अधिक सेवन

10 आचार, मसाले तथा तली–भूनी वस्तुएं गरिष्ठ होती है।

11 हमेशा उत्तेजित रहना, श्रम कम या बहुत अधिक करना।

12 रात्रि जागरण के कारण, अधिक खाना अधिक वीर्य का श्रम करने का कारण बढ़ता है।

13 भोजन के बाद परिश्रम नहीं करना अधिक खाना अधिक वीर्य का श्रम करना रक्त चाप बढ़ने का कारण।

14 विलासितापूर्ण जीवन

15 अनियमित – असंतुलित। अमर्यादित दिनचर्या का सेवन करना।

3 अपव्य अहार – नमक, मैदा (बारीक आटा) कॉलोस्ट्राल वर्धक मछनी मांस अंडे वसायुक्त भोजन

मछली मांस अंडे वसायुक्त भोजन

चाय – कॉफी, सिगरेट, जर्दा, गुटखा धूमपान आदि व्यसन

आचार चटनी पापड

नमकीन मूंगफली, पानी पत्ताशा आदि अधिक नमक वाली वस्तुए का सेवन करना।

उच्च रक्तचाप की चिकित्सा –

1 सर्वप्रथम जिन कारणों से उच्च रक्तचाप होता है। उनका कारणों से बचना चाहिये।

2 यम नियमों का पालन करने से चिन्ता, मय, क्रोध, शोक आदि मानसिक कारण तथा असंयम की आदत से छुटकारा मिलता है।

3 शीतली, भाम्ररी एवं उदगीथ प्राणायाम से मन की चंचलता दूर होकर शांति प्राप्त होती है।

4 रिलेक्स के आसन योग निद्रा, शवासन से तनाव एवं हृदय गति सामान्य होती है।

5 अनुलोम – विलोम प्राणायाम एवं कपाल भाति से हार्ट के ब्लोकेज दूर होते हैं। मस्तिष्क की नाड़िया शुद्ध होती है।

6 सूर्य नमस्कार सामान्य एवं मंदगति से करने पर हृदय की पेशियां, रक्त वाहिनियां स्वस्थ होती है। एवं मंत्रों से तनाव दूर होकर मन को शांति प्राप्त होती है।

7 नीम का एनिमा प्रतिदिन लेने से उदर में हल्कापन आता है। जिससे वक्ष में दर्द – भारीपन दूर होता है।

8 गरम ठंडी चादर की वक्ष प्रदेश पर लपेट लेवें।

9 कटि स्नान गरम ठंडा लेवें।

10 नाड़ी शोधन प्राणायाम एवं शिथिलासन से उच्च रक्त चाप दूर होता है।

4 स्थौल्य (मोटापा) परिचय

आज मोटापा सम्पूर्ण विश्व में तेजी से फैल रहा है। बड़े ही नहीं बच्चे भी अब मोटापे का तेजी से शिकार होते जा रहे है। शारीरिक श्रम का अभाव तनाव तथा भोजन की अनियमितता, असयमित जीवन चर्या के कारण मोटापा बढ़ रहा है।

मोटापा अनेक रोगो की जननी है।

जितने भी संसार में रोग है उनमें से अधिकतर जैसे – मधुमेह, उच्च रक्त चाप, हृदय रोग, स्नायु रोग, वात रोग, घुटनों का दर्द, कमर दर्द, लकवा (पक्षाघात) आदि स्थौल्य के कारण होते है।

आज का तनाव पूर्ण जीवन शैली एवं भागम भाग की जिन्दगी निंद्रा की दवाइयों का सेवन, श्रम का अभाव के कारण शरीर का न्यूरोइंडोक्राइन सिस्टम असन्तुलन हो जाता है। तथा मेटाबोलिक अनियंत्रित हो जाता है। तथा भेद बढ़ने लग जाती है।

स्थुलता मोटापा के कारण एवं लक्षण –

व्यायाम का अभाव दिवास्थ्वप्न, श्लेष्नोवर्धक आहार का सेवन करने से आमरस मधुर एवं स्निग्ध होने से भेद को उत्पन्न करता है। भेद के द्वारा स्रोतो का अवरोध हो जाने से अन्य धातुओं का पोषण नहीं हो पाता है।

केवल भेद की वृद्धि निरन्तर होती रहती है।

इसमें कार्यशति कम तथा आयु कम होती है।

थोडे से परिश्रम से श्वास वेग बढ़ जाता है।

प्यास, अनज्ञान, निद्रा अकस्मात श्वासावरोध अंगशैथिल्य

अत्यधिक भुख स्वेद तथा शरीर दुर्गन्ध से पीड़ित रहता है एवं धातु वैषभ्यता के कारण दुर्बलता, जाठराग्नि प्रबल होने से सुधा अधिक लगती है। उसकी जीवनी शक्ति एवं मैथुन शक्ति का क्षय होता है। सभी प्राणियों में उदर, कटि, ग्रीवा के पश्च भाग में भेद का संचय अधिक मात्रा में होता है।

अतः स्वी व्यक्ति का उदर ही अधिक बढ़ता है।

आधुनिक मतानुसार –

1 निः स्रोत ग्रंथियों की क्रियाहीनता के कारण विशेष रूप से थायोराइड ग्रंथि के TSH की मात्रा के कारण मोटापा बढ़ता है।

2 अन्तः स्त्रावी ग्रंथियों की विकृति या स्रोतों में कमी–अधिकता से मेटाबोलिज्म की क्रिया कम हो जाती है जिससे वसा का भंजन नहीं हो पाता और वह धातुओं में एकत्रित होकर भेद बढ़ता जाता है एवं स्थूलता प्रदान करता है।

Obesity is a condition in which there is an excessive amont of body fat.

मोटापा की प्राकृतिक चिकित्सा

1 आहार में चावला, दूध, धी, दही, दालों, ताकसिक भोजन मिठाइयां, तेज मसालें, तेल, चाय, केले, आलू आदि का सेवन त्यागना चाहिये।

2 बार बार खाना, आलस्यमय जीवन, परिश्रम नहीं करना, दिन में अधिक सोना इनका त्याग करना चाहिये।

3 भोजन में क्षारयुक्त, रेशेदार आहार की मात्रा बढावें।

4 शहर एवं नीबू पानी का खाली पेट सेवन करें।

5 मलाई रहित दूध या छाछ का सेवन

6 नाश्ते की आदत का त्याग करें।

7 गुनगुना पानी का सेवन दिन भर करें।

8 ताम्ब्र पात्र का जल पीवें।

9 नीम पत्र का एनिमा प्रतिदिन 1 माह तक लेवें।

10 30 मिनट पेडू पर मिट्टी पट्टी रखें।

11 उपवास सप्ताह में 2 बार करें।

12 कटि स्नान गरम एवं ठंडा प्रतिदिन लेवें।

13 टमाटर एवं लोकी/खीर ककड़ी एवं नीबू का मिक्स ज्यूस लेवें।

14 खारी – ककड़ी, टमाटर, सलाद का प्रयोग भूख लगने पर करें।

15 सोते समय एवं प्रातः काल गरम जल 1 गिलास पीवें।

16 सूर्य नमस्कार, अर्धनौकासन, उदर परिवतर्ननासनख त्रिकोणासन एवं सर्वागासन का अभ्यास प्रतिदिन प्रातः सांय खाली पेट करें।

5 तनाव रोग – तनाव दैनिक दिनचर्या में उत्पन्न होने वाला व्यवधान है जो कि अनिद्रा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग अपच एवं मानसिक रोगों को बढ़ाने में सहायक है।

आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक वैश्विक युग का सबसे महान रोग ''तनाव रोग'' की श्रेणी में आता है।

आज प्रत्येक मानव न्यनाधिक तनाव रोग से पीड़ित है।

तनाव के कारण

1 जीवन में चिंता ग्रस्त होकर जीना।

2 अकारण क्रोध अधिक करना।

3 किसी पर भी विश्वास का न होना।

4 भय के वातावरण का बने रहना।

5 समस्या समाधान की बजाय कल पर छोड़ना।

6 कार्य करने से डरना।

7 भोजन एवं विश्राम नियमित समय पर नहीं करना।

8 मनोवैज्ञानिक गहन परिवर्तन शरीर एवं मन में होना।

9 अचानक गम का आना।

10 सांसारिक अपेक्षाओं/इच्छाओं की पूर्ति न होना।

11 प्रेम प्यार में विफल होना।

12 जर–जोरू–जमीन का विवाद होना।

13 शहरी जीवन की भाग दौड़,

14 सामाजिक रिवाजों का टूटन

15 एकल परिवार क बढ़ावा

16 मंहगाई का बढ़ाना

17 बेरोजगारी का बढ़ना

18 गम्भीर बिमारी से पीड़ित होना

19 रोजी रोटी को लेकर असुरक्षा की भावना की सोच बढ़ाना

20 बिना सोचे समझे कार्य जल्दबाजी में करना

21 तामसिक, राजसिक भोजन करना।

तनाव का शरीर एवं मन पर दुश्प्रभाव होना –

1 मानसिक रूप से परेशान होना।

2 स्नायु दौर्बल्यता होना।

3 मनोअवसाद, डिप्रेशन, पागलपन से पीड़ित होना।

4 अनिद्रा रोग से ग्रसित होना।

5 शारीरिक रोग जैसे – सिर दर्द, उच्च रक्त चाप, अल्सर, हृदय रोग, कैंसर, मधुमेह आदि से पीड़ित होना।

6 शरीर का मेटालोजिक – केटाबोलिक चयाफ्यांत्मक सिस्टम बिगड़ना।

7 श्वासों का असंतुलन

8 एसिडिटी बढ़ना

9 याददास्ती कम होना

10 चेहरे से मुस्कान तेज आना – कांति गायब होना।

तनाव रोग की चिकित्सा

1 योगासनों के अन्तर्गत ध्यान के आसन करना।

2 मेडीटोशन एवं प्राणायाम का अभ्यास करना।

3 मन में धैर्य संयम एवं आत्मविश्वास को बढ़ाना।

4 प्रतिदिन स्नानादि करना, आस्तिक होना।

5 सदैव प्रसन्न मुद्रा में रहने का अभ्यस करना।

6 सूर्यनमस्कार, वज्रासन, शवासन, नाड़ी शोधन प्राणायाम, भ्रामरी एवं उद्गीय प्राणायामक ा अभ्यास करना।

7 हीनभावना एवं लोग क्या कहेंगे? ऐसे विचारों का त्यागना।

ज्यूस एवं सलाद का अधिक उपयोग

सात्विक आहार एवं विहार तथा विचारों को बढ़ाना।

कब्जी दूर करना क्योंकि मल सड़ने में गर्मी का दिमाग में चढ़ जाती है।

उपवास करना, फलाहार करना,

ठंडे – शीतल पानी का एनिमा देना

क्मर में मिट्टी की गीली पट्टी तथा भीगीचादर लपेट करना

नींबू पानी का रस अधिक मात्रा में लेना

शिरोधार एवं शिरोबस्ति का प्रयोग करना

ललाट पर चन्दन का लेप करना।

6 अवसाद रोग परिचय

आयु का हित हितत्व और दुःखात्मकता निरन्तर परिवर्तित रूप से शरीरेन्द्रिय सत्वात्म संयोग के साथ संसृष्ट रहती है। भौतिक युग में सर्वदा हितत्व एवं सुखात्मकता की ओर ही व्यक्ति का झुकाव रहता है। कोई भी व्यक्ति दुःखी और अहितत्व को प्राप्त नहीं करना

चाहता है। लेकिन उसके कर्मों के अनुसार उसे यह प्राप्त होकर भोगना पड़ता है। इस भोगने की परिस्थिति में जो व्यक्ति संयम और सहिष्णु रहता है। वह इस संकटमय परिस्थिति में यथा समय उबर जाता है।

लेकिन जो इसे भोगने की परिस्थिति को झेल नहीं पाता वह मानसिक दृष्टया अस्थिर हो जाता है।

दुःखी संतप्त एवं पीड़ित मन में जब कोई कार्य करने का उत्साह नही रहता है तो वह अवसन्न हो जाता है।

उसकी क्रिया अर्न्तमुखी तथा शिथिल हो जाती है।

यह अवसाद की स्थिति है। सम्पूर्ण विश्व में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव तेजी से उभर रहा है।

सयुक्त परिवार प्रथा विनाश के कगार पर है।

व्यक्ति एकल परिवार का होता जा रहा है।

उसमें भय, अविश्वास, निराशा एवं प्रतिस्पर्धा के चलते भौतिक संसाधनों की प्राप्ति उपयोग के कारण मनोरोग से ग्रस्ति होता जा रहा है।

सुविधाओं की बढ़ती प्यास, घर एवं कार्यालयों की नोक झोक दम तोडती आशाएं मन की टुटन दुखाकर स्मिरतियों की चुमन, सवादशीलता का अभाव, सुचना की अधिकता टीवी एवं रेडियों अहनिर्श बढ़ते समाचार अखबारों की अधिकता भ्रयक नकारात्मक विज्ञापन उच्च जीवन स्तर, टी.वी., फ्रीज कूलर कम्प्यूटर मोबाईल आदि इन सबको प्राप्त करने या उपयोग हेतु समता से अधिक श्रम, कष्टसाध्य एवं असाध्य व्याधियों से पीड़ित तथा मनोविघात कर भावों एवं द्रव्यों का सेवन।

अन्तः स्रावी ग्रंथियों के स्रावों का असन्तुलन प्रियजन की मृत्यु का आकस्मित समाचार व्यवसायों में अचानक आर्थिक हानि इच्छित स्थान से अचानक स्थानन्तरण आदि कारणों से व्यक्ति को चारों तरफ दुःख ही दुःख दिखाई देता है। और वह अवसाद ग्रस्त हो जाता है।

अवसादों के लक्षण :

1 एकान्तप्रियता

2 उत्साह हानि (निराशा)

3 अनिद्रा

4 अगंसाद/दौबल्यि

5 अग्निमांद्य

इन पांच लक्षणों में से अधिकतर लक्षण अवसाद के रोगियों में कम/अधिक मात्रा में मिलते हैं।

अवसाद रोग की चिकित्सा

1 भ्रामरी एवं उद्गीथ प्राणायाम से एन्डारफिन तथा एनसेफोलिन हार्मोन का स्राव बढ़ने से अवसाद जन्म हार्मोन – सिरोटोनिन, डोपामीन एवं नारऐड्रेनालिन हार्मोन्स संतुलित मात्रा में आने से आनन्द एवं उत्साह की अभिवृद्धि होती है।

2 अनुलोम – विलोम प्राणायाम से मस्तिष्क में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ने से कोशिकाओं की थकान दूर होती है जिससे कार्य करने में अभिरूचि/आनन्द प्राप्त होता है।

3 सिंहासन, भुजंगासन से स्नायु मंडाल की सक्रियता बढ़ती है जिससे उत्साह हानि, निराशा दूर होती है।

4 सूर्य नमस्कार के द्वारा नेत्रों से मानसिक शक्ति एवं आसनों से शारीरिक शक्ति का विकास होता है।

5 योगनिद्रा करने से अवसादों के लक्षणों में अनिद्रा दूर होती है।

6 भक्ति योग करने से अर्थात् ईश्वर प्राणिधान करने से सात्विक भाव जागृत होकर सुख/आनन्द प्राप्त होता है।

हरीपत्तेदार सब्जियों का प्रयोग।

अंकुरित अनाज का सेवन करें।

नींबू, आंवला, संतरा का सेवन करें।

गर्म ठण्डा सेक, पेडू की मिट्टी पट्टी एवं गुनगुना एनिम देवें।

ऊंकार का अजयाजप जाप करें।

पंचमहाभूत –

प्राणियों का शरीर पंचमहाभूतों – आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी तंत्वें से बना होता है।

1 आकाश महाभूत से तात्पर्य हमारे शरीर के अन्दर स्थित असंख्य सूक्ष्म अवकाश के क्षेत्र जिनमें गति होती है। रक्त संचार होता है, वायु का संचार होता है। इन सभी आकाशीय क्षेत्रों की आरोग्यता हेतु ''उपवास'' रूपी आकाश तत्व की महत्ता है।

2 वायुमहाभूत – आकाश के साथ वायु महाभूत भी महत्वपूर्ण है। बिना वायु के प्राणों अर्थात् जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जहां दवा काम नहीं करती वहां हवा काम कर जाती है। ऐसी कहावत प्राणतत्व के बारे में प्रचलित है। वायु महाभूत से तात्पर्य प्राणायाम – योगासन – सूर्य नमस्कार आधि विधियों से आरोग्य प्राप्ति में होता है।

3 अग्निमहाभूत – जब तक शरीर में प्राण रहता है तब तक शरीर में गर्मी भी बनी रहती है। प्राण निकलने पर शरीर भी ठंडा हो जाता है। जीवन में अग्नि – तेज, ऊष्मा का महत्व है उसी प्रकार ''सूर्य'' का भी इसमें घनिष्ठ संबंध है। सूर्य किरणें आरोग्यदायक एवं प्राणशक्ति वर्धक होती है। अतः अग्निमहाभूत का तात्पर्य सूर्यकिरण चिकित्सा'' से प्राकृतिक चिकित्सा में अभिप्राय है।

4 जलमहाभूत – शरीर में तरलता, द्रवता, स्नान, भोजन, स्वच्छता, आदि कार्य जल के द्वारा सम्पादित होते है, प्राकृतिक चिकित्सा में जल महाभूत का कटिस्नान, रीढ़ स्नान, मेहन स्नान, वाष्प स्नान, हस्त–पाद स्नान, पट्टियां , स्पंज बाय, शावर बाय आदि विधियों के प्रयोग होता है। इस महाभूत को ''पानीयं प्राणिनां प्राणाः'' प्राण भी कहा है। इसके बिना स्वस्थ एवं बीमार दोनों का जीवन चलना असंभव है।

आहारनली को साफ करने में, आंतों की सफाई करने में, पाचक रसों को स्त्रवित करने में इसका महत्व है।

5 पृथ्वी महाभूत : – सृष्टि में अन्न फल फूल, सब्जि, वनस्पतियां, औषधियां सभी पृथ्वी महाभत पर आधारित है। प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी पट्टी पृथ्वी महाभूत की देन है। ताप का संतुलन करना दुर्गन्ध नाशक कीटाणुनाशक, आकृति प्रदान

करना, खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करना – शरीर का धारण करना इस महाभूत की विशेषता है।

सारांश –

प्रस्तुत इकाई में जीवन शैली जन्य छः रोग मधुमेह, कब्ज रोग, हृदय रोग, मोटापा, तनाव एवं अवसाद रोगों का परिचय तथा इन रोगों के उत्पन्न होने के जीवन शैली जन्य कारण इनके लक्षण तथा उनकी योगासन प्राकृतिक पंचमहाभूतमय चिकित्सा का व्यवस्थित प्रबन्धन किया गया है। पहला सुख निरोगी काया

संदर्भ गंथ सूची

प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – श्री रोकश जिन्दल

वृहद् प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ.पी. सक्सेना

प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र – आचार्य स्वामीनाथन् शोसाद्रि

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग – डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज

पातज्जल योगदर्शन एवं सूर्यनमस्कार का स्वास्थ पर प्रभाव – डॉ. नित्यानन्द शर्मा

इकाई : 4 – स्वास्थ्य की परिभाषा लक्षण – रक्षण – उपाय, पथ्य, अपथ्य एवं विरूद्ध आहार

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 परिभाषा एवं अर्थ

4.4 लक्षण (स्वास्थ्य के)

4.5 स्वास्थ्य रक्षण उपाय

4.6 पथ्य एवं अपथ्य

4.7 विरूद्ध आहार

4.8 सारांश

4.10 संदर्भ ग्रंथ

4.1 प्रस्तावना

स्वस्थ शरीर की चाह किसे नहीं होती वे चाहे स्त्री हो या पुरूष की वह स्वस्थ, सुन्दर व आकर्षक दिखे। इसके लिए कुछ लोग तो अपना आहार–विहार एवं जीवन शैली को ठीक करके स्वस्थ व सुन्दर बनने में सफल हो जाते है परन्तु कुछ लोग ऐसा करने में विफल हाते है। प्राचीन काल में भारत के लोगों का सादा जीवन, उच्च विचार, मोटा खाओ, मोटा पहनो की बात सबके हृदय में बसी हुई जिसके कारण जीवन शैली एवं स्वास्थ्य दोनों स्वतः प्राप्त हो जाते है परन्तु आधुनिक जीवन शैली के कारण स्वाास्थ्य की कल्पा दुर्भर हो गई है। मोटर गाड़ी व फैक्टरी के धुएं व अशुद्ध जल तथा बिना धूप के रहने की मजबूरी आदि ने स्वास्थ्य को एक दुर्लभ स्थिति बना दिया है। आज के इस आपाधापि के युग में मनुष्य उसके भयंकर रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है। साथ ही साथ उन रोगों

का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में विभिन्न प्रकार की औषधियों का सहारा लेकर नियंत्रित करने का एक असफल प्रयास करने में जूटा हुआ है। इसी को देखकर आज मानव निसर्गोपचार की ओर अग्रसित हो रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार दुनिया में लगभग 55 प्रतिशत से ज्यादा लोग घरेलु अथवा पारम्परिक चिकित्सा पर निर्भर करते है। भारत जैसे देश के 70 प्रतिशत लोग प्राकृतिक चिकित्सा एवं वैकल्पिक चिकित्सा पर निर्भर हैं। इसलिए यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाती है कि मानव अपने स्वास्थ्य की रक्षा हेतु क्या खाए? कब खाए? कितना खाए? आदि की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर उसको दैनिक जीवन में जीवन शैली ने जोड ले इसके साथ ही विरूद्ध आरि और अपथ्य आरि के विषय में जानना आवश्यक हो जाता है। स्वास्थ्य को बनाए रखने हेतु खानपान, रहन – सहन इत्यादि के विषय में हम इस इकाई में अध्ययन करने जा रहे है।

4.2 उद्दे□य

इस इकाई में हम अध्ययन करेंग –

- स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा
- स्वास्थ्य के लक्षण
- स्वास्थ्य रक्षण के उपाय
- अपथ्य आहार
- विरूद्ध आहार

4.3 परिभाशा एवं अर्थ

उत्तम जीवन जीने के लिए सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करना अति आवश्यक है। जो कि मनुष्य के मूलभूत अधिकारों में से एक है। स्वास्थ्य के अभाव में शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास की कल्पना भी नही की जा सकती है अर्थात यह कह सकते है कि 'शारीरिक मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की पूर्व अवस्था ही

सम्पूर्ण स्वास्थ्य है'' इस सिद्धान्त का समर्थन संयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने भी किया है।

जब कोई व्यक्ति विभिन्न शारीरिक विकारों से ग्रस्त होता है तो वह शारीरिक रूप से अस्वस्थ होता है।

जब कोई व्यक्ति मानसिक रोगों से ग्रस्त होता है तो वह मानसिक रूप से अस्वस्थ होता है।

जब कोई व्यक्ति समाज में संतुलन सीापित नहीं कर पाता है तो वह सामाजिक रूप से अस्वस्थ होता है ठीक इसी प्रकार अपने भावों पर नियंत्रण न होने पर वह भावनात्मक रूप से अस्थ्वस्थ पाया जाता है।

वैसे तो स्वास्थ्य की अनेकानेक परिभाषाएं है। परन्तु विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस प्रकार परिभाषित किया है। स्वास्थ्य पूर्णरूपेण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की स्थिति है। वह मात्र रोगों अथवा अपंगता की स्थिति नहीं है।

'Health is a state of complete physical, mental social and spritral well being and not merly or abseace of deseease or informity''

सरल शब्दों में इसको इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है।

'स्व में स्थित होना भी स्वास्थ्य है।' जिसको कोई शारीरिक कष्ट हैं वो अपनी पीड़ाओं में उलझा रहता है। जिसे मानसिक कष्ट है। वह अपने अनेकों विचारों में ही खोया रहता है। जो दुराचारी या व्यभिचारी व कभी भी अपने में रह ही नहीं सकता है। जिसकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हुई है। उसका शान्त होना असम्भव है। इसीलिए ऐसे लोग स्वयं में कभी स्थित नहीं हो पाते वह बाह्म संवदेनाओं में ही लिप्त रहता है। जो स्व में स्थित होगा वही बिमारियों से मुक्त तथा प्रसन्न रह जाता है। पांतजलि योग सूत्र में भी तीसरे सूत्र में यह बताया गया है जिनकी यित वृतियों का निरोध हो जाएगा वह अपने आप में अपने स्वरूप में स्थित हो जाएगा अर्थात अपने स्व में स्थित होने के पश्चात किसी भी चीज अपने स्व में स्थित होने के पश्चात किसी भी चीज की प्राप्ति की महत्वांकक्षा नही रहती। वास्तव में ऐसे लोग ही पूर्ण स्वस्थ कहलाने के अधिकारी है परन्तु आदर्श स्वास्थ्य वाले व्यक्ति बहुत कम ही नहीं अपितु दुर्लभ जान पड़ते है। अन्य परिभाषाओं में स्वास्थ्य

प्राकृति के उन सारे तत्वों के साथ जिनका जीवन पर प्रभाव पड़ता है। उनकी सामंजस्य पूर्ण स्थिति है। सुश्रुत की परिभाषा के अनुसार स्वस्थ वहीं है जिसके दोष सम है, धातु सम है। अग्नि सम है। मल क्रिया सामान्य है और प्रसन्न चित है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि पूर्ण स्वस्थ वही मानव है तो परिष्कृत एवं पवित्र शरीर, मन और वाणी से जीवन के उच्चतम लक्षण की और विभिन्न रूकावटों का सामना करते हुए साहस पूर्वक आगे बढ़ने की क्षमता रखता है।

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वास्थ्य के साथ निम्न बिन्दुओं का होना आवश्यक है।

1 शरीर के सभी अंगों का स्वभाविक रूप से कार्य करना।

2 जीवन को प्रभावित करने वाले सभी घटकों का सामजस्य स्थापित होना।

3 पीडा रहित रहना।

4 शरीर में समाहित सभी धातुओं का सम अवस्था में होना

5 शरीर में सभी मलों का निष्कासन सही ढंग से होना।

6 प्रसन्न चित रहना।

7 पवित्रता बनाए रखना।

8 उत्साह बने रहना।

9 कर्नठता बने रहना।

आचार्य के अनुसार,

आयुः कामयमानेन धर्मार्थ सुरत साधनम्।

आयुर्वेदोपदेषविधेयः परमादरः।।

अर्थात् आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य को ही स्वस्थ शरीर अथवा जीवन के तीन उप स्तम्भ के रूप में लिया गया है। इन तीनों को ही मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए तथा पुर्णायु तक जीवन यापन के लिए आवश्यक माना गया है।

मनुष्य द्वारा स्वस्थवृत का पालन करने की स्थिति में अथवा आहार, निद्रा और बह्मचर्य का समुचित परिपालन में मेन केन्द्र प्रकारण व्यवधान उपस्थित होने पर रोग उत्पन्न होने लगते है। तथा बहुत सी आधि– व्याधियों एवं मनुष्य ग्रस्ति होने लगता है।

वर्तमान समय में प्रचलित चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों में निदान को परिवर्तन एवं स्वास्थ्य रक्षण को अल्प एवं आतुरस्य रोग प्रशमन को अधिक महत्व दिया जाता है। आयुर्वेद एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है जो हमें स्वस्थ जीवन जीना सीखाती है तथा मानव जीवन को अधिदैनिक अधिभौतिक और आध्यात्मिक रूप से आरोग्य प्रदान करता है। आयुर्वेद के अनुसार –

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् – आतुरस्य विकार प्रशमंन च।

अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का परिरक्षण करना तथा रोगी व्यक्ति के विकारों का प्रश्मन करना ही आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थवृत के नियमों का पालन करना जरूरी है। अस्वस्थ व्यक्ति इस लोक और परलोक में उपलब्ध पुरूषोचित भोगों को प्राप्त नहीं कर पाता इसलिए स्वास्थ्य को आयुर्वेद में महत्वपूर्ण माना गया है।

4.4 लक्षण (स्वास्थ्य के)

उपरोक्त परिभाषा के अध्ययन के पश्चात हमने विभिन्न स्वास्थ्य पहलुओं का अध्ययन किया इन्हीं को ध्यान में रखते हुए हम सरलता से समझ सकते है कि अच्छे स्वास्थ्य के लक्षण क्या हो सकते है आईए अच्छे स्वास्थ्य के लक्षणों का निम्न प्रकार से अध्ययन करें –

1. प्रातः उठने पर तन–मन में स्फूर्ति एवं उत्साह का अनुभव करना।
2. दैनिक कार्यों को पूरे उत्साह के साथ करना।
3. प्रतिदिन शौच समय पर तथा साफ और बन्धा हुआ होना।
4. गहरी नींद आना तथा नींद के बाद जागने पर स्फुर्ति को अनुभव करना।
5. शरीर के समस्त अंगों का आयु के अनुसार विकास होना

6. सदैव मन का प्रसन्न रहना।

7. तर्क पूर्ण चिन्तन करना।

8. स्वस्थ व्यक्ति में सकारात्मक विचार उत्पन्न होते है।

9. स्वस्थ व्यक्ति का चेहरा चमकदार व कान्तिमान होता है। उसके चहरे पर सफलता की चमक होती है। देखने वालों को उसका चेहरा देखकर अति प्रसन्नता होती है।

10 स्वस्थ व्यक्ति मधुर भाषी होता है। वह सामान्यता सभी से अच्छे ढंग से बात करता है सभी के मन को हरने वाला होता है। स्वभाव से मिजाज होता है। वाणी में बहुत ही मधुरता होती है।

11 स्वस्थ व्यक्ति को समय पर भूख और प्यास लगती है। इसकी भूख सन्तुलित होती है। प्राकृतिक भूख का अनुभव होता है।

12 रक्त का संचार समस्त शरीर में एक समान होता है। जिससे शरीर की समस्त नाडी तत्र सुचारू ढंग से काम करता है तथा सभी तंत्रों को ठीक ढंग से कार्य करने में मदद करता है।

13 स्वस्थ व्यक्ति को अपने शरीर में हल्केपन का अनुभव होता है। जिससे व अपने शरीर से पुरी क्षमता के साथ कार्य करना वाला होता है। हर प्रकार की गतिविधियों को सरलता से कर सकता है।

14 उसके शरीर समस्त क्रियाओं का संचालन पूर्णरूप से करने की क्षमता होती है। जिससे शरीर के भीतर पाचन क्रिया, रक्त संचार की क्रिया विजातीय पदार्थ को बाहर निकालने की क्रिया आदि सभी ठीक प्रकार से होती है।

15 स्वस्थ व्यक्ति सदैव स्वयं को भरपूर ऊर्जा से सरोबार महसूस करता है।

16 स्वस्थ व्यक्ति के सभी अंगों का आकार उचित होता है। उसकी लम्बाई, हाथ पैर, छाती का आकार पेट से बडा , कधों की चौड़ाई, रीढ़ की हड्डी का आकार इत्यादि सही अनुपात में होते है।

17 स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में मल का निष्कासन सही समय पर तथा सही मात्रा में होता रहता है। उसमें किसी प्रकार की रूकावट उत्पन्न नहीं होती।

18 उसकी त्वचा स्वच्छ होती है तथा त्वचा व मुख से दुर्गन्ध नहीं आती क्योकि उसके शरीर का पाचन तंत्र ठीक ढंग से कार्य करता है जिससे मुख और त्वचा दोनों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

19 स्वच्छ व्यक्ति को क्रोध नहीं आता। वह दूसरों की बात शान्त मन के साथ सुनता है तथा सहज ढंग से अपनी बात दूसरो के समक्ष रखता है वह अच्छा निर्णय क्षमता का अधिकारी होता है।

20 स्वस्थ व्यक्ति में आलस्य नहीं होता।

21 उसके सभी तंत्र सुचारू रूप से कार्य करते है इसीलिए वह सभी रोगों से मुक्त रहता है।

22 स्वस्थ व्यक्ति सदैव प्रसन्न चित्त व आनन्द से परिपूर्ण रहते है।

23 स्वस्थ व्यक्ति के बाल चमकदार व स्वस्थ होते है अनेक सिर की त्वचा में खुश्की नहीं होती है। उनमें गंजेपन नहीं होता।

24 वह किसी भी प्रकार कके विध्वंसात्मक कार्यों में प्रवृत नहीं होते।

25 उनके सभी दांत व मसूड़े स्वस्थ होते है उनमें किसी प्रकार का कोई रोग नहीं होता।

26 वात, पित और कम्प तीनों का उनके शरीर में संतुलन होता है।

उपरोक्त लक्षणों के आधार पर हम कह सकते है की यह स्वस्थ व्यक्ति है।

4.5 स्वास्थ्य रक्षण उपाय

स्वास्थ्य के उपर्युक्त अर्थ और लक्षणों को जानने के बाद यह ज्ञात होता है कि वर्तमान समय मे स्वास्थ्य शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होने लगा है। पहले केवल शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति को ही सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ्य मान लिया जाता था किन्तु वर्तमान समय में स्वास्थ्य शरीर तक सीमित न रहकर मन समाज एवं आत्मा तक पहुंच गया है।

स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए वर्तमान में कई तथ्यों पर विचार करना आवश्यक हो गया है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए तथा रोगों व रोगों के इलाज की आवश्यकता के लिए जीवन स्तर को ऊपर उठाना जरूरी है। क्योंकि जीवन की छोटी छोटी बातों की अवहेलना से अधिकांश लोग बड़ी स्वास्थ्य समस्याओं में उलझे रहते है। अस्थस्थ होने के कारण जिन्हें दूर करके पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। पोषण का समुचित अभाव, मानसिक व स्नायु विकार, रक्त की कमी व अशुद्धता, तनाव, अनियमित जीवन शैली, अनुचित विचार, ऋतु चर्या क उल्लघंन करना, असहिष्णु बनना, जीवनी शक्ति का हास, योग का अभाव आदि अनेकों ही कारण अस्वस्थ्य को जन्म देने वाले ह।

स्वास्थ्य रक्षा के नियम अत्यन्त सरल है। यदि थोडा ध्यान दिया जाए अर्थात् कुछ प्रयास के द्वारा ही आरोग्य को प्राप्त किया जा सकता है। अशुद्ध और अखाद्य भोजन, अनियमित रहन सहन, अनुचित विचार, छल कपट भरा व्यवहार विविध रोगों के स्रोत है। यदि हम सेवेरे से शाम तक अपनी दिनचर्या का गम्भीररता से निरीक्षण करे तो हमे यह ज्ञात हो जाएंगा कि हम कहां भूल करते है। इसके विपरीत एक व्यवस्थित और नियमित दिनचर्या प्रत्येक कार्य के लिए पर्याप्त सयम तथा उत्साह को बढ़ाती है साथ ही अन्दर एक नयी ऊर्जा प्रवाहित होने का अभास भी बढाती है। जीने के प्रति एक नयी ललक जगाती है। नियमित व व्यवस्थित दिनचर्या में कुछ उपाय है जिनको जीवन का अंग बना कर अपनी आयु की दीर्घ व सम्पूर्ण रूप से

स्वस्थ किया जा सकता है। स्वस्थ रहने के लिए निम्न लिखित बातों का जीवन में समावेश करना जरूरी है।

1 भोजन –

भोजन हमारे जीवन के लिए अति आवश्यक है। भोजन के अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार पोष्टिक व सन्तुलित भोजन के अभाव में पूर्ण स्वास्थ्य की कल्पना करना भी मिथ्य है। वर्तमान समय में यह आवश्यक है कि स्कूल, कॉलेज से प्राकृतिक चिकित्सा को अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित किया जाए। क्योंकि स्वस्थ स्वस्थ रहने के लिए यह जानना अति आवश्यक है कि क्या खाना है, कैसे खाना है, कैसे पकाना है, कितना खाना है, नाश्ता कैसा हो, दोपहर का भोजन कैसा हो

तथा भोजन मे ंकिन चीजों का समावेश हो, शाम को भोजन कितना कब और कैसा ले? यदि इन बातों की जानकारी बच्चों और युवाओं को ही जाए तो उनके जीवन की तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं सुलझ जाएगी। वर्तमान समय में चाय, पराठे, आचार, चाट, खटाई, डिब्बा बंद खाद्य सामग्री का बहुत अधिक मात्रा में उपयोग हो रहा है। जो कि एक बड़ा कारण है। अस्वस्थ होने का। व्यक्ति के बीमार होने का कारण गलत खान पान रहता है। निरोगी रहने के लिए आहार तथा विहार दोनों का ही ध्यान रखना आवश्यक है। आहार की इच्छा न होने पर अथवा सघात से कम से कम एक बार उपवास रखना, रसावर करना, पाचन तंत्र को सशक्त करने में लाभप्रद है।

इससे पाचन तंत्र को सशक्त करने मे ंलाभप्रद है। इससे पाचन तंत्र को विश्राम मिलता है। तथा जीवनी शक्ति दृढ़ होती है। संतुलित भोजन के अंतर्गत – प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, खनिज लवण, पानी आदि की आवश्यकता मात्रा निहित होनी चाहिए इसके साथ साथ ऋतु के अनुसार तथा भोजन जिसको दिया जा रहा है। उसकी स्थिति व आवश्यकता क्या है के अनुसार ही उसकी मात्रा होनी चाहिए। स्वस्थ रहने के लिए संतुलित आहार का स्वस्थ व्यक्ति विशेष के लिए कैसा हो इसका निर्धारण करना भी परम आवश्यक है। विशेष मौसम में जो फल व सब्जियां उत्पन्न होते है उनका सेवन अधिक करने से शरीर स्वस्थ तथा शक्तिवर्धक बनता है।

इसके विपरीत बिना मौसम के फल व सब्जियां शरीर के लिए उतने लाभप्रद व पौष्टिक नहीं होते। क्योंकि उनको सुरक्षित रखने व बेमौसम उन्हें उगाने में जिन साधनों का प्रयोग किया जाता है वे सभी उनकी पौष्टिकता तथा गुणवत्ता को कम करते है। इसीलिए जिस ऋतु में, जिस देश में जो फल – सब्जियां उत्पन्न होती है, उनका भरपूर सेवन करने से शरीर निरोगी बना रहता है। इन्हें प्रकृति ने ही उस मौसम व स्थान की आवश्यकतानुसार ही पैदा किया है। भोजन द्वारा पंच तत्वों की प्राप्ति होती है। जिससे हमारे शरीर का निर्माण होता है जैसे आकाश तत्व की प्राप्ति मिताद्वार द्वारा होती है, वायु तत्व की प्राप्ति शाक पत्तों द्वारा, अग्नि तत्व की प्राप्ति फलों द्वारा, जल तत्व की प्राप्ति सब्जियों द्वारा तथा पृथ्वी तत्व की प्राप्ति अन्न कण द्वारा की जाती है। इस तरह से शुद्ध और सात्विक आहार सन्तुलित मात्रा में ग्रहण करने पर आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख

और प्रीति में वृद्धि होकर मन में प्रसन्नता उत्पन्न होने लगती है। जो आहार कड़वे, खट्टे लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखें, दाहकारक, अधपका, रसरहित, दुर्गन्ध युक्त, वासी, उच्छिष्ट, अपवित्र, अत्यधिक, गरिष्ठ, तला भुना, असन्तुलित भोजन, रोगी को उत्पन्न करने वाला होता है। क्योंकि आहार ही हमारी औषधि है। जो स्वस्थ दीर्घ जीवन के लिए आवश्यक आहार ग्रहण करता है और हानिप्रद आहार त्यागता है। इसीलिए ये कहा भी गया है कि जेसा खाए अन्न वैसा ही होगा हमारा शरीर और मन। वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों में रोगों की शुरूआत शरीर में क्षार और अम्ल के असंतुलन से होती है और इसके संतुलन समाप्त हो जाती है प्राकृतिक आहार का सेवन करने वालों के लिए क्षार – अम्ल की समस्या ही नहीं है। यह समस्या तो सिर्फ पका हुआ आहार लेने वालों के लिए है। अर्थात् हम किस प्रकार का भोजन करते है। उसका पूरा पूरा प्रभाव हमारे सम्पूर्ण स्वास्थ्य पर पड़ता है। भोजन के द्वारा ही हमारा शारीरिक विकास मानसिक विकास, सामाजिक विकास, आध्यात्मिक विकास तथा आत्मिक विकास निर्भर करता है।

अतः अच्छे स्वास्थ्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति के लिए हमें सन्तुलित और प्राकृतिक भोजन को ग्रहण करना चाहिए जिसके द्वारा पोषक एवं ऊर्जा मात्रा में प्राप्त हो सके। स्वस्थ रहने के लिए आहार संबंधित निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखना अति महत्वपूर्ण है।

1. सन्तुलित भोजन ग्रहण करना।
2. प्राकृतिक रूप से भोजन ग्रहण करना तथा रेशेदार भोजन करना।
3 क्षारीय और अम्लीय भोजन का संतुलन बनाए रखना।
4 बेमेल और विपरीत भोजन से बचना।
5 ऋतुनुसार भोजन ग्रहण करना।
6 कार्य व आयु के अनुसार ही भोजन की मात्रा का निर्धारण करना।
7 भूख से कम भोजन लेना तथा अति आहार से बचना
8 रात्रि में देर से भोजन न करना
9 शान्त मन से भोजन ग्रहण करना।

10 भोजन के तुरन्त बाद ही लैटना नहीं चाहिए।

11 भोजन के आधा घण्टा पहले तथा बाद में ही जल का सेवन करना चाहिए।

12 भोजन चबा चबा कर करना चाहिए।

13 गरिष्ठ तथा मांसाहारी भोजन का सेवन त्यागना इत्यादि।

2 जल –

जल हमारे जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। इसके अभाव में जीवन की कल्पना करना अनुचित होगा। हमारे शरीर का 70प्रतिशत बड़ा भाग जल से बना है। अर्थात शरीर के अवयव तथा उन अवयवों द्वारा होने वाले कार्यों में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। जल के द्वारा ही शरीर के महत्वपूर्ण कार्य सम्भव हो पाते है। रक्त में भी बड़ा भाग जल ही है। जल संतुलित मात्रा में ग्रहण करने से शरीर स्वस्थ बनाए रखने में सहायता मिलती है। जल संतुलित मात्रा में ही नहीं वरन् स्वच्छ भी होना अति आवश्यक है क्योंकि दुषित जल का सेवन करने से अनेक रोग उत्पन्न होने लगते है तथा जीवनी शक्ति का हास भी होने लगता है। जल के द्वारा ही शरीर के बाहर और भीतर की सफाई होनी सम्भव हो पाती है। शरीर के भीतर जमा हुए विजातीय पदार्थ को पसीने, मूत्र, मल आदि के रूप मे शरीर से बाहर करने में जल ही सहायक है। शरीर में जल तत्व की पूर्ति जल तथा फल व सब्जियों के द्वारा होती है। यदि आप किसी कारण वश जल तत्व की मात्रा में कमी होती है तो शरीर से दूषित पदार्थ पसीने एवं मूत्र द्वारा बाहर नहीं निकलता जिससे शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। क्योंकि जमा हुए दूषित विकार रक्त द्वारा पूरे शरीर में फेलकर शरीर को अस्वस्थ बना देते है। इन दूषित विकारों और उनमें होने वाले रोगों से बचने के लिए तथा सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ रहने के लिए जल फलों व सब्जियों के रस का पर्याप्त मात्रा में सेवन करना चाहिए तथा रोग उत्पन्न होने पर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इन्हीं विजातीय पदार्थों का हटाकर शरीर को स्वस्थ किया जाता है।

3. उपवास

उपवास भारतीय परम्परा का एक महत्वपूण अंग है। इसे सभी धर्मों हिन्दू, मुस्लिम, सिख, जैन आदि में मान्यता दी गई है। स्वस्थ जीवन के लिए उपवास एक उतम साधन है। अर्थात् उपवास के द्वारा अच्छा स्वास्थ्य बनाया जा सकता है। तथा खोए हुए स्वास्थ्य को

पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए यह रोगी और निरोगी दोनों के लिए ही आवश्यक है। उपवास का धार्मिक लाभ होने के साथ साथ इसका शरीर पर भी लाभ होता है। उपवास के काल में शरीर की ऊर्जा का हास कम होता है तथा पाचन तंत्र पर कम दवाब होने से उसे आराम भी मिलता है जो ऊर्जा भोजन के पाचन में लगती है वही उर्जा उपवास काल में रोग के कारणों को दूर करने लग जाती है। उपवास के द्वारा शरीर में संचित दूषित जल पदार्थों का बाहर किया जा सकता है क्योंकि जब हम भोजन करते है तो दूषित पदार्थ को बाहर निकालने का कार्य दब जाता है। उपवास से शरीर में नई उर्जा बनती है। शरीर के क्षतिग्रस्त भाग को पुनः ठीक किया जाने लगता है। शरीर में जो विजातीय जीवाणु उत्पन्न हो जाते है, वे जीवाणु रोगाणु हमारे भोजन मे ंसे भोजन ग्रहण करते है तथा उपवास काल मे ंव भी नष्ट हो जाते है इस प्रकार पेट के समस्त विकारों से मुक्ति मिल जाती है। उपवास के द्वारा बड़ी हुई चर्बी व वजन भी कम होने लगता है। उपवास के दिनों में आहार नियमित रूप में ही लेना चाहिए शरीर की आवश्यकता के अनुसार ही उपवास करना उचित होता है। उपवास कई प्रकार के होते है उपवास के दिनों में जल, फल, सब्जियां आदि का सेवन भी चिकित्सक की देखरेख में करना चाहिए ऐसा करने पर उपवास का अच्छा परिणाम मिलता है।

4. स्वच्छता

स्वच्छता प्रकृति का सहज गुण है स्वास्थ्य की दृष्टि से शरीर की सफाई का विशेष महत्व है। शरीर की सम्पूर्ण सफाई चार मार्गों से गन्दगी का बाहर कर कि जाती है। फेफड़ों द्वारा अशुद्ध वायु को बाहर कर शुद्ध वायु को शरीर के भीतर पहुंचा कर त्वचा द्वारा पसीने के रूप में गुर्दो द्वारा मूत्र के रूप में बाहर निकालना तथा मल को आंतों द्वारा बाहर निकालकर शरीर को शुद्ध और स्वच्छ किया जाता है।

वास्तव में स्वस्थ रहने के लिए शरीर की सफाई आन्तरिक व बाह्य दोनों प्रकार की होनी चाहिए। शरीर की आन्तरिक सफाई के लि आहार, श्रम, विश्राम के साम्य के साथ मानसिक संतुलन का बना रहना आवश्यक है। आन्तरिक सफाई के साथ साथ बाह्य सफाई भी महत्वपूर्ण स्वास्थ्य की दृष्टि में महत्वपूर्ण है।

5. गहरी नींद

स्वास्थ्य के लिए निद्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। नींद के द्वारा हमें ऊर्जा प्राप्त होती है तथा निद्रा के उपरान्त शरीर से दूषित पदार्थ बाहर निकल जाते हैं तथा क्षतिग्रस्त कोशिकाओं की मरम्मत भी निद्रावस्था मे ंही होती है। जिससे शरीर में नवीन शक्ति का संचार होने लगता है। स्वस्थ रहने के लिए 7–8 घंटे की नींद आवश्यक है। आवश्यकतानुसार नींद न लेने या चाय, काफी, आदि द्वारा जाग रहने से कई प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न होने लगते है। जैसे तनाव अनिद्रा, सिरदर्द, कब्ज, चिडचिडापन, आलस्य, याददाशत कम होना इत्यादि। इसी प्रकार अधिक सोना भी शरीर को रोगी बनाता है। बालक रोगी एवं गर्भवती स्त्रियों को छोड़कर अन्य सभी को दिन में सोना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। दिन में खाना खा कर सोने से यकृत तथा पाचन संबंधित विकार उत्पन्न होने लगते है। अच्छी नींद के लिए जरूरी है कि रात्रि में भोजन सोने से 3–4 घंटे पूर्व कर जल्दी सोना चाहिए तथा सोने से पूर्व मुंह दांत, जीभ, तालू, साफ कर मल मूत्र त्याग कर ढीले वस्त्र धारण कर ही बिस्तर पर जाना चाहिए। सोने से पहले टी.वी. देखने से गहरी नींद नहीं आती इसीलिए नींद न आने पर अच्छे साहित्य या धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया जा सकता है। सोने का कमरा हवादार तथा स्वच्छ होना जरूरी है।

6. शारीरिक श्रम व विश्राम

जीवन की गतिशील और स्वस्थ बनाए रखने के लिए शारीरिक श्रम और विश्राम अति महत्वपूर्ण होने के साथ एक दूसरे के सहयोग से चलते है। कार्य करने से शरीर की ताकत खर्च होती है और आराम करने से उर्जा प्राप्त होती है तथा थकी हुई मांसपेशियों को पुनः शिथिलता द्वारा कार्य करने योग्य बनाया जा सकता है। शरीर को यदि उचित आराम न मिले तो वह कमजोर और रोगी हो जाता है। हमारा जीवन काम के बाद आराम ओर आराम के बाद काम इसी पद्धति पर निर्भर करता है। हमारे शरीर का प्रत्येक अंग अवयव, तंत्र व कोशिका अपना कार्य करने के बाद आराम कर पुनः उर्जायावन हो जाती है। हृदय जो लगातार काम करता रहता है वह भी प्रत्येक धड़कन मे ंएक बार आराम करता है तथा अगली धड़कन के लिए शक्ति प्राप्त करता है। श्रम करते करते एक सीमा पर पहुंच कर शरीर भी टूटने लगते है। आंखे मुन्दने लगती है। तथा स्वं प्रकृति द्वारा ही शरीर की गति धीमी होने लगती है। तथा विश्राम के बाद पुनः शरीर कार्य करने योग्य हो जाता है। जिस प्रकार लगातार श्रम के बाद विश्राम जरूरी है। ठीक

उसी प्रकार लगातार कुछ दिनों काम के बाद भी एक दिन आराम करना चाहिए। श्रम के द्वारा शरीर के समस्त अंग कार्य करने योग्य बने रहते है तथा विश्राम के द्वारा उन अंगों को कार्य करने की उर्जा प्राप्त होती रहती है। इस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने के लिए श्रम और विश्राम दोनों ही जरूरी है।

7. पंच महाभूत का संतुलन –

पूर्ण स्वास्थ्य के लिए पंच तत्वों का शरीर में संतुलित रहना अतिआवश्यक है। तथा इन तत्वों के संतुलन के लिए प्राकृतिक सम्पर्क बनाये रखना जरूरी है। पंचमहाभूत के सम्पर्क में रहने के लिए प्रकृति की शरण में जीवन यापन करना चाहिए अपनी जीवन शैली को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि प्राकृतिक तत्वों को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकें नंगै पैर घास पर टहलना, प्राकृतिक आहार विहार, जल सेवन, जल में तैरना, मिट्टी से स्नान, स्वच्छ वायु का सेवन करना, प्राणायाम का दैनिक अभ्यास करना, धूप का सेवन करना, उपवास, आसनों का अभ्यास आदि पंच तत्वों से सम्पर्क साधने के साधन है।

8 विचार –

हमारे विचारों का हमारे स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है मनुष्य के जैसे विचार होते है वैसा ही वह बनता है। जो हमारे विचार और भाव होते है। वही हमारी वाणी बनती है तथा वाणी ही हमारे कर्मों का आधार बनती है। सकारात्मक सोच रखने अवगुण में भी गुण देख शान्त व प्रसन्न रहते है तथा नकारात्मक विचारों वाले व्यक्ति सदा अपने इस दृष्टिकोण के कारण दुखी और अशान्त रहते है जिसको स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ने लगता है। बुरी भावना और नकारात्मक मनोवृति के कारण विभिन्न प्रकार के रोग जैसे चिन्ता से उच्च रक्त चाप, हृदय रोग, मधुमेह रोग, अनिद्रा आंतों में छाले, अपच, दस्त, सधिवात, तनाव, दुख, अविकसित व्यक्तित्व, भाई चारे की भावना का अभाव, कार्य क्षमता का हास, निर्णय क्षमता का हास आदि।

जिस व्यक्ति के विचार और धारणा ही नकारात्मक हो उस व्यक्ति के शरीर के रोगों की चिकित्सा कितनी भी क्यों न कि जाए वह कम ही रहती है। वह तब तक स्वस्थ नहीं हो सकता जब तक उसके विचार शुद्ध न हो जाए नकारात्मक विचारो ंसे हमारी 95 प्रतिशत क्षमता व्यर्थ चली जाती है। इसलिए शुद्ध और सकारात्मक विचारों को ही धारण करना चाहिए। किसी भी चिकित्सा प्रणाली से जो रोग अच्छा अवश्य ठीक हो सकता है। अतः

रोगी चाहे किसी भी रोग से ग्रसित क्यों ने हो, स्वास्थ्य की भावना का अभ्यास उसे अवश्य करना चाहिए।

9 हँसना

हँसना मनुष्य के लिए ऐसा वरदान है जो हर प्रकार के कष्ट से बहार निकलने में विजय दिलाता है। हंसना एक ऐसा दिव्य गुण है जो जीवित प्राणियों ने केवल मनुष्य के पास है।

स्वस्थ रहने के लिए खुलकर हंसना चाहिए। प्रतिदिन दर्पण के सामने कुछ देर विभिन्न मुद्राओं में हंसने का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार करने से तनाव दूर होकर मन को शान्ति मिलती है। चेहरे पर चमक आती शरीर में रासायनिक संरचना में इस प्रकार का परिवर्तन हो जाता है कि किसी भी प्रकार का भोजन शरीर को लगने लगता है तथा तनाव तो रहता ही नहीं है।चेहरा सुन्दर व कार्तिमान बनता है। पेट के विकार दूर हो जाते है।

10 मौन व्रत –

स्वास्थ्य का सबसे बड़ा शत्रु क्रोध है क्रोध करने से अनेक रोग उत्पन्न होने लगते है। जैसे तनाव, उपच, मांसपेशियों में तनाव, हृदय रोग, ऊर्जा हास आदि। मौन रहने से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है। जबकि अधिक बोलने व क्रोध करने से शारीरिक ऊर्जा तथा शक्ति का नाश होता है। मौन रहने से व्यक्ति व्यर्थ की बातों से बचता है। तथा काम, क्रोध, मद एवं लोभ आदि से बचा रहता है। मानसिक रोग दूर होने लगते है। इसलिए हमें अपने दैनिक जीवन में मौन को स्थान देना आवश्यक है। दिन में कुछ समय मौन धारण करे या सप्ताह में एक बार कुछ घंटों का मौन रखने से आपार शक्ति संचय हो सकती है तथा यह स्वास्थ्य संवर्धन में वृद्धि को एक सरल उपाय है।

11 मानसिक तनाव –

वर्तमान जीवन की ज्वलंत समस्या है मानसिक तनाव। इसके द्वारा अनेको रोगों की उत्पत्ति होने लगती है। यह समस्या आज सामान्य सी होती जा रही है। छोटे बच्चे से लेकर अपनी पढ़ाई के कारण, प्रतियोगिता तथा प्रथम स्थान पर आने आदि के कारण यह

समस्या उत्पन्न होने लगती है। आज अधिकतर लोगों में किसी न किसी अंशों में इस समस्या का होना पाया जाता है।

मनुष्य की भावनाओं और विचारों का उसके शरीर पर दूर समय प्रभाव पड़ता है तनाव से स्नायु तंत्र, पाचन क्रिया, रक्त प्रवाह, ह्रदय धड़कन बढ़ जाती है, अन्त स्रावी ग्रंथियों संबंधी रोग जन्नेद्रिय संबंधी रोग, महिलरअरें के मासिक धर्म संबंधी विकार, डिप्रेशन, लकवा, कैसर, भूख की कमी आदि आदि अनेक रोग मानसिक तनाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते है। तनाव का मुख्य कारण आधुनिक युग की भाग दौड़ की जिन्दगी, देर से सोना, देर से उठना, देर से खाना, शारीरिक श्रम व व्यायाम की कमी, खान पान संबंधित विकृत आदतें और आराम की कमी है। इससे बचने के लिए प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाना अति आवश्यक है। मिट्टी पानी, वायु आकाश, अग्नि एवं राम नाम की साधना उपयुक्त है। तनाव मुक्त होने के लिए सकारात्मक सोच, योग, प्राणायाम, ध्यान, व्यायाम, अपने को उचित कार्यों में लगाना, समस्याओं की जड़ तक पहुंचकर समाधान खोजना, इच्छाओं को कम करना, मनोरंजन की क्रियाओं में भाग लेना आदि अनेकों साधन इस प्रकार के हैं जिन्हें जीवन का अंग बनाकर इस गंभीर समस्या से बचा जा सकता है। अतः मनुष्य को निश्चित व शान्तिपूर्ण जिन्दगी व्यतीत करने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा को जीवन में उतारना चाहिए।

12 योग –

योग के द्वारा समग्र स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है। यौबि अभ्यास जैसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार धारणा, ध्यान आदि का नियमित पालन करने से मनुष्य पर्यावरण के साथ संतुलन बनाने में समक्ष हो पाता है तथा आधुनिक जीवन शैली के कुप्रभावों से उत्पन्न होने वाले विकारों से भी बचता है क्योंकि आधुनिक समय में अधिकांश रोग ऐसे होते है जो मनुष्य तथा उसके पर्यावरण के बीच सामंजस्य ठीक प्रकार न बन पाने के कारण उत्पन्न होते है। यौगिक अभ्यास के द्वारा रोगों का शमन एवं स्वास्थ्य संवर्द्धन दोनों संभव है। आज समाज में योग के कुछ अंग काफी प्रचलित है जैसे आसन, प्राणायाम और ध्यान।

योगासन के द्वारा शरीर क्रिया पर भी प्रभाव पड़ता है। योगासनों का प्रभाव शरीर के लगभग सभी तंत्रों जैसे कंकाल तंत्र, पेशी तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, स्नायु

तंत्र, अंत स्रावी तंत्र पर भी प्रभावी ढंग से पड़ता है। मानसिक स्वास्थ्य के संवर्धन में यौगिक उपचार की उपयोगिता विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है। इसका दूसरा अंग प्राणायाम भी महत्वपूर्ण है जिसके अभ्यास से उर्जा मिलती है, शरीर में रक्त संचार बढता है, शरीर का पोषण होता है तथा पंच तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। इससे प्राणिक प्रवाह अच्छा हो जाता है। विभिन्न प्रकार के प्राणायाम भी प्रवाह अच्छा हो जाता है। विभिन्न प्रकार के प्राणायाम भी मानसिक तनाव व रोगों का नाश करने की क्षमता रखते है। ध्यान भी आज के युग में बहुत अधिक प्रचलित है। इसका अभ्यास करने से शारीरिक, मानसिक, व भावनात्मक रोगों से मुक्ति मिलती है। इस प्रकार रोग के द्वारा केवल रोगों का ही नहीं अपितु हर समस्या विकास में योग के प्रत्येक अंग विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है।

अपथ्य आहार एवं विरूद्ध आहार –

आहार के विभिन्न तत्वों को शरीर के प्राण के रूप में माना जाता है वही पर दूसरी और आहार अथवा अन्न के कारण रोगों को पैदा करने वाला जहर भी कहा गय है। चरक सहिता में कहा गया है –

''आहारसम्भववस्तुरोगोश्राहार सम्भवाः।।''

''प्राणाः प्राणभृतामत्रं तदयुक्ता हिनसत्यसून'' (च.स. 12)

अर्थात् जब हम आहार को उनके उचित घटकों के साथ समय, काल, ऋतु, मात्रा एवं सयोगानुसार ग्रहण करते है तो वह प्राण के पोषण का कारक बनता है। परन्तु जब हम आहार को विरूद्ध संयोग के साथ अनुचित मात्रा में गलत ऋतु अथवा कारक बन जाता है जिसे विरोद्वी आहार मिथ्याहार तथा बेमेल आहार के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार विरोधी आहार को समझने के लिए हमे पाचक रस के बारे में जानना आवश्यक है उदाहरण के लिए प्रोटीन की पाचन क्रिया अम्ल रस से होती है और श्वेतसार की क्रिया क्षर रस से होती है। यदि दोनों को एक साथ लिया जाए तो प्रोटीन का पोषण भी नहीं मिलेगा और श्वेतसार का उफान भी बढ़ जाएगा जिससे पाचन क्रिया बिगड जाऐगी इसीलिए रोगी को एक ही समय पर सब्जी फल, आचार, दही, खीर इत्यादि नहीं खाने चाहिए। एक समय में एक ही खाद्य लेना सबसे उत्तम आहार है। जिसको एकाहार के नाम से भी जाना जाता है। मुख्यताः अपथ्य आहार को समझने के लिए हम कुछ

निम्नबिन्दुओं को सामने रखकर यह तय कर पाएंगे कि कौन सा आहार निम्न बिन्दुओं को जानने के बाद लेना उचित है।

4.8 सारां

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए आहार पर कितना ध्यान देना आवश्यक है, यह परमपरागत चिकित्सा पद्धतियां स्वीकार कर चुकी है। बहुत ही चर्चित चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स ने कहा कि ''आहार एक दवा है और दवा एक आहार है।'' इसको हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि आहार दवा से ज्यादा महत्वपूर्ण है। पिछले कुछ दशकों से जो आधुनिक आहार उपयोग में लाया जा रहा है। उसमें दिन प्रतिदिन अधिक प्रदूषित व कृत्रिम खाद्य पदार्थ शामिल होते जा रहे हैं। कई वर्षों के शोध के बाद चिकित्सा विज्ञान ने पाया हैं कि अत्याधिक वसा, आटा, परिष्कृत स्टार्च, लाल मांस, की कीटनाशक जैसे सभी तत्व खराब स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी है।

''आहार संभव वस्तु–– आहार ही हमारे जीवन का आधार है। आहार का प्रथम भाग हमारे सूक्ष्म शरीर अर्थात मन बुद्धि एवं अंहकार आदि का पोषण करता है तथा दूसरा भाग शरीर गत सप्रधातुमय शरीर का पोषण करता है। तथा तीसरा भाग कार्बन डाई ऑक्साइड, पसीना, मल व मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है।

हमने उपरोक्त इकाई में अध्ययन किया है कि स्वास्थ्य का अर्थ व परिभाषा क्या है, आहार का उसमें क्या योगदान है? स्वास्थ्य के लक्षण क्या है? स्वास्थ्य रक्षा कैसे की जा सकती है। पथ्य व अपथ्य स्वास्थ्य के लिए क्या हो सकते हैं? अंत में कुछ बेमेल भोजन अर्थात् किस भोजन के साथ क्या नहीं खाना चाहिए? इन सभी जानकारियों के अध्ययन से हम अपने दैनिक जीवन में अपने स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान हो जाने से अपने आहार द्वारा स्वास्थ्य को बनाये रख सकते हैं। गलत मेल वाले खाद्य पदार्थों के सेवन से सावधान रहते हुए रोगों को आने से रोक सकते हैं जिससे हमारा स्वास्थ्य सुदृढ़ बनाया जा सकता है। ध्यान रखें ''एकाहारं निराहारं यामान्ते चं न कारयेत्'' अर्थाज् एक भोजन के बाद तीन घंटे तक दूसरा भोजन नहीं करें, यदि बहुत श्रम अथवा आवश्यक नहीं है तो इसका पालन स्वास्थ्य रक्षक होता है।

शकरकन्दी, आलू, कचालू खाना, शहद के साथ गरम जल या अन्य गर्म पदार्थों का सेवन करना, उडद और मूली का एक साथ सेवना करना, दही और जामुन सेवन करना, तरबूज या खरबूजा के साथ के साथ अन्य कोई खाद्य पदार्थ लेना, फल, दूध व रसाहार को एक साथ सेवन करना, दाल और चावल का मिलाकर सेवन इत्यादि। एक समय में दो भिन्न भिन्न रासायनिक प्रक्रिया वाले भोजन को ग्रहण करना स्वास्थ्य के विरूद्ध होता है। अतः इन्हें विरूद्ध आहार कहते है। एक समय मे एक ही खाद्य लेना आदर्श आहार है। वास्तव में मिश्रित भोजन लेना ही गलत होता है। एक समय में एक ही भोजन लेना चाहिए तथा मिश्रित भोजन से बचना चाहिए। इससे भोजन का पाचन सरलता से होकर शरीर को पोषक तत्व अधिक मात्रा में प्राप्त होते है तथा इस प्रकार भोजन करने पर मन भी शान्त रहता है। इस भोजन से शरीर की वृद्धि होती है। तथा सम्पूर्ण मात्रा में उर्जा उत्पन्न होती है। यह शरीर को लगने वाला भोजन होता है। कुछ खाद्य पदार्थ ऐसे होते हैं जो विशेष ऋतु में शरीर के लिए अहितकर हो जाते है। जिनका सेवन विशेष ऋतु में करने पर शरीर अस्वस्थ हो जाता है। हमारे यहां भारतीय संस्कृति के अन्दसार छः ऋतुएं होती है। ऋतु प्रभाव के कारण मानव शरीर में स्वतः ही दोषों का संचय प्रकोप व शमन होता है। अतः निम्नलिखित पदार्थों का सेवन ऋतु विशेष में करना अहितकर है।

1 हेमन्त ऋतु – इसमें वात बढ़ाने वाले भोजन का त्याग करना तथा भोजन कम मात्रा में करना चाहिए। इस ऋतु जल में धुले हुए सतु का सेवन करना चाहिए।

2 शिशिर ऋतु – इस ऋतु में कटुवे, तीखे, कषाय रस तथा वातवर्द्धक, हल्के और शीतल अन्न पान का त्याग करना चाहिए।

3 बसन्त ऋतु – बसन्त ऋतु में गरम, अम्लिय, स्निग्ध और मधुर आहार तथा नि में आहार के बाद शयन करने पर विष की उत्पत्ति होने लगती है।

4 ग्रीष्म ऋतु – ग्रीष्म ऋतु में लवण, अम्ल, कटु रस वाले और उष्ण वीर्य द्रव्यों का सेवनआदि हानिकारक है।

5 वर्षाऋतु – इस ऋतु में जल में घुला सतु, तरबूज खुल हुए पदार्थ, नदी का जल, मलाई, रबडी, मृदु आदि का सेवन हानिकारक है।

6 शरद ऋतु – इस ऋतु में वसा, तेल, चर्बी मास आदि क्षार, दही का सेवन और वायु वर्दक पदार्थों का सेवन हानिकारक है। इसमें ओस, आनूप, क्षार, दूधि आदि भी वर्जित है।

इस प्रकार ऋतु के अनुसार ही भोजन करना स्वास्थ्य वर्धक होता है। विरूद्ध अन्न विष तुल्य होता है। इसका सेवन करने से नानाविध रोग उत्पन्न होने लगते है जैसे नपुंसकता, अन्धापन, विसर्प, जलोदर, विस्फोट, पागलपन, भगन्दर, मूर्च्छा, मद आध्मान, गलग्रह, पाण्डु आमविष, श्वेतकुष्ठ, ग्रहणी, शोध, ज्वर, पीनस, विकृत सन्तान और मृत्यु भी हो सकती है।

यदि पूर्व से ही हितकर आहार का सेवन किया जाता है तो विरूद्ध आहार सेवन से रोग उत्पन्न ही नहीं होता है।

विरूद्ध आहार तालिका

आहार	विरूद्ध आहार
1 मांस	शहद, तिल, गुड, दूध, उड़द, मूली, कमलककडी, अंकुरित आहार, आदि का सेवन वर्जित है।
2. शहद	दूध, जातुशाक, पका बडहल
3. दूध	मूली, नमक, प्याज, अचार, सलाद, दही, लहसून, सहजन, अर्जक, सुमुख, सुरंसा इत्यादि का सेवना करना हानिकारक है।
4. शहद और दूध के साथ	स्रसो के तेल में भुना पौष्कर, रोहिणी एवं मांस
5. बर्रे की शाक	चीनी से बनी मदिरा, मैरंम मधु।
6. दही	नमक, आंवला, चीनी इत्यादि।

4.9 बोधात्मक प्र□न

1. स्वास्थ्य के लक्षणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

2. स्वास्थ्य की रक्षा हेतु क्या क्या करना चाहिए।

3. स्वास्थ्य में आहार के पथ्य–अपथ्य एवं बैमेल खाद्य पदार्थों से आप क्या समझते है?

4 स्वास्थ्य का अर्थ व परिभाषा समझाइए।

5 स्वास्थ्य में आहार की भूमिका पर संक्षेप समझाइए।

4.10 संदर्भ ग्रंथ

1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – राकेश जिन्दल

2 वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ.पी. सक्सेना

3 स्वस्थवृत विज्ञान – प्रो. रामहर्ष सिंह

इकाई : 5 – मिट्टी (पृथ्वी तत्व) का अर्थ, गुण एवं विभिन्न रोगों के महत्व

5.1 – पृथ्वी तत्व ;मिट्टीद्ध का महत्व
5.1.1 – मिट्टी की महिमा
5.1.2 – मिट्टी तत्व ;पृथ्वी तत्वद्ध का अर्थ
5.1.3 – गांधी जी का मिट्टी से लगाव
5.1.4 – मिट्टी की शक्ति एवं गुण
5.2 – प्रकृति में मिट्टी का निर्माण
5.3 – मिट्टी के प्रकार
5.4 – मिट्टी की संरचना
5.6 – मिट्टी का शरीर पर प्रभाव
5.7 – मिट्टी का उपचार में प्रयोग
5.8 – बोध प्रश्न
5.9 – संदर्भ सूची –

प्रस्तावना –:

मिट्टी का प्रयोग प्रायोगिक चिकित्सा में रोगी के लिए संजीवनी सादृश्य है। पंच महाभूतों में मिट्टी सबसे स्थूल तत्व है। इस स्थूल तत्व से मात्र स्थूल शरीर का ही उपचार नहीं होता अपितु मिट्टी का प्रयोग अपना सूक्ष्म प्रभाव भी दिखाता है। मिट्टी चुम्बकीय गुरूत्वाकर्षण शक्ति विजातीय तत्वों को बाहर निकालने में सहयोगी है। इस ईकाई संख्या 5 में आप मिट्टी तत्व के अर्थ एवं महत्व तथा विभिन्न उपचार विधियों के विषय में जानकारियां प्राप्त कर सकेंगे।

उद्देश्य –

प्रायोगिक अनुभव से पूर्व सद्ध(ान्तिक रूप से मिट्टी का प्रयोग समझना आवश्यक है। उस ईकाई का उद्देश्य मिट्टी के सम्बन्ध में वैदिक ग्रन्थों, उपनिषदों, गीता एंव आधुनिक युग में प्राकृतिक चिकित्सा के विचार से पाठ्यक्रमों को अवगत करता है। वैज्ञानिक दृष्टी से मिट्टी का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसकी झलक भी आपको इस इकाई में प्राप्त होगी। पंच महाभूतों में मिट्टी तत्व सबसे स्थूल रूप में हमें प्राप्त है। यह स्थूल तत्व 'मिट्टी' मात्र स्थूल शरीर को ही मात्र स्वास्थ्य एवं सुखी नहीं बनाता है अपितु सूक्ष्म मन को शांत एवं जीवनी शक्ति का उचित वर्धन एवं आत्मिक एवं आनन्द प्रदान करने में परोक्ष रूप से सहयोगी है। इकाई संख्या 5 में आप मिट्टी ;पृथ्वी तत्वद्ध का अर्थ एवं महत्व तथा उपचार विधियों के विषय में उपर्युक्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.1 – पृथ्वी तत्व (मिट्टी) का महत्व –:

ब्रह्माण्ड के विकास में सबसे पहले आकाश तत्व का अस्तित्व था। तत्पश्चात वायु तत्व का प्रादुर्भाव हुआ। वायु से अग्नि तत्व का, फिर जल तत्व का निर्माण हुआ पृथ्वी तत्व सबसे बाद में निर्मित हुआ। यही मिट्टी तत्व सबसे स्थूल तत्व है जिसे हम परोक्ष रूप से उपचार में सबसे अधिक व्यवहार में ला सकते है। मिट्टी को स्पर्श भी कर सकते है, मिट्टी का रूप भी है मिट्टी में एक प्रकार की विशेष प्रकार की गंध भी है। यह गंध उपचार का भी काम करती है। आजकल गंध चिकित्सा (Aroma therapy) का प्रयोग रोगों को ठीक करने में किया जाता है। समस्त गंध का मूल मिट्टी से ही निर्मित हुआ है।

जिस देश की जमीन पर हम रहते है यहां की मिट्टी महिमा को पहचान कर भारतीय संस्कृति में इसे भारत मां का स्थान प्राप्त है। और इस समस्त धरा को धरती मां का दर्जा प्राप्त हैं। यही मिट्टी है जो किसी भी रोग में त्वचा पर लगाए तो केवल शरीर के बाह्य भाग पर ही नहीं भीतरी अंगों को भी लाभ मिलता है। रूग्णावस्था में विकृत अंगो को पहचानकर विभिन्न प्रकार से मिट्टी का प्रयोग किया जाता है और शीघ्र ही अंगो के ठीक होने पर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है।

इसी विश्वास के साथ कि "यह मिट्टी (पृथ्वी तत्व) अंगो को स्वस्थ कर निरोगी बनाने में सहयोगी होगी" मिट्टी का प्रयोग करेंगे तो शीघ्रताशीघ्र लाभ प्राप्त होता है। पृथ्वी के इसी गुण के कारण भारतीय संस्कृति में प्रातःकाल उठते ही पृथ्वी पैर रखने से पूर्व क्षमा याचना का प्रावधान है।

5.1.1 मिट्टी की महिमा –

हे पृथ्वी ! तुम कितनी गुणवती धैर्य धारण करने वाली हो। हे पालनहार मां ! तुम पर्वतों के बल से समस्त प्राणियों का पालन करती हों। अपनी उर्वरा शक्ति से प्राणियों की दीनता को नष्ट करती हो, इसलिए हे मां! तुम वन्दनीय हो। सत्कार करने योग्य हो।। – ऋग्वेद मं. 5 सूक्त 84

सा नो भूमिः प्राणमाभुर्दधातु जरादिष्टं मा पृथिवी कृणोतु।।22।।

अर्थात हे दयामयी मां। विश्वम्भरे! अपनी दिव्यप्रेम व अथर्ववेद धारणाशक्ति से हमको प्राण, भावात्मक और आयु प्रदान कर वृद्धावस्था तक पूर्णतः निरोग रहने का सामर्थ्य प्रदान करो।

स्योनास्ता मह्यम चरते भवन्तु अर्थवेद

जो तुम्हारी गोद में सदैव विहार करते हैं उसके लिए तुम सदा सुख और स्वास्थ्य दायी बनी रहो।

अर्थवेद में एक स्थान पर वर्णन है – हे भूमी ! तुम अत्यन्त ऊर्जा युक्त हो। स्वास्थ्य वर्धक, रोग निरोधक, पोषक तत्व तथा अनेक जीवन उपयोगी पदार्थ तुम्हारी कोख में सुप्त पडे है। जिन्हें उपलब्ध कर हम स्वस्थ, हष्ट–पुष्ट, समृद्ध, एवं दीर्घायु है।

मिट्टी की महिमा का वेदों में बहुत जगहों पर गुणगान हैं। पृथ्वी के इस अद्भुत युग एवं लाभ को देखते हुए इसे देवी की के तुल्य माना गया हैं। देव अर्थात जिसका मुख्य गुण कुछ हितकारक देना है।

भारत वर्ष में मिट्टी की औषधीय प्रयोग सदियों से किया जा रहा है। एक बार एक बौद्ध भिक्षु को एक भयंकर विषधर ने डस लिया। भगवान कुछ बोले कि विष निवारण हेतु मिट्टी का प्रयोग करो। मिट्टी के प्रयोग से विष का प्रभाव समाप्त हो गया। मिट्टी के औषधीय गुण से भारतवासी सदियों से परिचित है। मिट्टी चिकित्सा करने करते समय व्यक्ति का शरीर ही नहीं लेटता अपितु उसका अहंकार भी लेट जाता है। तभी तो आनन्द की प्राप्ती होती है। ईसा मसीह कहा करते थे – "जूतों का पैर मत घसीट तू पैदल चल"। भारतवासी ईसा के कई सों पूर्व से ही मिट्टी की विष निस्सारक क्षमता से परिचित थे। बहुत से भारतीय ग्रन्थों में इसका स्पष्ट वर्णन है।

भारतीय आयुर्वेदिक मनीषी सुश्रत ने बताया – कृष्णामृत क्षत दाहास्त्र, पदर श्लेषमपित्त नुत्त।

काली मिट्टी घाव, दाह, रक्त, विचार, प्रदर, कक तथा पित्त के प्रकोपों को हरती है।

कईमो दाह पित्तार्स्त शोधथध्नः शीतलः सरः।

जल से भली भांति मक्खन सादृश गुंदी हुई मिट्टी ठंडक देने वाली होती है। इससे जलन, पित्त की पीड़ा, सूजन दूर होते है।

हित वा स्यात्, कृष्ण वाल्मीक मृतिका।

सर्पदंश में काली दीमक वाली ;वाल्मीकद्ध मिट्टी विशेष गुणकारी हैं।

यद्धो द्वेवा उपजीका आसिंचन धन्नप्रर्दकम

तंत्र देव सुतेनेदं दूषयता विषम्।

हे मनुष्यों दीमके मुंह से लाई गई मिट्टी तथा अपने मुंह के जल ;लारद्ध से जो वाल्मीकी बनाती है उस मिट्टी देव निर्मित औषधी से इस विष को रोग रूपी विष को नष्ट करों।

भगवान वाल्मीकि बिना हिले डुले तपस्या में लीन थे उनके शरीर पर मिट्टी जम गयी थी दीमको ने इस मिट्टी में अपनें घर बना लिये थे तभी से इस दीमक वाली मिट्टी को वाल्मीकी मिट्टी के नाम से जाना गया है। इसमें अद्भूत औषधीय गुण होते है।

मृत शरीर का दाह संस्कार ;अन्तिम संस्कारद्ध करने के पश्चात शरीर का जो भिस्मावशेष बचता हैं। उसके तत्वों का विश्लेषण किया गया तो पाया इसमे निहित समस्त तत्व पृथ्वी ;मिट्टीद्ध में

उपस्थित होते है। अतः शु(औषधीय मिट्टी का शरीर पर बाह्य लेपन शरीर के अंगो को पूर्णतः स्वस्थ्य करने में सहयोगी है।

सूर्य की धूप में उपस्थित पराबैंगनी किरणें (Ultraviolet Radiation) से बचाने का काम भी मिट्टी चिकित्सा करती है। मिट्टी में बिल बनाकर रहने वाले जीव, जन्तु व कीडे मकौडे में मात्र आश्रय एवं पोषण ही प्राप्त नहीं करते वरन् अद्भूत जीवनी शक्ति भी प्राप्त करते है। ज्यों मनुष्य मिट्टी से होता गया रोग व रोगी बने रहने के लिए मजबूर होता गया। स्वस्थ्य एवं सुखी बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि हमारा जुड़ाव मिट्टी से बना रहे। मिट्टी से हम जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक अलग नहीं हो सकते –

खाक का पुतला बना है, खाक की तस्वीर है।
खाक में मिल जाएगाा, फिर खाक दामनगीर है।।

5.1.2 मिट्टी तत्व (पृथ्वी तत्व) का अर्थ –

भागवत पुराण में वर्णन है कि राजा प्रथु ने पृथ्वी को सजा संवार कर उससे बहुत सी औषधियों का दोहन कर जीव जाती का कल्याण किया था इसलिए इसे पृथ्वी कहा गया है।

यह धरा समस्त जड़–चेतन वस्तुओं को धारण किये है इसलिए उसे धरा अथवा धात्री भी कहते है। बहुत से रत्न और खनिज पदार्थों से भरे रहने के कारण इसे रत्नागर्भा, वसुन्धरा, वसुमती ;धन–धान्य एवं सम्पदा से परिपूर्णद्ध, रतन प्रसविनी आदि आदि नामों से भी पुकारा जाता है। समस्त रसों से परिपूर्ण होने से परिपूर्ण होने के कारण इसे रसा भी कहते है। विष नाशक प्रभाव के कारण इसे अमृता भी कहा जाता हैं।

मिट्टी का अर्थ है मिटना अथवा मिट्टी में मिलना। समस्त पदार्थ स्थूल रूप से नष्ट होने पर मिट्टी में मिल जाते हैं इसलिए इसे मिट्टी भी कहते है। वेदों में पृथ्वी को माता व आकाश को पिता की संज्ञा दी गयी है।

पृथ्वी मात धौः न पिता।
अर्थात पृथ्वी हमारी माता है आकाश पिता है।

श्री मद्भागवतगीता के अनुसार – सम्पूर्ण प्राणी के अनुसार ;पृथ्वीद्ध से उत्पन्न होते है और अन्न की उत्पत्ति वृष्टि (वर्षा) से होती है।

अन्नादि भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः।

तैत्तरीय उपनिषद में स्पष्ट लिखा है – परमात्मा ;आत्माद्ध से आकाश तत्व उत्पन्न हुआ है, आकाश से वायु तत्व , वायु , अग्नि से जल तत्व, जल तत्व से पृथ्वी तत्व की उत्पति हुई है। औषधियों से अन्न तत्व व अन्न से मनुष्य शरीर (जीव) उत्पन्न हुआ है। अतः इस मानवी शरीर की उत्पत्ती पृथ्वी तत्व (अन्न) से ही हुई है।

यह भौतिक शरीर उपचार की दृष्टी से पृथ्वी / मिट्टी तल से सबसे अधिक प्रभावित होता है। मिट्टी से दूर होने से रोगी न मिट्टी के करीब होने से निरोगी रहना मनुष्य के लिए सबसे सरल है।

बाईबिल के अनुसार – The First man is of the earth earthy. (Corintnlans xv-47)

अर्थात ईश्वर ने धरती की धूप से आदमी का पुतला बनाया, उसने नथुनों में प्राण फुंके ओर वह सजीव प्राणी हो गया।

5.1.3 गांधी जी का मिट्टी से लगाव –

प्राकृतिक उपचार के सन्दर्भ में मिट्टी चिकित्सा के प्रयोग का अनुभव गांधी जी ने अपनी पुस्तक कुदरती उपचार एवं आरोग्य की कुंजी में दिया। गांधी जी स्वंय कब्ज से पीड़ित रहते थे। होम्योपैथिक एवं अन्य प्रयोगों के पश्चात भी कब्ज ठीक नहीं हो रही थी। दवाओं के दुष्प्रभाव से भी बडे परेशान रहते थे। इसी बीच गांधी जी को किसी मित्र ने पेडू पर मिट्टी की पट्टी को बांधा। प्रथम उपचार का ही आशातीत लाभ मिला। गांधी जी मिट्टी के इस प्रयोग से बहुत ही प्रभावित हुए। सेवाग्राम में गांधी जी ने रोगियों को औषधि का प्रयोग बंद करा दिया एवं मिट्टी द्वारा चिकित्सा पर बल दिया। बापू के शब्दों में – मेरा अनुभव है कि सर में दर्द हो,

तो मिट्टी की पट्टी सिर पर रखने से बहुत ही फायदा होता है। यह प्रयोग मैने सैकडों रोगियों पर किया है। मैं जानता हुं कि सिर दर्द के अनेक कारण हो सकते है। परन्तु सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि किसी भी कारण से सिर में दर्द क्यों न हो मिट्टी की पट्टी सिर पर रखने से तात्कालिक लाभ तो होता ही है।

टाइफाइड, तीव्र ज्वर, बिच्छु दंश, जैसे रोगों में बापू ने मिट्टी के प्रयोग द्वारा आशातीत सफलता हासिल की। फोडे, फुंसी, चोट, घावों को पौटेशियम पर मेंगनेट से धोकर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग गांधी जी मजे से कराया करते थें। कीटाणुनाशक एन्टीफ्लोजिस्टिन के स्थान पर बापू मिट्टी का प्रयोग किया करते थें। मिट्टी में थोडा सरसों का तेल और नमक मिलाते थे। बापू के इन सफल प्रयोगों के भारत में मिट्टी चिकित्सा ;प्राकृतिक चिकित्साद्ध को सम्पूर्ण भारत में विस्तारित कर दिया।

5.1.4 मिट्टी की शक्ति एवं गुण –

मिट्टी/पृथ्वी में अपार शक्ति है। मिट्टी की उपयोगिता समस्त ब्रह्माण्ड में अद्वितीय है। मिट्टी मे ंस्थित जल, वायु, एवं अग्नि संतुलन निरोगी बनाने में शीघ्र सहयोग करता है। मिट्टी में रोगों को दूर करने की अभूतपूर्व शक्ति होती है। मिट्टी शरीर से विजातीय द्रव्यों का निष्कासन करने में सहयोगी है। शीघ्रता से प्रतिविषकरण (Defoxgtication) की प्रक्रिया मिट्टी द्वारा सम्भव हो जाती है। सर्प, बिच्छु दंश के कारण विषों के प्रभाव को निष्क्रिय करने से मिट्टी अत्यन्त सहयोगी है। फोडे, फुसियों, त्वचीय रोगों में मिट्टी लाभ पहुंचाती हैं।

मिट्टी सर्दी एवं गर्मी से जीवों को बचाने का कार्य करती है बहुत से स्थानों पर लोग सर्दी एवं गर्मी से बचने के लिए बदन पर मिट्टी का प्रयोग करते है। महान प्राकृतिक चिकित्सा के वैज्ञानिक डॉ लिण्डल्तार के अनुसार – मिट्टी त्वचा के रोगकूपों को खोलती है, रक्त को ऊपरी भाग में खींचती अंदर के दर्द एक रक्त संचय को दूर करती हैं। और विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने में सहयोगी है। रोग चाहे शरीर के भीतर हो अथवा बाहर हो मिट्टी का प्रयोग उसके कारण ;विष अथवा विजातीय द्रव्यद्ध को धीरे–2 चूसकर उसे जड़–मूल से समाप्त कर देती है। ऐसी शक्ति एवं अद्भूत मिट्टी में है।

5.2 प्रकृति मे मिट्टी का निर्माण – पृथ्वी में स्थित खनिज लवण निश्चित मात्रा में मिलकर स्वास्थ्य के लिए उपयोगी एवं गुणकारी होते है। पशु, पक्षी, जीव–जन्तु, कीट–पंतगों अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त होकर मरते है। इस कारण इन जीवों का मिट्टी से जुडाव एक प्रकृति के सन्निकट रहना है। अथर्ववेद मे वर्णन है कि – मिट्टी ;भूमिद्ध शिला, पत्थर और धूत से मिलकर यथावत धारण की गयी है। ऐसी हिरण्यवक्षा मां धरती को नमस्कार है।

चट्टानों के विखण्डन, घर्षण, विचूर्णन द्वारा मिट्टी का निर्माण हुआ है। चट्टानों के टूटने घिसने की प्रक्रिया वायु एवं जल के कारण होती रहती हैं। जिससे मिट्टी का निर्माण होता रहता है। बर्फ गिरना, तेज हवा का चलना, वर्षा, नदी, झरनों के प्रवाह के कारण चट्टानों से मिट्टी का निर्माण होता हैं। पेड़–पौधों की जडों, बैक्टिीरिया और कवक द्वारा भी चट्टानों से मिट्टी का निर्माण होता है। इसी धूल–मिट्टी से मिलकर चट्टानों का निर्माण होता है। इस प्रकार हजारों वर्षों में परिवर्तन होते रहते है।

5.3 मिट्टी के प्रकार –

चिकित्सक की दृष्टि से मिट्टी कई प्रकार की होती है। प्रत्येक प्रकार की मिट्टी का उपयोग उसके गुण के अनुसार अलग–अलग है।

(क) चिकनी मिट्टी अथवा मृत्तिकामय – बारीक कणों वाली इस मिट्टी के कण अधिक समीप होते है। इस कारण पानी को रोकने की क्षमता इस मिट्टी में होती है।

(ख) बलुआ मिट्टी – मोटे कण होने के कारण इस मिट्टी में पानी को रोके रखने की क्षमता बिल्कुल नहीं होनी चाहिए क्योंकि बलुआ मिट्टी के कणों के मध्य बहुत अधिक स्थान होता है।

(ग) लोम–मिट्टी – चिकनी मिट्टी व बलुआ मिट्टी के समान अनुपात मे ंमिश्रण से लोम मिट्टी का निर्माण होता है। सामान्यतः चिकित्सा की दृष्टि से यही लोम मिट्टी सबसे उत्तम मानी गयी है। खेती के लिए भी यही मिट्टी अधिक उपर्युक्त है। लोम मिट्टी भी दो प्रकार की होती है।

(i) चिकनी लोम मिट्टी – इस मिट्टी में चिकनी मिट्टी की मात्रा बलुआ मिट्टी से अधिक होती है।

(ii) रेतीली लोम मिट्टी – इस मिट्टी के कण चिकनी मिट्टी से अधिक होते है।

5.4 मिट्टी की संरचना –

मोटे रूप से मिट्टी में निम्न पदार्थों का मिश्रण होता है

;कद्ध खनिज पदार्थ (ख) कार्बनिक पदार्थ (ग) पानी (घ) हवा

;कद्ध खनिज पदार्थ – मृत मानत देह को पूर्णतः जलाने ;भस्मीभूतद्ध के पश्चात मात्र 20 ग्राम अवशेष बचता हैं। इस 20 ग्राम अवशेष में खनिजों का विश्लेषण भारतीय प्रयोगशाला में किया गया तो पाया कि इस अवशेष में वही खनिज उपस्थित है जो सामान्यतः मिट्टी में होते है।

उपचार की जाने वाली मिट्टी में सोडियम कार्बोनेट, सोडियम क्लोरेट व अन्य कुछ लवणों की मात्रा मिट्टी में 0.5% से अधिक होनी चाहिए। इस प्रकार की जाने वाली मिट्टी का पी. एच. 7 से कम ;अम्लीयद्ध होना चाहिए। विजातीय द्रव्यों के निष्कासन के लिए अम्लीय पी. एच. होनी चाहिए।

मिट्टी में उपस्थित केओलिन ;सफेद पदार्थद्ध एसीडिटी, अविसार, हैजा, अमीबीयता एवं संक्रमण को ठीक करने में सहयोगी होता है।

गेरू मिट्टी ;लाल मिट्टीद्ध में एल्यूमिनियम सिलिकेट तथा आयरन ऑक्साइड होता है। विजातीय विषाक्त पदार्थों के अवशोषण का काम यह लाल मिट्टी करती है।

मुलतानी मिट्टी में कपूर (100%2) मिलाकर प्रयोग करने से सक्सिका, मुहांसे, कील, माइग्रेन व त्वचीय रोगों मे लाभ मिलता है। मुलतानी मिट्टी में गुलाब जल व चंदन पाउडर को मिलाकर लगाने से त्वचा का रंग गोरा होता हैं। मेग्निशिया का सिलिकेट इस मुल्तानी मिट्टी में बहुत अच्छा स्वास्थ्य दायक सिद्ध होता है।

;खद्ध कार्बनिक पदार्थ – पेड पौधें एवं जीव–जन्तुओं के अंशावशेष, मृतावशेष का अपघटन होने से पृथ्वी में कार्बनिक पदार्थों की बढोत्तरी होती है। यह अपघटन की क्रिया सूक्ष्म जीवों "जीवाणु एवं कवक द्वारा होती है। यही कार्बनिक पदार्थों पृथ्वी में होने से पृथ्वी की जैविक सम्पदा बनती है।

;गद्ध मिट्टी मे पानी – मिट्टी की प्रकृति के अनुसार मिट्टी मे जल की आद्रता बनती है। मिट्टी के वर्गीकरण विषय में (5-3) में इस विषय में वर्णन किया जा चुका है।

;घद्ध वायु – मिट्टी मे बीच खाली स्थान मे वायु स्थित होती है मिट्टी मे उपस्थित वायु विजातीय द्रवों को त्वचा से सोखने का कार्य करती हैं। इसी वायु को जडों द्वारा ग्रहण कर समान पौधे श्वसन क्रिया द्वारा जीवन प्राप्त करते है।

शुद्ध एवं उपचार मिट्टी में लाभदायक सूक्ष्मजीव रहते है। ये लाभकारी सूक्ष्मजीव विभिन्न रोगी से हमारी रक्षा करते हैं। मेरी लेप हॉन हापकिन्स स्कूल ऑफ मेडिसन के वैज्ञानिक चिकित्सकों ने डॉ वर्ग वोगेल्सडाइन के साथ मिलकर मिट्टी के चिकित्सीय प्रभाव का पता लगाया मिट्टी मे स्थित एक सूक्ष्म जीव के जीन मे परिवर्तन कर उन्होने कैंसर ग्रस्त कोशिकाओं से लडने की क्षमता का पता लगाया। इस बैक्टीरिया नाम क्लोस्टीडियम नोवी है।इस तकनीकी का नाम कोबाल्ट थैरेपी अर्थात वैक्टीरियोलोजिक थेरेपी दिया गया।

सर्वोत्तम मिट्टी – चिकित्सा की दृष्टि से चिकनी मिट्टी व बालु के कण युक्त मिट्टी को सर्वोत्तम माना गया हैं। यह अनुपात चिकनी व बालू का 60% व 40% सबसे अच्छा होता है।

5.6 – मिट्टी का शरीर पर प्रभाव –:

मिट्टी का शरीर को स्वास्थ्य करने के लिए तीन प्रकार से प्रभाव पडता है।

(1) परोक्ष प्रभाव (2) अपरोक्ष

परोक्ष रूप से मिट्टी त्वचा अथवा त्वचा के नीचे निहित अंग को ठीक करती है। जिस अंग पर मिट्टी लगाते है वहां की त्वचा व उसके भीतर अंग को ठीक करती है। इसे परोक्ष प्रभाव कहते है। उदाहरण के लिए मिट्टी को गीला करके आंखों पर लगाते है तो त्वचा का

कालापन (dark circle) एवं दृष्टि कोण ठीक होते हैं। पेडु पर लगाई गयी मिट्टी पेडु संस्थान को जाग्रत कर कब्ज को दूर करने में सहयोगी है।

अपरोक्ष प्रभाव में पेडु पर लगाई गयी मिट्टी की पट्टी यकृत एवं आमाशय को भी ठीक करने में सहयोगी है। अपरोक्ष प्रभाव में महिलाओं के स्तन पर किया गया मिट्टी का लेप गर्भाशय को ठीक करता है। पैर तथा उदर पर किया गया प्रयोग आंतो को ठीक करता है। हाथ व पैर पर किया गया मिट्टी का प्रयोग मस्तिष्क एवं छाती के लिए लाभकारी हैं।

5.6.1 मिट्टी का स्वास्थ्य पर प्रभाव –

मिट्टी के स्वास्थ्य पर निम्न प्रभाव पड़ते है। डॉ. वोल्कोवा ;1960द्ध के द्वारा चिकित्सीय प्रभाव का निष्कर्ष –

(i) मिट्टी जैवी उद्दीपन (Bio-stimulation) का काम करती है।

(ii) अंतः स्त्रावी तंत्र (Evdoerine system) को सामान्य करने का काम करती है।

(iii) मिट्टी शरीर का तापमान सामान्य (Thermal regulation) बनाए रखने का काम करती है।

(iv) मिट्टी शरीर के जैविक प्रतिरक्षा कार्य (Immunobialogical function) को जाग्रत कर निरोगी बनाने में सहयोग करती है।

(v) दर्द, जलन एवं तीव्र आकृान्तक प्रतिक्रियाएं ;subacute inflamatory processद्ध को मिट्टी की चिकित्सा द्वारा मृदु हड्डीपन (Normal stimation) में परिवर्तित किया जाता है।

इस रूसी वैज्ञानिक ने मिट्टी पर प्रयोग कर प्राचीन काल से प्रयोग में आ रही मिट्टी चिकित्सा को वैज्ञानिक प्रमाण देकर प्रमाणिकता प्रदान की है।

इसी क्रम में एक ओर रूसी वैज्ञानिक पी.जी. ट्सरफिस (P.G. Tsarfis) ने भी अद्भूत अनुसंधान कर पाया कि मिट्टी चिकित्सा प्रयोगों द्वारा ल्यूकोसाइट्स फेगोसाइटिक क्रियाशीलता, सिरमलाइटिक गुणवत्ता (lencocoytee phagocytes activity, serumlytic properties) तथा तंत्रीय (functional system) क्रियाशीलता बढ जाती है। संधिवात (arthritis) में कम तापक्रम पर मिट्टी के प्रयोग में ट्सरफिस ने पाया कि यह मिट्टी विजातीय द्रव्यों संधियों में जमा विषाक्त पदार्थों का अवशोषण कर दर्द में आराम प्रदान करती है। कम तापक्रम की मिट्टी ;शीतलद्ध रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम करता है। एलर्जी में भी मिट्टी के प्रयोग का अच्छा प्रभाव अनुभव किया गया।

5.6.2 – मिट्टी का शरीर पर प्रभाव –:

मिट्टी द्वारा चिकित्सा के अन्य प्रभाव भी शरीर पर परोक्ष व अपरोक्ष रूप से पडते है।

(i) पृथ्वी में गुरूत्वाकर्षण शक्ति होती हैं। शरीर पर मिट्टी का विभिन्न प्रकार से प्रयोग हानिकारक विजातीय विषाक्त तत्वों को शरीर से बाहर खींच लेती है। अतः विषनिष्कासन (Detoxification) के लिए मिट्टी का प्रयोग उत्तम है।

(ii) पृथ्वी से छोटा सा बीज पोषण प्राप्त कर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। मिट्टी का यही गुण हमारे शरीर को भी समुचित पोषण प्रदान करता है।

(iii) मिट्टी शरीर के अंगो को आक्सीजन ग्रहण करने में सहयोगी है।

(iv) पृथ्वी में विद्युत चुम्बकीय प्रभाव होता है जिस कारण शरीर को विद्युत चुम्बकीय प्रभाव प्रदान कर मिट्टी जीव को सजीवता, स्वास्थ्य एवं जीवनी शक्ति प्रदान करती है।

(v) पसीना लाने वाली स्वेद ग्रंथी (sweet glands) मिट्टी के प्रयोग से सक्रिय होती है। जिससे विष निष्कासन की क्रिया तेजी से बढती है।

(vi) ठंडी मिट्टी त्वचा व बाह्य मांसपेशियां को संकुचित कर देती है। जिससे रूधिर शरीर के भीतरी अंगोमें चला जाता है। रक्त संचार की इस तीव्रता के कारण विजातीय द्रव शरीर के बाहर निकालते है।

(vii) मिट्टी का होशपूर्वक स्पर्श व्यक्ति को शीघ्र ही उसके चेतनशील होने की अनुभूति कराती है।

(viii) मिट्टी का माथे पर शीतल स्पर्श ममतामयी मां के कोमल स्पर्श जैसा होता है।

5.6.3 मिट्टी से नैसर्गिक जुडाव का चिकित्सकॉय लाभ –

साधारण जीवन में व्यक्ति का नैसर्गिक जुडाव रहा है। अब से 20–30 वर्ष शौच आदि से निवृत्त होकर गांवो में तीन बार शु(मिट्टी से हाथों को साफ करते थे। इस प्राकृतिक जुडाव का स्थान साबुन ले लिया। बर्तनों को राख से साफ किया करते थे, इसका स्थान भी डिटर्जेन्ट ने ले लिया । खेत में नंगे पैर काम किया करते थे, नंगे पैर मिट्टी में खेला करते थे। आजकल जुते–जुर्राब में यह मिट्टी से नैसर्गिक जुडाव को भी छीन लिया। भारत की फुटबाल की टीम ने 1940 के दशक ने फुटबाल ओलम्पिक मे भाग लेने के लिए गयी, परन्तु दुर्भाग्य वश भारतीय फुटबाल टीम को अयोग्य (Disqualified) के मैदान में उत्तर गयी।

सबसे बडा खेल का विषय तो यह है कि भारतीय खेल कुश्ती मिट्टी का अखाडा खेलकूद तैयार किया जाता था। इसको भारत मे ही अपना रूप बदलना पडा क्योंकि ओलम्पिक में कुश्ती जूतें पहनकर संश्लेषित गड्डों (Synthetic methresses) पर खेली जाती है। अब भारत में मिट्टी से जुडाव का सर्वलोक प्रिया खेल खेल कुश्ती भी अपनी माटी से दूर हो गया।

इतने रोग, रोगी, डाक्टर्स व अस्पताल बढते जा रहे है इसमें कोई आश्चर्य की ज्ञात नहीं होनी चाहिए। क्योंकि मिट्टी से सम्पर्क टूटता जा रहा हैं। जो मिट्टी से नैसर्गिक रूप से जुडी रहने का सुख एवं स्वास्थ्य मनुष्य के जीवन में था अब वह पूरी तरह से क्षीण होता जा रहा हैं। यही कारण है कि खिलाडी भी बहुत बीमार रहने लगे हैं।

मिट्टी पर नंगे बदन सोना, नंगे पैर चलना भारतीय परंपरा भी थी व मजबूरी थी, जिसका नैसर्गिक स्वास्थ्य लाभ मनुष्य को मिलता था। पहले कच्चे मकान बनाया करते थें। इसके लिए घर के लोग ही मिल जुलकर मिट्टी में खूब पानी मिलाकर गारा बना लिया करते थे। कई–2 घंटे उस गारा में खडे रहकर काम किया करते थे।

5.7 मिट्टी का रोगोपचार –: साधारणातः स्वाभाविक रूप से मिट्टी से किसी प्रकार से भी संपर्क मे रहने के कारण शरीर को स्वास्थ्य लाभ एवं सुख प्राप्त होता है। फिर भी मिट्टी का प्रयोग उपचार रोगोपचार में विभिन्न रूपों मे किया जाता है।

5.7.1 – रोगोपचार में मिट्टी में प्रयोग – रोगी होने पर उपचार के लिए बहुत से मिट्टी के प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सा में किए जाते है। जो कि निम्न है।

(क) स्थानीय मिट्टी पट्टी ;ठंडा या ठंडी एवं गरमद्ध

(ख) मिट्टी की गरम पट्टी

(ग) सूर्य तप्त बालू रेत स्नान

(घ) गरम वाष्पित आद्र रेत स्नान

(च) मिट्टी स्नान

5.7 – मिट्टी उपचार में प्रयोग –

5.7 (क) स्थानीय मिट्टी पट्टी ;ठंडी अथवा ठंड व गरमद्ध मिट्टी तैयार करना –:

जमीन से 8–10 घंटे फुट नीचे की हजारों वर्षो से प्रयोग रहित मिट्टी संभव नहीं हो तो कंकड, पत्थर, घास, फुस, तिनके कागज व अन्य वस्तु रहित मिट्टी को कुट छानकर एकत्र कर सके। संभव हो तो चिकनी मिट्टी ;बालू रेत सहितद्ध का प्रयोग करे यह उपचार के लिए सर्वोत्तम मिट्टी है। मिट्टी को 10–12 घंटे पूर्व जल में भिगोकर बिना हाथ से स्पर्श किए अच्छी प्रकार से आटे की तरह गूंद ले। हाथ के स्थान पर करनी, खुरपा, लकड़ी, करछी अथवा कड़द्दी का प्रयोग करें। हाथ से मिलाने पर हाथ की गर्मी मिट्टी द्वारा प्राप्त की जाती है। हाथ का संपर्क मिट्टी गुणवत्ता पर अलग से गलत प्रभाव डालता है। इससे मिट्टी की विद्युत चुम्बकीय शक्ति एवं ताप में नकारात्मक परिवर्तन होता है। मिट्टी को गूंथने के लिए लकड़ी का पलटा सर्वोत्तम रहता है।

मिट्टी पट्टी तैयार करना – स्थानीय ठंडी मिट्टी तैयार करने के लिए अंग की आकृति से थोडा सूती वस्त्र का टुकडा बिछाकर उस पर गुंधी हुई मिट्टी को आधा इंच से पौना इंच मोटाई रखते हुए फैला लें। तत्पश्चात रोग के अनुसार शरीर के स्थानीय भाग (local body part) पर मिट्टी धीरे से रख दें। निम्न अंगों के लिए स्थानीय मिट्टी पट्टी तैयार की जाती है।

सिर पर, कान पर, माथे पर, आंख पर, चेहरे पर, गले पर कंधे एवं ग्रीवा पर, छाती पर, हाथ की पट्टी, उदर की पट्टी आमाशय की पट्टी, लिवर व पन्क्रियाज की पट्टी, प्लीश पर, पेडु पर ;नाथी से नीचेद्ध जनानांगों पर, पैरों पर, संधियों पर, रीढ पर, गुदा पर.....

बंदर, बिच्छू, कुत्ता, सांप आदि के काटने पर भी ठंडी मिट्टी का प्रयोग किया जाता है।

(1) सिर पर मिट्टीकी ठंडी पट्टी – रोग के स्थानीय प्रभाव के अनुसार माथे पर अथवा सर पर ठंडी मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। क्षमता द्धतु व रोगानुसार मिट्टी की पट्टी 10 मिनट से 40 मिनट तक प्रयोग की जा सकती है। दोपहर का समय सर की पट्टी का सर्वोत्तम समय है।

लाभ –: माइग्रेन ;सर दर्दद्ध, आधा सीसी, अनिद्रा, स्नायुटोर्वल्य, बैचेनी, मस्तिष्क कला शोच, नेत्र रोग, घबराहट, एकाग्रता का अभाव, चक्कर, स्मरण शक्ति का अभाव, सर की चोट, रक्त स्त्राव, चिडचिडापन, गुस्सा, आलस्य, शिथिलता, उच्चरक्त चाप, तीव्र ज्वर, अवसाद (depression), तनाव, मूर्छा, मिरगी, उन्माद, प्रलाप, उदासी, उन्माद, भय, कामुकता, मस्तिष्क, गांठ।

(ii) रीढ पर मिट्टी की पट्टी –: रीढ के आकार की लंबाई तथा इंच चौडी व 1 से. मी. मोटी मिट्टी का प्रयोग रीढ पर किया जाता है। प्रथम गीता केशरूका एटलस से प्रारंभ होकर अंतिम पुच्छल कशेरूका तक मिट्टी का प्रयोग करें। मिट्टी लगाने से पूर्व रीढ घर्षण अथवा सेंक द्वारा गरम कर देता आवश्यक है। रीढ की पट्टी पेट के बल पिटा कर दी जाती है। समय दोपहर का ही सर्वोत्तम है।

लाभ – स्नायु लोगों केन्द्रीय तथा परिधीय तंत्रिका तंत्र की किया बिगडने से होने वाले रोगों में रीढ पर मिट्टी पट्टी लाभकारी है। सर की पट्टी के समस्त लाभों तो प्राप्त होते ही है। साथ में हाथों व पैरों की कमजोरी, सिमारिका, वेरिकोज बेन, सुन्नपन, कम्पन बाल में भी रीढ की मिट्टी की पट्टी लाभकारी है। मोटापा, नंपुसकता, मधुमेह, प्रदाह, सामान्य कमजोरी में भी परोक्ष लाभ मिलता है। विषाक्तवा,

(iii) आंख पर मिट्टी की पट्टी – दोनो आंखो पर भोहों से उपर व नासिका केन्द्रों से उपर व कनपटी तक मिट्टी की पट्टी फैलाकर लगायी जाती है।

लाभ – निकट, दूर दृष्टि दोष, नेत्र प्रदाह, धुंधलापन अधिक अश्रु श्राव व अश्रुअभाव, नेत्र तनाव, भारीपन, शुद्ध मिट्टी में प्याज का रस, अदरक का रस, शहद, गुलाबजल, थोडा–2 मिट्टी में मिलाकर लगाने से भी नेत्रों की मिट्टी पट्टी अधिक लाभकारी होती है।

(iv) कान पर मिट्टी पट्टी – कान को स्थानीय वाष्प द्वारा गरम कर लें। कान के छिड में रूई लगाकर उपर से मिट्टी का लेप लगा दें। कर्ण छिड से त्रिज्या पर मिट्टी का लेप लगा दें। रोगानुसार कर्णशूल आदि में कान पर 5 मिनट गरम व 5 मिनट ठंडी पट्टी भी रखी जा सकती है।

लाभ – कर्णशूल, कर्णस्त्राव, श्रवण शक्ति का अभाव, कान की खूजली, कान का संक्रमण, कान में विभिन्न आवाजों का आना, चक्कर व अशांति में कान पर मिट्टी का लेप लाभ करता है। 15–20 मिनट पश्चात मिट्टी पट्टी हटाकर रूई को निकाल दें। बाहर से कान को गुनगुने पानी से धोकर औषधीय तेल ;लहसुन, प्याज आदि कोद्ध डाले व रूई लगाकर छोंड दे।

(v) चेहरे पर मिट्टी का लेप – 8 घंटे पूर्व गुलाब जल में भीगी मुलतानी मिट्टी अथवा साफ शु(ठंडी मिट्टी का लेप चेहरे पर कर सकते है। नासिका छिड को खुला छोडते है। 30 से 45 मिनट तक मिट्टी प्रयोग कर बाद में नींबू पानी द्वारा चेहरे को धोकर साफ कर

लें। चेहरे पर मिट्टी का लेप करने से पूर्व चेहरे को बाह्य द्वारा गरम कर लें। मिट्टी के साथ चंदन, हल्दी व बेसन आदि का प्रयोग भी कर सकते है।

लाभ – थायराइड (Hyper or lower) के रोग, यसिलाइटिस, गले का संक्रमण, आंवाज का बैठना, मधुर स्वर के लिए, गले का दर्द, कण्ठकूप की सूजल, खांसी, जुकाम व कण्ठ, गले के रोगों में गरम व ठंडी मिट्टी पट्टी का प्रयोग 5–5 मिनट के लिए उपयोगी है। पट्टी रखने से पूर्व सेंधे नमक से गरारे व जलनेती करना श्रेयस्कर हैं। मिट्टी पट्टी के पश्चात गरम सूप, गुल्हैटी, काली मिर्च अथवा लौंग हितकारी है।

(vii) छाती पर मिट्टी पट्टी – छाती को वाष्प अथवा सेंक द्वारा गरम करके मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करें। गरम करने के लिए सूखे तौलिये से वर्षण अथवा मालिश भी कर सकते है। यदि अधिक बलगम, खांसी अथवा सांस लेने में परेशानी हो तो मिट्टी को हल्का गरम कर छाती पर रखते है। रोगी की क्षमतानुसार 15 मिनट से 30 मिनट तक रख सकते है।

लाभ – गरम सेंक से वक्षागों शिथिलापन एवं मिट्टी की ठंडा सेंक से संकुचन की प्रक्रिया होती है थोडी देर पश्चात वक्षांग फेफडे, ह्रदय, भोजन नली एवं पक्वाशय सामान्य अवस्था में आकर जीवनी शक्ति प्राप्त करते है। जिससे इन अंगो में स्थित विजातीय द्रव्य ढीले होकर बाहर निकलते है। श्वास के रोग, खांसी, दमा, न्यूमोनिया, फुफफुस शोध प्रोफाइटिस, श्वास कष्ट, टी. बी., एम्फी, साईमा में आराम मिलता है। ह्रदय रोग, कमजोर ह्रदय, ह्रदय धडकन का अनियंत्रित होना ह्रदय रक्त नली अवरोध (blockeage) एवं आत्मविश्वास की कमी दूर होती है।

(viii) त्वचा पर मिट्टी पट्टी – एक्जीमा, छाजन, पित्ती, जलन, चोट, दर्द, त्वचा के रोग में परिवर्तन, सौंदर्य वर्धक के लिए त्वचा पर मिट्टी का लेप किया जाता है। मिट्टी को थोडा पतला कर इसमें कपूर, गुलाब जल, नीम के पत्तों का पानी, हल्दी चंदन आदि मिलाकर त्वचा पर पतला लेप करते है हल्का सूखने पर पुनः उसी के ऊपर लेप करें इस प्रकार 3–4 बार करें। त्वचा पर निखार आकर कांती, मुलायम एवं रोगमुक्त होती है।

(ix) पेडु की मिट्टी पट्टी – पेडु संस्थान को भाप, सेंक अथवा रगडकर गरम करने के पश्चात नाभी से स्थान से प्रारंभ कर नीचे लगभग प्यूविक हेयर तक व दाये बायें उदर के पार्श्व भाग तक मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए। यह पेडु–संस्थान शरीर की समस्त गंदगी को अपने भीतर धारण करता हैं। इसका प्रतिदिन साफ होना चाहिए प्राकृतिक जीवन के लिए सबसे अधिक जरूरी है।

लाभ – पेडू पर मिट्टी के प्रयोग से आंतो की दीवारों पर जिसका मल घटने लगता है। कब्ज के लिए समस्त चूर्ण, वटी, सीरप एवं दवाएं आंतों के मध्य छिपे मल हो तो अस्थाई रूप से कुछ सीमा तक बाहर निकाल सकती हैं। परन्तु आंतो में स्थिति विलाई एवं वलन (villi and folde) का मल इन दवाओं से नहीं टूटता। इस मल को प्रयोग पेडु पर करते है। इससे कब्ज एवं कब्ज जनित रोग ठीक होते है। कब्जिमत, गैस, एसिडिटी, बवासीर, आंतो की सूजन, अजीर्ण, मंडाग्नी व्रज ;अल्सरद्ध हर्निया, अमीविता (amoebicnis), अतिसार, आंत शोध, जलोदर, आंतशूल, वृक्क दोष, मूत्र रोग, गैस्ट्रोइन्टराइटिस, अंतावरोध, मल से रक्त, गुदा में दर्द , पेंडु की गर्मी।

(x) आमाशय की मिट्टी की पट्टी –: गर्म थैली, भाप अथवा सेंक के द्वारा आमाशय को गर्म कर मिट्टी की पट्टी रखें। छाती के नीचे भाग से नाभी के उपरी भाग तक मिट्टी की पट्टी से ढकना चाहिए।

लाभ – आमाशय में भोजन का पूर्ण पाचन नहीं होने के कारण आमाशय में भोजन विषाक्त होने लगता है। जिससे एसिडिटी, गैस, अल्सर, दर्द, सूजन एवं पाचन क्रिया में बिगडाव आने लगता हैं। आमाशय पर मिट्टी की पट्टी से वमन, अल्सर, गैस, एसिडिटी,

हृदय जलन, मंदाग्नि, तीव्रग्नि (भस्मक), अजीर्ण, स्नायणिक अजीर्ण आदि रोग ठीक होते है।

(xi) यकृत पर मिट्टी की पट्टी –: यकृत वाले भाग को गर्म कर ठंडी मिट्टी की पट्टी रखते है। लाभ – यकृत शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि हैं। शरीर के सैकडों से भी अधिक काम यकृत द्वारा पूरे होते है। यकृत क्षुद्रांत्र के डयूओडिनम में पित्त नलिका द्वारा खुलता है। शरीर की उपायचय क्रियाओं में यकृत की सबसे बढा काम है। पाचन, उत्सर्जन, पिलाशय सूजन, पीलिया, यकृत वृद्धि, पित्त के रोग, शरीर में गर्मी, यकृत नली शोध आदि उपवास काल में उभाई (Healing crises) के समय यकृत ही विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में सबसे बडा काम करता है।

(xii) आमाशय पर मिट्टी की पट्टी –: शर्करा के प्रबंधन का काम (Glucose management) अग्नाशय द्वारा होता है। अग्नाशय वाले भाग को गरम कर ठंडी मिट्टी पट्टी का प्रयोग करते है।

लाभ – ग्लूकोस प्रबंधन के साथ–2 अग्नाशय का काम पाचन क्रिया में भी विशेष होता है। क्षुडांत्र के उपरी भाग ड्यूओडियम में अग्नाशयी नली द्वारा अग्नाशयी रसें का स्त्रावण होता है। जिसमें काब्रोहाइड्रेट, प्रोटीन व वसा को पचाने वाले विकर उपस्थित होते है। अग्नाशय पर मिट्टी की पट्टी से मधुमेह रोग, पाचन रोग, गैस, एसिडिटी, कोष्ठ बद्धता ठीक होते है।

(xiii) कमर की मिट्टी की पट्टी –: लम्बर संस्थान से लेकर नीचे की रीढ की पुच्छल कशेरूका तक के भाग ;कमरद्ध को रगडकर लाल कर लें अथवा भाप से गरम कर लें। ठंडी मिट्टी की पट्टी इसी कमर के आकार की बनाकर इस भाग पर रख दें।

लाभ – पैरों की कमजोरी, स्नायु कमजोरी, थकान, अकडाह चोट, कटिशूल, मूत्रावरोध, मूत्र रक्त, मूत्राघात, वृक्कशेष, मूत्राशय शोथ, गर्भाशय विकार, मासिक धर्म के रोगों में लाभ मिलता है।

(xiv) जननांगों या गुप्तांगों की मिट्टी की पट्टी – शुद्ध उपचारित मिट्टी को जननांगों पर गुदा द्वार से प्रारम्भ करके सीवनी नाडी से वृष्ण, शिशन एवं बालों को ढकते हुए लगानी चाहिए। स्त्रियों के गुप्तांगों पर भी इसी प्रकार की नरम, मुलायम, गीली मिट्टी का लेपन किया जाता है। लेपन से पूर्व जगा जननांगों को गर्म करने की आवश्यकता नहीं। 20–30 मिनट पश्चात मिट्टी हटाकर फिटकरी अथवा नीम के पानी से जननांगों को साफ किया जाता है।

लाभ – पुरूषों में गुप्तांगों पर मिट्टी के लेपन से स्नायुओं को बल मिलता है। लैंगिक हारमोनल क्रिया विधि एवं तंत्रिका तंत्र सामान्य रूप से कार्य करने लगता है। आनंडा, नपुन्सकता, अवसाद, अशांति, मूत्र कच्छ, मूत्र कम आना, गुदा द्वार पर खुजली, रक्तमूत्र, मूत्र जलन में लाभकारी है।

स्त्रियों में बन्धमत्व मासिक धर्म के रोगों, गर्भाशय तथा डिम्बकोषों की सूजन, दर्द मे लाभकारी है।

5.7 ख – मिट्टी की गरम पट्टी :–

हालांकि बहुत से प्राकृतिक चिकित्सा शिरोमणी गरम मिट्टी की पट्टी के समर्थन में नहीं है। परन्तु कुछ परिस्थिति विशेष में मिट्टी को गरम करके अंगो पर लगाया जाता है। कोडे फुन्सी को पकाने के लिए बवासीर के दर्द, वृक्क शोथ, मासिक धर्म का न होना, जोडों का दर्द, कान दर्द, सिनुसाइटिस आदि रोगों में गरम मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। छाती में जमा बलगम, तीव्र श्वास कष्ट, जकडन, ठंड के कारण रोगों मे भी मिट्टी को गरम करके अथवा मिट्टी में गरम उबलता पानी मिलाकर प्रयोग करते हैं।

5.7 (ग) – सूर्य तप्त बालू–रेत स्नान –

रोगी को एक दो गिलास पानी पिलाकर सर को गीला कर गीले कपडे से लपेट दें। सूर्य की धूप में 3–4 घंटे गरम बालू रेत में रोगी को लिटा दें। गर्मी सहन करने लायक होनी चाहिए। 15 से 30 मिनट तक गरम रेत स्नान लिया जा सकता है।

लाभ – गरम बालू रेत में लेटने से विष निष्कासक (detoxification) की प्रक्रिया तेजी से होती है। गरम रेत की मिट्टी यूरिया, यूरिक एसिड, लवणों अपशिष्ट तेलों को शरीर से बाहर निकालती है। शरीर के रोगकूप जो कि त्वचा के प्रति से. मी. हिस्से में 28000 की संख्या मे होते है। ये रोग छिद्र खुलने लगते है। रक्त की शुि(होती है। मधुमेह, अधरेग, वेरिकोज वेन, जोडों का दर्द, अस्थिसंधी शोथ, श्वेत कुष्ठ, हड्डियों की कमजोरी, आमवात, ऐक्जिमा, सूजन, मोटापा, शिथिलता आदि में अन्य लाभकारी है।

गर्म बालू रेत स्नान के तुरन्त पश्चात शीतल जल से स्नान करना आवश्यक है तत्पश्चात हल्की चादर ओढकर आधा एक घंटा विश्राम करें तथा से दो घंटे पश्चात फल, जूस अथवा ठोस आहार का सेवन करें।

5.7 घ – गरम वाष्पित आर्द्र रेत अथवा मिट्टी स्नान –

रोगी को एक से दो ग्लास पानी पिलाकर सर पर गीला कर कपडा बांधते है। गरम रेत अथवा गरम मिट्टी ;सूर्य तत्वद्ध में 10–12 लीटर पानी छिंडक लेते है इसमें रोगी को लिटाकर मिट्टी से ढक देते है। 20–40 मिनट पश्चात ठंडे पानी से स्नान करायें।

लाभ – पोलियों, अधरंग ;पक्षघातद्ध, स्नायु दौवल्यि, जोडों में दर्द, गाठियावाय, अस्ति संधि शोध, शरीर में जलन, ज्वर, श्वेत कुष्ठ, एक्जिमा, खाज, खुजला, पसीने से बदबू, पित्ति उछलना, (voticaria), बिच्छू अथवा सर्पदंश, शिथिलता, मोटापा, मधुमेह, कमजोरी, अनिद्रा, अवसाद एवं क्रोध आदि रोगों में लाभकारी है।

5.7 च – मिट्टी स्नान ;उनक इंजी) –

प्रातः काल बीत जाने के पश्चात सूर्य की धूप पूरे बदन पर मिट्टी का लगभग से से 1 से.मी. मोटायी का लेप किया जाता है। इसके लिए रोगी के कान में रूई लगा दें। मिट्टी का लेप लगाने के पश्चात धूप में उसे सुखने दें। आधे से एक घंटा मिट्टी को लगी रहने दें।

लाभ – विषक्त दूषित विजावीय द्रव्य मिट्टी द्वारा त्वचा से सीख लिये जाते है। रक्त प्रवाह सामान्य होने लगता है। एक्जिमा, त्वचा रोग, खाज, खुजली, कमजोरी, रक्त पित्त, पसीने से दुर्गन्ध, अवसाद, ज्वर, सोरायसिस, कुष्ठ रोग आदि रोगों में मिट्टी स्नान लाभकारी है।

बोध प्रश्न –:

प्रश्न 1 – मिट्टी के महत्व पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 2 – मिट्टी/पृथ्वी तत्व की महिमा का गुणगान करों।

प्रश्न 3 – गांधी जी का मिट्टी के प्रति लगाव समझाइए। मिट्टी तत्व का क्या अर्थ है प्रकाश डालिये।

प्रश्न 4 – मिट्टी की उपचारक शक्ति एवं गुणों के विषय में लिखो ?

प्रश्न 5 – मिट्टी कितने प्रकार की होती है? प्रकृति में मिट्टी किस प्रकार निर्मित हुई?

प्रश्न 6 – मिट्टी किन–2 पदार्थों से मिलकर बनी होती है? प्रकाश डालिये।

प्रश्न 7 – मिट्टी का शरीर पर प्रभाव–निबंध लिखो।

प्रश्न 8 – चिकित्सा के लिए कौन–सी मिट्टी सर्वोत्तम है? मिट्टी को उपचार योग्य कैसे बनाया जाता है?

प्रश्न 9 – मिट्टी की पट्टी किसी रोग विशेष पर कैसे काम करती है?

5.9 सन्दर्भ सूची –

1. कुदरती उपचार – महात्मा गांधी
2. आरोग्य कुंजी – महात्मा गांधी
3. वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डा. ओ. पी. सक्सेना
4. निराश रोगियों का मार्ग दर्शक– महात्मा गांधी
5. प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग – डा. नागेन्द्र नीरज
6. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान –

इकाई : 6 - जल तत्व का अर्थ, गुण एवं विभिन्न रोगों में महत्व

6.1 परिचय –

जीने के लिए सबसे अधिक एवं प्राथमिक आवश्यकता वायु की होती है। दूसरा नम्बर जल का है। पृथ्वी एवं शरीर में जल की मात्रा, प्रतिशतता एवं भाग रूप में समान है। 3/4 भाग सम्पूर्ण शरीर का जल ही है। यह जल शरीर की बहुत सी जैव रासायनिक क्रियाओं (metabolism) में परोक्ष रूप से सहयोग करता है। ग्लूकोज़ का कण टूटकर शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है। यह ऊर्जा शरीर के कार्यों संचालन करती है। साथ में जल एवं कार्बन डाइ ऑक्साइड के कण टूटते है। कार्बन डाइ ऑक्साइड फेफडों द्वारा बाहर निकल जाती है। जल मूत्र, मल एवं पसीने द्वारा शरीर से निषाक्त कणों को लेकर बाहर निकल जाता है।

जल सार्वजनिक विलायक (universal solvant) है। शरीर को शुद्ध एवं स्वस्थ करने की बाह्य एवं भीतरी जल चिकित्सा विधियां एक साधन प्रयोग में लाये जा रहें है।

ईकाई संरचना

6.1 – परिचय
6.2 – उद्देश्य
6.3 – जल का अर्थ एवं परिभाषा
6.4 – पेय जल का महत्व एवं चिकित्सा
6.6 – जल के चिकित्सा साधन
6.7 – प्राकृतिक चिकित्सा उपचार विधियां लाभ एवं सावधानियां
6.8 – प्रश्नावली ––––––––––––––
6.9 – सहयोगी ग्रंथ –––

6.1 उद्देश्य –

प्राकृतिक चिकित्सा साधनों जल का भीतरी एवं बाह्य प्रयोग जल चिकित्सा में प्रयोग में परोक्ष रूप से लाया जाता है। भारत में वैदिक काल से ही जल का औषधिक प्रयोग हो रहा है। जल को जल देवता की संज्ञा दी गयी है। ..... पान में उर्वरक, पेस्टिसाइड्स, इनसैक्टिसाइड्स का शरीर में प्रवेश एवं हानिकारक प्रदूषिम वायु को शुद्ध कर शरीर से बाहर निकालने का काम जल चिकित्सा द्वारा हो रहा है। जल चिकित्सा को वैज्ञानिक आधार प्राप्त है। एनिग्राम बल चिकित्सा, ठंडा जल चिकित्सा, घर्षण स्नान, आंशिक स्वपूर्ण स्नान, जल की पट्टियों का प्रयोग, सूर्य जल (रंग) चिकित्सा कुंजल, बांधी क्रिया, शंख प्रक्षालन का प्रयोग जल चिकित्सा मे किया जा रहा है। इस इकाई का मूल उद्देश्य जल का अर्थ एवं महत्व बताना है। जल के गुण एवं विभिन्न रोगों में बल का क्या प्रयोग है, इस विषय में संक्षेप में आप इस इकाई में पढ़ सकेंगे पेय जल द्वारा भी बहुत से उपचार सम्भव है। जल में विभिन्न पदार्थों नीबू, शहद, मेथी, सौफ, धनिया, दालचीनी व सूखी जड़ी बूटियां मिलाकर भी उपचार सम्भव है। जल के विभिन्न चिकित्सा साधन प्रस्तुत इकाई में दिये गये है। इन उपचार साधनों की विधियां, रोगों के लाभ, सावधानियां आप इस इकाई में पढ़ सकेगें।

6.3 जल का अर्थ एवं परिभाषा –

पृथ्वी के निर्माण से भी पूर्व जल का अस्तित्व पृथ्वी को बनाने वाले कच्चे पदार्थों में हो रहा है। हम इस प्रकार भी कह सकते है कि पृथ्वी तत्व का कच्चा पदार्थ जल भी है। पृथ्वी के निर्माण से पूर्व कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, एवं जल गैस के रूप में उपस्थित था। जल के विभिन्न गैसों के साथ मिश्रण कर जीवन तत्व एमीनों अम्ल का निर्माण किया। अमीनो अम्ल ही प्रोटीन इकाई है एवं प्रोटीन के संश्लेषक से ही डीआक्सी–राइबोन्यूक्लिोटाइड (DNA) का निर्माण हुआ। DNA ही प्रथम कण पृथ्वी पर बना जिसमें जीवन के गुण उपस्थित थे। इस प्रकार जीव, पृथ्वी एवं समस्त बृह्माण्ड का मूल तत्व जल का तत्व है। यही जल तत्व शरीर में तीन चौथाई की मात्रा में उपस्थित है। यह जल तत्व "H20" दो गैसों के विभिन्न अनुपात से विभिन्न हुआ है। ये दो तत्व है– हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन(2%1½।

$$2H2 + O2 \quad 2H20$$

हाइड्रोजन गैस के दो अणु व आक्सीजन गैस का एक अणु मिलकर जल के अणु का निर्माण करते है। जल पृथ्वी में तीन विभिन्न अवस्थाओं में रहता है।

ठोस (बर्फ½ तरल ;जलद्ध गैस (भाप½

जल का ठोस रूप बर्फ के रूप में पर्वत की चोटियों एवं उत्तरी ध्रुव के समीप ठंडे स्थान पर होता है। एवं यही ठोस बर्फ तापक्रम पाकर पिघलकर तरल (liquid½ के रूप में पृथ्वी पर नदी, नाले, पौखर, तालाब, समुद्ध एवं पृथ्वी के भीतर समाहित होता है। थोड़ा अधिक तापक्रम पाकर यही तरल ०व वाष्पीकृत होकर वायुमण्डल में भाप के रूप में एवं आकाश में बादल के रूप में रहता है। परन्तु विशेष बात इस जल की यह है कि यह जल का अणु "H2O" विभिन्न अवस्थाओं में भी अपना अस्तित्व नहीं खोता है। "H2O" सदैव H2O ही बना रहता है।

किसी भी पदार्थ की अम्लीयता एवं क्षारीयता का मापदण्ड जल की उदासीनता से निर्धारित होता है। उदासीन जल की ph-7 होती है। यदि कोई भी पदार्थ अथवा घोल का ph-7 से कम है तो वह पदार्थ अम्लीय होता है व घोल का ph-7 से अधिक है तो वह घोल क्षारीय कहलाता है।

6.4 जल चिकित्सा का इतिहास –

विश्व की पुरानी सभ्यताओं "भारत, चीन, मिश्र, यूनान" में जल द्वारा चिकित्सा की जाती थी। प्राचीनता ग्रन्थों वेदों, श्रुतियों में जल चिकित्सा एक जल की महत्ता के परोक्ष प्रमाण उपलब्ध है। ऋग्वेद, अर्थवेद, अजुर्वेद, मनुस्मृति, अष्टांग संग्रह, आयुर्वेद में परोक्ष रूप से जल का महत्व एवं औषधिक गुण के विषय में वर्णन है।

ऋग्वेद में परमपिता परमेश्वर आदेश देते हैं – जल से अभिसिंचन करो, उपसिंचन करो क्योकि यह सर्वोत्तम औषधि है, इसके प्रयोग मात्र से जीवन सुखमय और शान्तिमय हो जाता है तथा शरीरन्तर्गत अग्नि तीव्र होकर अरोग्य होकर प्रदान करती है। जल ही औषधि है। जल में रोगनाशक एवं अमर बना देने की अभूतपूर्व शक्ति छिपी है।

आप इद्वा उभेषजीरापो अमीव चातनीः ।
आपस सर्वस्व भेषवो स्तास्तु क्रणवन्तु भेषजः ।।

ऋग्वेद जल ही परम् औषधि है। रोगों को नाश करने वाला जल ही है। अतएव यह जल तुम्हारा भी असाध्य रोग दूर करे। ऋग्वेद में ही अन्येत्र वर्णन है– हे जल! हमको सुख और आनन्द दे, इतना ही नहीं इसके योग के लिए हमें बल, आयु और दृढता दे। जिस प्रकार वात्सल्य प्रेम व स्नेह प्लालित्र माताएं, दुधमुंहे शिशु को मीठे स्वरों में गा.गा. कर स्तन से दूध पिलाती है, उसी प्रकार हे जल! हम जीवों को तू अपना मंगल व कल्याणकारी रस पान कराओ। तुम हमारे समस्त विकारों का नाश करो तथा योग्य सन्तान देने में समर्थ बनाओ।

अथर्ववेद में जल की महिमा एक औषधिय गुण के विषय में वर्णन है– जल ही परम औषधि है। रोगों का नाश करने वाला जल ही है। अतएव यह जल तुम्हारा भी असाध्य रोग दूर करे।

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीव चातनीः।
आपो विश्वस्य भेष जीस्तास्त्वा मुण्चन्तु क्षैत्रियात।।

(अथर्ववेद 3/2/7/5द्ध)

अथर्ववेद की चर्चा के अनुसार –

अपस्वन्तरम मृतमासु भेषजम।

अर्थात जल ही अमृत है, जल ही औषधि है।

ऋग्वेद मे ही एक जगह वर्णन है–

हे परमेश्वर अन्नादिक पदार्थों तथा मनुष्यों के रक्षा करने वाले रोगों को औषधिक जल के लिए हम तुमसे याचना करते है।

मनुस्मृति में श्लोक है–

अ(िर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।
धानयोभ्यां भूतात्मा बुद्धि ज्ञानेन शुध्यति।। (मनु. 5/109)

अर्थात जल शरीर को शुद्ध करता है, सत्य मन को, तप आत्मा को तथा ज्ञान बुद्धि को शुद्ध करता है।

"अमृतं आपः"

अर्थात अमृत देने वाला जल ही है।

भगवद्गीता में भी वर्णन है–

अष्टांग संग्रह "प्रसिद्धि आयुर्वेदिक ग्रन्थ" में भी जल के विषय में लिखा है। जिसका भावार्थ इस प्रकार है–

पीने योग्य जल समस्त प्राणियों ;नभ चर, थल चर, जल चरद्ध का प्राण है। समस्त संसार जलमय है, अतः जल का कितना भी निषेध क्यों न किया जाए, फिर भी पूर्णतः जल पान का निषेध नहीं किया जा सकता है क्योंकि जल के अभाव में मुखशोष तथा शिथिलता इत्यादि उप०व शुरू हो जाते है। जल की सर्वथा परित्याग करने से मृत्यु भी हो जाती है। जल स्वस्थ तथा अस्वस्थ किसी भी प्राणी के लिए अनिवार्य तत्व है अतः इसके बिना निर्वाह होना दुःख सम्भव है।

"जल ही जीवनम्।"

अर्थात जल ही जीवन है।

ठंडे देशों मे जल चिकित्सा का प्रयोग भाप स्नान (slem bath) के रूप में किया जा रहा है। क्योंकि इन स्थानों पर गर्मी के अभाव में शरीर से विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में नहीं निकल पाता इसलिए वहां पर शरीर से पसीने को भाप के माध्यम से बाहर निकाला जाता है। ये विभिन्न बाथ अलग–2 देशों के नाम से अलग–2 बाथ का नाम प्रसिद्ध हो गया है। रोम में रोमन बाथ, तुर्की में टर्कीश बाथ, रूस में रशिया बाथ के नाम से जाना जाता है। सावना बाथ फिनलैण्ड में बहुत ही प्रसिद्ध है। विकसित देशों में तो ये बाथ हेल्थ क्लबों में खूब प्रचलित है। हिप्पोक्रट्स आधुनिक चिकित्सा पितामह ने भी जल चिकित्सा के प्रयोग पर बल दिया है।

जल चिकित्सा को पश्चिमी देशों में एक साधारण किसान प्रिस्निज ने प्रारम्भ किया। प्रिस्निज को जल चिकित्सा का प्रवर्तक माना जाता है। लुई–कुने ने भी जल चिकित्सा को विभिन्न साधनों में विकसित किया। आजकल विभिन्न जल चिकित्सा विधियों की खोज का श्रेय लुई कुने को ही माना जाता है लुई कुने द्वारा लिखी पुस्तक न्यू साइनस आफ हिलिंग में विभिन्न जल चिकित्सा विधियों का स्पष्ट वर्णन है। जर्मनी में जल चिकित्सा की विभिन्न विधियों पर वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया। हिप्पोक्रेट्स ने जल के विभिन्न चिकित्सीय प्रयोग अपने शिष्यों के सामने रखे। अब भी इनके अनुयायी जल का विभिन्न रूप में चिकित्सीय प्रयोग करते है। जैसे–बर्फ की थैली द्वारा सेंक, स्पंज बाथ, गरम सेंक आदि–2.....

6.5 पेय जल का महत्व एवं चिकित्सा

वायु के पश्चात जीने की मूलभूत आवश्यकताओं में जल का स्थान आता है। जल और वायु का जीवन प्रदान करने में सीधा काम है। जलवायु का शु(होना जीने की प्राथमिकता है। हमारे शरीर में जल की मात्रा 2/3 भाग है। शरीर को स्वस्थ बनाए रखने एवं चिकित्सा के लिए जल को आवश्यक है इसके विषय में चर्चा क्रमब(करेंगे।

(i) क्योंकि हमारे शरीर मे 2/3 भाग जल है। इसलिए जल का बाह्य एवं भीतरी प्रयोग शरीर को शीघ्रता से स्वस्थ करता है। जल शरीर में शीघ्रता से रक्त द्वारा अवशोषित होकर शरीर के अंगों, ऊतकों एवं कोशिकाओं में स्वांगीकृत होकर शीघ्रता से अन्य जल के अणुओं को प्रतिस्थापित कर शरीर से बाहर विजातीय पदार्थों को होकर बाहर निकलता है।

जलपीना रक्त में अवशोषणस्वांगीकरणप्रतिस्थापनरक्त में प्रवेशमल–मूत्र पसीने द्वारा उत्सर्जन

(ii) मुख द्वारा ग्रहण किये गये एवं पसीने मल, मूत्र द्वारा निष्कासित किये गये जल की रासायनिक संरचना बहुत बडा अंतर होता है। मूत्र, मल पसीने एवं अन्य मार्गों

द्वारा शरीर से उत्सर्जित जल में हानिकारक विषैले पदार्थ अमोनिया (NH4), यूरिया, एसिड, क्रेटिनाइन, फास्फेट, लवण आदि होते है। इस प्रकार जल पीने से शरीर की शुि(भी होती है एवं स्वस्थ भी होता है।

(iii) मुख द्वारा पीये गये जल लगभग सवा तीन लीटर जल () जल का, लीटर मूत्र द्वारा, 1200मि.ली. पसीने एवं वाष्प द्वारा, 300मि.ली. पखाने से उत्सर्जित होता है। सर्दी गरमी के मौसम के अनुसार ये उत्सर्जित मात्राएं बदलती रहती है।

(iv) शरीर में जल की कुल मात्रा 2/3 होती है। इसमें 83% रक्त में, 22% हड्डियों में होता है। मस्तिष्क एवं मांस पेशियों में लगभग 75% जल ही होता है। रक्त में जल की मात्रा लगभग 92% होती है।

(v) शरीर के लिए जल से तरल कुछ भी नहीं है। जल हमारे शरीर में जाकर बहुत तेजी से शरीर मे उपस्थित जल को प्रतिस्थापित कर दूषित पदार्थों में शरीर से बाहर निकालता है।इस पीये हुए जल की कुछ मात्रा आतों के मल को भी नम बनाए रखती है। इससे कब्ज नहीं होती। प्रातः काल पीया गया 1 से लीटर पानी इसी दृष्टि से स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हितकारी है।

(vi) बहुत से रोग कब्ज़, मूत्र संक्रमण, शरीर से बदबू आना, अजीर्णता, शरीर में खुश्की तो जल के अभाव के कारण ही होते है। जबकि जल के सामान्य प्रयोग से हजारों रोग सहज ठीक हो जाते है। गर्मियों में जल अधिक पीना चाहिए। गर्भअवस्था एवं दुग्ध पिलाने वाली माताओं को भी जल खूब पीना चाहिए।

(vii) सामान्य व्यक्ति को मौसमानुसार एवं प्रकृति के अनुसार 3 से 5 लीटर जल पीना चाहिए। शरीर में पीया गया जल 40% मूत्र द्वारा, 35% पसीने द्वारा, 20% श्वसन द्वारा, 3% शौच द्वारा आंसू, नसिका, थूक द्वारा भी जल बाहर निकलता है। इस प्रकार कुल पीये गये जल का 98% भाग विजातीय ०व्यों को शरीर से बाहर लेकर निकलता है।

(viii) हमारे शरीर का लगभग 33 से 35% जल खाने के द्वारा एवं 60 से 65% जल पीने के द्वारा प्राप्त होता है। 3 से 5% जल की मात्रा का प्रबंधन स्वंय शरीर करता है।

(ix) जल का कार्य हमारे शरीर को ताप नियंत्रक, प्रेषक पदार्थों का वाहक, विभिन्न उपपचयी क्रियाओं (Metabolism) का संचालन करना है। शरीर की रासायनिक क्रियाओं द्वारा अवशेष भी जल के द्वारा ही शरीर से बाहर निकाले जाते है।

(x) जल की प्यास के समय शरीर को जीने वाले जल की ही आवश्यकता होती है। जल के स्थान पर कार्बोनेटिड कोल्ड ड्रिंक्स, मीठे अथवा नमकीन पेय पीने से आंतों को परोक्ष रूप से हानि पहुंचती है साथ में शरीर में जैव रासायनिक संतुलन (Metabolic balance) भी बिगडा है। सादे जल से उत्तम कोई भी पेय पदार्थ नहीं है।

Water is only cold drink for wise mash.

(xi) कम पानी पीने से वृक्कों (Kidneys) पर दुष्प्रभाव पड़ता है। विजातीय द्रव्यों को गुर्दे द्वारा शरीर से छानने .....जोर लगाना पड़ता है। सूजल अथवा गुर्दे फेलिया

(xii) भोजन के बाद पानी नहीं चाहिए। पाचक रस ;पाचन अग्निद्ध जल द्वारा शीत होकर अजीर्ण, कब्ज, बदहब्मी, एसिडिटी आदि रोगों को जनम देती है। ठंडा पानी अथवा शीतल पेय तो भोजन के बाद लेने से भयंकर रोगों को जनम देते है।

(xiii) कम पानी पीने से गुर्दे की खराबी, पथरी, रक्तामलता, कब्ज, बवासीर, खुश्की, पित्त के रोग होने लगते हैं। अधिक पानी पीने से भी रोग होते है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि जल की मात्रा पीने में कम नहीं होनी चाहिए परन्तु बहुत अधिक भी नहीं होनी चाहिए। सामान्यतः एक व्यक्ति को अपनी आयु, आवश्यकता एवं प्रकृति के अनुसार 3 से 5 लीटर पानी पीना चाहिए। यह पानी औषधि का कार्य करता है।

6.6 जल के चिकित्सा साधन

जल की चिकित्सा में प्रयोग विभिन्न साधनों के माध्यम से किया जा रहा है। एनिमा, रब ....., ठंडा गरम सेंक, रीढ स्नान, गरम पाद स्नान, ठंडी जल चिकित्सा, मेहन स्नान, विभिन्न अंगों की पट्टी लपेट, पूर्ण–गीली चादर लपेट, ठंडी पानी की पट्टियां, गरम–ठंडा कटि स्नान, नेत्र प्रक्षालन, कुंजल, सूर्य किरण–जल चिकित्सा, बाधी क्रिया, धारा पात स्नान, पूर्ण टब स्नान, जल नेती आदि–आदि साधनों के माध्यम से चिकित्सा कर शरीर को निरोगी बनाया जाता है। इन साधनों को सरल बनाकर अध्ययन करने के लिए निम्न भागों में बांटकर वर्णन करेंगे –

6.6.1 ठंडे जल द्वारा चिकित्सा के लाभ एवं सावधानियां–

गरम जल की अपेक्षा

गरम जल की अपेक्षा ठंडा जल शरीर के लिए अधिक लाभदायक है। ठंडे स्थान पर रहने वाले लोगों का स्वास्थ्य गरम स्थान पर रहने वाले व्यक्तियों का अच्छा होता है। ठंडे स्थान पर रहने से लाल रक्ताणु सुप्तावस्था में रहते है। एवं शीघ्र ही क्रियाशील भी हो जाते है। ठंडे स्थान पर श्वास की गति खुलकर चलती है। इस लम्बे गहरे सांस से विजातीय पदार्थों का दहन शीघ्र होता है। नये कोषों उत्तकों का निर्माण भी सहज होने लगता है। इसी लम्बे गहरे सांस के कारण शरीर को ऑक्सीजन भरपूर मात्रा में प्राप्त होती है। इसके विपरीत शरीर से कार्बन डाइ ऑक्साईड तेजी से बाहर फेंकी जाती है। ठंडे जल के स्थान से रक्त की क्षारीयता बढती है एवं अम्लीयता कम होती है। पाचन क्रिया सामान्य होकर शरीर के अन्य अंग भी लाभान्वित होते है। ठंडे जल के स्नान व ठंडे स्थान पर रहने से निरोगी रहना सरल हो जाता है।

ठंडे स्थान पर संक्रमण का खतरा सबसे कम होता है क्योंकि सामान्यतः रोगाणुओं को पनपने एवं इनकी एन्जाइमेटिक क्रिया के लिए सुलभ तापक्रम 25 सै. से 37 सै. तक होता है। जबकि ठंडे स्थान का तापक्रम इससे कम होता है। ठंडे जल के इन्हीं गुणों को ध्यान में रखते हुए बहुत से प्राकृतिक चिकित्सा साधनों को विकसित किया गया है।

6.6.2 गरम जल द्वारा चिकित्सा के लाभ एवं सावधानियां

यह सत्य है कि ठंडे जल चिकित्सा के लाभ अधिक है परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा मे गरम जल चिकित्सा एवं वाष्प ;भापद्ध द्वारा चिकित्सा के भी अनन्य लाभ है। गरम द्वारा होने वाले कुछ लाभ एवं सावधानियां का वर्णन यहां पर किया जा रहा है।

(i) गरम जल उपचार/वाष्प देने से पूर्व रोगी को गुनगुना अथवा सामान्य ताप का पानी अवश्य पिलाना चाहिए। क्योंकि शरीर से तेजी से पसीने द्वारा पानी का निष्कासन होता है। कमजोर रोगी को नीबूं, पानी व शहद पिलाया जा सकता है। मधुमेह के रोगी मे ऐसा न करें।

(ii) गरम उपचार के समय हवा पंखे आदि नहीं चलनी चाहिए। शरीर पर वस्त्र न हों।

(iii) शरीर पर किसी भी गरम उपचार के समय सर को गीला कर ठंडे कपडें से ढक देना चाहिए जिससे कि गर्मी मस्तिष्क ओर न बढे।

(iv) गरम टब स्नान, गरम पाद स्नान, भाप स्नान के पश्चात ठंडे पानी से स्नान ;फलस्वरूपद्ध लेना चाहिए। ठंडा स्पंज बाथ भी लिया जा सकता है।

(v) गरम अथवा ठंडा उपचार खाली पेट लें। 45 मिनट पश्चात कुछ तरल पदार्थ फलों का रस, सूप, नीबु+पानी+शहद लिया जा सकता है। अथवा 2 घण्टे पश्चात ठोस आहार ले सकते है।

(vi) उपचार खाली पेट अथवा 4 घण्टे भोजन के पश्चात लिया जा सकता है।

(vii) गरम अथवा ठंडा उपचार अधिक देर तक नहीं लेना चाहिए। रक्त में अम्लीयता बढने लगती है। रक्त का क्षारत्व कम होने लगता है। हिमोग्लोबिन कणों की कमी होने की सम्भावना बढ जाती है। फास्फेट की मात्रा भी बढ जाती है।

(viii) गरम जल के अधिक उपचार से रक्त–पित्त बढने की सम्भावना बढ जाती है। क्योंकि यकृत एवं पित्ताशय से स्त्राव बढ जाता है।

(ix) गरम उपचार के समय रक्त प्रवाह त्वचा की ओर होने लगता है। ह्रदय का कार्य बढ जाता है। पसीना निकलने के कारण शरीर का ताप कम होने लगता है। ह्रदय पर ठंडा गीला कपडा रखना चाहिए।

(x) मांस पेशियों पर गरम उपचार से उत्तेजना बढ जाती है। स्नायु संस्भान की भी उत्तेजना बढने लगती है। इस उत्तेजना के कारण शरीर को आराम , सुख एवं हल्कापन अनुभव होता है। अधिक देर गरम जल के उपचार थकान, सुस्ती एवं कमजोरी महसूस होने लगती है। प्रारम्भ में मांस पेशियां सिकुड़ती है बाद में फैलती है।

(xi) अधिक गरम उपचार ;देर तक अथवा बार बारद्ध से शरीर का तापक्रम कम होने लगती है। ऑक्सीजल कम होने के कारण चपापचय क्रिया (Metabolism) धीमी होने लगती है।

(xii) गरम जल के उपचार के पश्चात कुछ गरम जल चिकित्सा साधनों के पश्चात ठंडे जल स्नान का महत्व है। इससे मांसपेशियों में शक्ति प्राप्त होती है। एवं शरीर के अंगो, यकृत, गुर्दे, आंते, मांसपेशियों एवं स्नायुओं की स्वस्थ कार्य क्षमता बढने लगती है।

6.6.3 समशीतोष्ण जल उपचार के लाभ–

समशीतोष्ण जल का ताप 90 से 1000 F होता है यह ताप लगभग शरीर के तापक्रम से 5–100 F कम अथवा अधिक होता है। समशीतोष्ण जल का प्रभाव शरीर की उपापचय को सामान्य कर स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसे सशक्त एवं कमजोर रोगी सहजता से ले सकते है।

समशीतोष्ण जल का प्रभाव मांसपेशियों के तनाव को कम करता है। ह्रदय गति को धीमा करता है। मांसपेशियों एवं स्नायुओं के तनाव को कम करता है। त्वचा की उत्तेजना, जलन एवं बेचैनी मिटाकर सामान्य स्वस्थ बनाता है।

6.6.4 ठंडा गरम जल अथवा भाप से उपचार के लाभ

शरीर के किसी भी अंग पर जब ठंडे जल द्वारा उपचार दिया जाता है तो वहां की मांसपेशियां, रक्त वाहिनियां स्नायु, उत्तक एवं कोष में सकुंचन होता है। इन अंगों की तरफ रक्त संचार अधिक बढने लगता है। इसके पश्चात उस अंग पर जब गरम जल द्वारा सेंक दिया जाता है। तो वहां की मांसपेशियां, रक्तवाहिनियां, स्नायु, उत्तक एवं कोष शिथिल होते है। वहां से ठंडे द्वारा संचित द्रव्य गरम सेंक पर तेजी से प्रवाहित होने लगते है। इस बीच उस अंग को बिन पोषक तत्वों ऑक्सीजन एवं अन्य पदार्थों की आवश्यता की शर्त होती है। विजातीय द्रव्य ठंडा ताप पाकर एकत्र होने लगते है। गरम सेंक पाकर वहां से विजातीय पदार्थ कार्बन डाइ ऑक्साइड एवं अन्य उत्सर्जी पदार्थ तेजी से शरीर से बाहर की ओर निष्काषित होते है। इस गरम ठंडे सेंक द्वारा अंगों का शिथिलन एक संकुचन (Relaxation and dialation) अंग में पोषकता प्राप्त कर एवं विजातीय पदार्थों का निष्कासन कर नवजीवन प्राप्त करते है। इस प्रकार खराब होते अंगों को पुर्नजीवन प्राप्त होता है।

6.7 प्राकृतिक चिकित्सा उपचार विधियां, लाभ एवं सावधानियां

(i) ठंडा कटि स्नान (cold-Hipbath) – पेडू के भाग को रगड़कर अथवा गरम करके एक विशेष प्रकार के टब मे बैठाया जाता है। टब मे ठंडा जल भरा होता है। 10 से 20 मिनट तक इस टब में बैठकर पेडू ;नाभी के नीचे के हिस्से को द्ध अर्धचन्द्रकार स्थिति में रगड़ते है। जल का तापक्रम 450 से 650 F तक रोगी की स्थिति अनुसार होना चाहिए। पानी कितना ठंडा होता है कटि स्नान का समय उतना कम होता है। टब स्नान पूर्ण होने के पश्चात सूखे तौलिये द्वारा पेडू को घर्षण कर गर्मी प्रदान की जाती है।

सावधानियां – पैर किसी पटरी पर रखें हों। पैरों को नीचे से गीला न होने दें। पैरों पर गरम कपड़ा ड़ालकर रखे। रोगी की शक्ति सामर्थ्य एवं रोग के अनुसार टब में जल का तापक्रम निर्धारित किया जाता है। पेडू को रगतें रहें। टब में बैठने से पूर्व व टब से

उठने के पश्चात पेडू को गरम अवश्य करें। गरम करने के लिए सूखे रूऐंदार तौलिये / गरम बोतल / गरम सेंक का प्रयोग करें। श्वास रोग दमा, खांसी, श्वास नली संक्रमण, साइटिका, तेज कमर दर्द, एपेण्डोसाइटिस, व तीव्र दर्दों में ठण्डे टब स्नान का प्रयोग न करें।

लाभ – कब्ज, आंत संक्रमण, पाचन तंत्र के रोग, हूर्निनपुंसकता, अलसर, एसिडिटी, वायु–फुला, मुंह के छाले, पाचन तंत्र में अल्सर में विशेष लाभकारी है। शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा बढती है।

फेफडे व ह्रदय को बल मिलता है। पेट की गर्मी शांत होनी है।

(ii) गरम कटि स्नान (hot hip bath) – सिर को गीला कर ठंडा कपड़ा रखते है। कटि स्नान टब में ठंडे पानी के स्थान पर गरम पानी ;110 से 1200 F ताप क्रम तकद्ध भर लेते है एवं इस टब में बैठकर भीगे तौलिये से पेडू स्नान को अच्छी प्रकार रगड़ते है। 5 से 10 मिनट तक इस क्रिया को सामर्थ्य अनुसार किया जा सकता है। कमर दर्द, सियाटिका मोटापा, प्रोस्टेट प्रदाह, बहुमुत्र, ऐपेन्डोसाइटिस, अनिडा में विशेष लाभकारी है।

(iii) गरम ठंडा कटि स्नान (Hot-cold hip bath) – एक .....ठंडे पानी .....टब में बैठते है व दूसरी बार गरम टब वाले पानी में बैठते है। 5 मिनट गरम 3 मिनट ठंडा, इस क्रम को 3 बार दोहरातें हैं। सर को गीला कर ठंडा कपडा लपेट देते है।

लाभ – कब्ज, एसिडिटी, आंत, संक्रमण, सूजन, लिवर के रोग, पीलिया, मधुमेह, किडनी दर्द, जीठ दर्द, सिमाटिका, अजीर्ण, कोलाइटिस, गर्भाशय के रोग, पैरों का दर्द, प्रोस्टेट का आदि रोगों में लाभ।

(iv) रीढ स्नान (Spinal bath) – नाव की आकृति के टब में रीढ के भाग को जल में डुबोकर रखना रीढ स्नान कहलाता है। रोग के अनुसार ठंडे अथवा गरम जल का प्रयोग किया जा सकता है। जेठ रीढ स्नान (Spinal sprey) में जल की धार मोटर पम्प द्वारा रीढ पर दबाव से साथ पडती है। जैसे– बेचैनी, ब्लड़ प्रेशर, उच्च रक्त चाप, डिप्रेशन, तनाव, स्मरण शक्ति, चिंता, भय, स्नायुदोर्बल्य, अपच, अजीर्ण, एवं रीढ दर्द में लाभकारी है।

(v) पाद स्नान (foot bath) गरम पाद स्नान (hot foot bath) – सर को गीला कर ठंडा कपडा रखते है। निर्वस्तु होकर गरम जल पीकर गरम जल ;130 से 1400 F ताप तकद्ध से भरी बाल्टी में पैरों घुटनों स नीचे के भाग तक डुबो देते है। एक गरम चादर अथवा कम्बल ओढकर 10 से 15 मिनट तक बैठे जाते हैं।

खुलकर पसीना आता हैं। इसी पसीने के साथ बहुत से रोगों में लाभ मिलता हैं। झुकाम, दमा, जोडों का दर्द, गठिया, सरवाईकल स्पोन्डियोलाइटिस, आस्टियों आर्थाराइटिस, अनिडा, सुन्नपन्न, सिमाटिका, अंगो का प्रदाह एवं संक्रमण (Inflamation and infection), चर्म रोग, तनाव, थकान आदि रोगों में लाभकारी है।

ठंडा पाद स्नान (Cold foot bath) – बाल्टी मे ठंडा पानी ;32 से 500F द्ध शरीर की क्षमता और रोग के अनुसार लेकर उसमें 5 से 10 मिनट तक पैर डालते है। किसी नदी, तालाब, समुद्र, झील अथवा झरने के ठंडे पानी में भी घुटनों से नीचे तक पैर डाल सकते है। पैरों की मांसपेशियों की चोट, मोच, सूजन, थकान, सर दर्द में विशेष लाभकारी है।

क्रमिक गरम ठंडा पाद स्नान (Alternate hot cold foot bath) – 10 से 20 सै. ठंडे व 10 से 20 सै. गरम पानी में पैर डालते है। इस क्रिया को 3 से 5 बार दोहराते है। सर दर्द, खांसी, नबला झुकाम, उच्च रक्त चाप, पैर दर्द, वेरिकोज वेन, थकान, अनिडा रोगों में लाभकारी है।

गरम घुटना सेंक (Hot cold knee bath) – एक बाल्टी में पैरों को रखकर क्रम से 20–30 बार धारा प्रवाह पानी गरम एवं ठंडे पानी की धार घुटनों पर डालें। घुटनों का दर्द, सूजन, पिण्डली का दर्द, अनिडा, सुन्नपन्न में ।

(vi) हस्त एवं पाद स्नान (Arm and foot bath) गरम हस्त स्नान (Hot arm bath) – स्टूल पर बैठकर हस्त स्नान टब में गरम पानी भरकर कोहनी से ऊपरी भाग तक की हाथों का हिस्सा इस टब में डालतें है। 12 से 18 मिनट तक हाथों को इस गरम पानी ;40 से 500 cद्ध के तापक्रम पर रखते है। गरम पानी पीकर सर पर गीला कपड़ा रखकर हस्त स्नान लेना चाहिए। खांसी, जगला, झुकाम, सर्दी के रोग, श्वास–एलर्जी, दमा, सर दर्द, अनिडा, थकान में लाभकारी है। गरम टब से हाथों को निकालने के पश्चात ठंडे कपडे से स्पंज करें अथवा ठंडे पानी में हाथ डालें।

गरम पाद एवं हस्त स्नान (Hot foot and arm bath) – गरम पानी पिलाकर सर पर ठंडा गीला कपड़ा रखते है। दोनों हाथों एवं पैरों को गरम हाथ एवं पाद स्नान टब में डाल पानी ;40 से 500 cद्ध में 15 से 20 मिनट तक रखते है। शरीर को नग्न स्थिति में गरम कम्बल अथवा चादर से ढक्कर रखते है। सर दर्द, दमा, खांसी, सिनोसाइटिस, बुखार, आदि रक्तचाप में लाभ करती है।

(vii) पूर्ण टब गरम स्नान (Hot full Immersion bath) – सिर को भी ठंडे पानी से धोकर ठंडा गीला कपडा लपेटें। तत्पश्चात गरम पानी से भरे टब में धीरे से लेट जाएं। तापक्रम 370 c से धीरे–2 गरम जल मिलाकर बढाते रहें। इस पानी में 50 ग्राम इप्सम साल्ट ;MgSo47H2oद्ध मिलाएं। 10 से 20 मिनट के पश्चात ठंडे पानी से स्नान कर लें। शरीर से विजातीय द्रव्य ;यूरिया, यूरिक एसिड, अमोनिया, तैलीय पदार्थद्ध निष्कासित होते है। जोडों में दर्द, सूजन, अनिडा, बलोदर, सधिवात, आष्टियों–आर्थाराइटिस, शरीर दर्द, थकान में लाभकारी है। ह्रदय रोगी, कमजोर एवं उच्च रक्त से सम्बन्धित रोगी सावधानी से यह स्नान ले।

(viii) समशीतोष्ण पूर्ण टब स्नान (Neutral full tub immersion bath) – शरीर के ताप से 50 c कम अथवा 50 c अधिक ताप तक जल में पूर्ण टब स्नान 15 से 20 मिनट तक लेना एवं जल से शरीर को रगड़ना स्वास्थ हितकर है। संधिवात सूजन, खुजजी, स्पेटाइसिस, जलोदर, यकृत, गुर्दे एवं फेफडों के रोगों में लाभकारी है। जीव की शक्ति बढती है।

(ix) शीतल पूर्ण टब स्नान (Cold full tab bath) – 10 से 200 c जल के ताप पर रोगी को 3 से 5 मिनट तक टब में लिटा दें। जल के भीतर ही शरीर की रगड़कर मालिश करते है। तत्पश्चात शरीर को रगड़कर गरम कर लें एवं वस्तु पहनकर हवा से बचें। बुखार, गर्मी के रोग, पित्त दोष, जलन, उच्च रक्त चाप, सोराइसिस, सूर्य जलन ;sun burnद्ध, चोट के दर्दों में विशेष लाभकारी है।

(x) क्रमिक पूर्ण टब गरम ठंडा स्नान (Alternate hot cold full immersion) – 5 मिनट तक रोगी को गरम पानी के टब में लिटा दें। पानी का ताप 370 c से धीरे–2 बढाकर 450 c तक कर दे। 5 मिनट पश्चात ठंडे पानी का शावर 2 मिनट तक लगातार कराऐं। इस क्रम में 3 बार दोहराएं। श्वास, दमा, स्नायु–दौर्वल्य में लाभकारी है।

(xi) जलान्तर्गत जलीय मसाज (Under water hydro massage) – पूर्ण टब स्नान में भीतर ही शरीर को रगड़कर मला जाता है। यह मालिश ठंडे, गरम अथवा समशीतोष्ण नाम पर की जाती है। जलीय मालिश से स्नायु तंत्र जाग्रत होता है। शरीर की चपापचय क्रिया ;Metabolismद्ध सामान्य होती है। मल निष्कासन क्रिया (Detoxitication) में सहायता मिलती है। रक्त संचार सामान्य होता है। त्वचा रोग

ठीक होते है। जोडों का दर्द, एवं शरीर दर्द मे लाभकारी है। मांसपेशियों एवं स्नायु को आराम मिलता हैं। रोग प्रतिरोधकता क्षमता (Immunity) बढती है। कब्ज, अजीर्ण, गैस एवं पाचन क्रिया सामान्य होती है।

(xii) भंवर कूप स्नान (Whirlpool bath) – एक विशिष्ट प्रकार का टब है, जिसमें चारों ओर से जल तेजी से टब में घूमता है। मोटर पंच द्वारा तेज दबाव से पानी घुमता हैं। शरीर पर जल के भीतर ही तेजी से हलचल वाली मालिश होने लगती है। पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र, गुर्दे के रोग, शरीर दर्द, गठिया, आलस्य, शिथिलिता, त्वचा रोग, फेफडों के रोगों में लाभकारी हैं। मोटापा आदि उक्त रक्त चाप में भी लाभकारी है।

(xiii) वाष्प स्नान (Stem bath) – एक विशेष लकडी अथवा फाइबर के बने बॉक्स के भीतर गर्दन बाहर निकाल कर सिर ठंडा व गीला करके, पानी को पीकर ;रोगी को निर्वस्त्रद्ध बैठ जाते है। एक ओर से छिद्र द्वारा इसमें भाप प्रवेश करती है। यह जल वाष्प रोग, लक्षणों के अनुसार औषधि युक्त बना सकते है। स्टीम बाथ बॉक्स के अभाव में कुर्सी पर कम्बल अथवा पन्नी को लपेटकर भाप स्नान दिया जा सकता हैं। 3 से 10 मिनट तक रोग अथवा रोगानुसार स्टीम बाथ ले सकते हैं। स्टीम बाथ के पश्चात 2 से 3 मिनट तक लगातार ठंडे शावर लें। गठिया, जोडों का दर्द, वात व्याधि, मोटापा, कमर दर्द, सर्वाइकल का दर्द, श्वास, दमा, खांसी, झुकाम, थकान, शरीर दर्द, मधुमेह, लिवर व गुर्दे के रोग में परोक्ष रूप से लाभकारी है। शरीर से विजातीय द्रवों का निष्कासन करने में स्टीम बाथ का अच्छा कार्य करता है। गुर्दे के रोग, सूजन, यूरिया एसिड, क्रिटनिन आदि को बढने से रोकने में लाभकारी है।

(xiv) स्थानीय वाष्प (Local stem) – वाष्प यंत्र की नली द्वारा किसी स्थानीय अंग पर लगातार 1 से मिनट तक सहन योग्य वाष्प दी जाती है। बीच–बीच में ठंडे कपडे द्वारा उस अंग को ठंडा किया जाता है पुनः इसी क्रम को क्रमशः 3 से 5 बार दोहराते है। स्थानीय वाष्प घुटना, कमर, पीठ, छाती, पेट, उदर, चेहरा, श्वास, तंत्र, गर्दन पर दी जा सकती है। स्थानीय वाष्प द्वारा उस अंग की कार्य शक्ति एवं जीवनी शक्ति बढती है।

(xv) स्पंज बाथ (Spang bath) – रोगी को निर्वस्त्र लिटाकर चादर अथवा कम्बल से ढक दें। व क्रमशः पैरों, हाथों, पीठ, छाती, पेट, गर्दन, चेहरा अन्त में सिर को क्रमशः तीन–तीन मिनट के लिए खूब अच्छी प्रकार से खुरदुरे मुलायम तौलिये सें रगड़े। आधा घण्टें पश्चात शीतल घर्षण स्नान द्वारा स्थानीय अंग को अच्छी प्रकार पौछकर स्थानीय गीली पट्टी लपेट दें।

(xvi) वाष्प श्वसन (Stem inhalation) – एक विशेष प्रकार के यंत्र द्वारा जल में अमृत धारा, ..., तुलसी पत्र, हल्दी, अथवा कपूर को डालकर गरम वाष्प को चेहरे पर लें व श्वास को अन्तःश्वसन (inhalation) द्वारा नासिका से फेफडे तक ले जाएं। इस श्वास के लेने व छोडने की प्रक्रिया को 5 से 10 मिनट तक करते रहें। इस यंत्र के अभाव में भगोने से भी भाप को लिया जा सकता है। सर पर एक तौलिया रखकर सावधानि से इस वाष्प स्नान का लाभ उठा सकते है।

फेफडों को सशक्त कर श्वास रोगों, खांसी, नजला, झुकाम, न्यूमानिया में लाभ पहुंचता है। चेहरे से भी विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर कान्तिमय सौन्दर्य प्राप्त होता हैं। टौंसिल, साइनोसाइटिस, दमा, खांसी, में लाभकारी है। मुहांसे, एक्ने, पिम्पल्स, नाक, कान व गले के रोगों में भी लाभ पहुंचता है।

(xviii) सावना बाथ (Savna bath) – सावना बाथ फिनलैड की खोज है वहां पर वातावरण का तापमान कम होने के कारण पसीना बदन से नहीं निकल पाता। फिनलैण्ड में यह स्थान बहुत प्रचलित है। एक विशेष प्रकार का बना बल्ब होता है जिसमें 4–5 व्यक्ति एक साथ बैठकर यह बाथ लेते है। आवश्यकतानुसार ताप एवं कक्ष का दाब नियंत्रित किया जा सकता है। असल में सावना बाथ कक्ष के भीतर उष्ण वायु जब वाष्प दोनों उपस्थित होते है। सावना बाथ से पूर्व ठंडा स्नान किया जाता है। शरीर को तौलिये से

सुखा लेते है। 1 या 2 गिलास गुनगुना पानी पीकर सावना बाथ में बैठते है। इस दौरान तौलिये से हल्का शुष्क घर्षण करते रहतें है। शरीर सामर्थ्य अनुसार 20 मिनट से 1 घण्टे तक सावना बाथ लिया जा सकता है। सावना बाथ मे उष्ण एवं शुष्क वायु का ताप एवं दाब होता है। इस बीच बहुत सा पसीना शरीर से निकलता है। इस पसीने के साथ–2 विजातीय द्रव्य भी बाहर निकलते है। सावना बाथ से पूर्व भी व पश्चात भी ठंडे जल से स्नान लेना आवश्यक है। यदि कमजोरी अनुभव करें तो नीबूं+पानी+शहद अथवा जूस अथवा सूप का सेंवन करें।

सावना बाथ रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है। मोटापा, मधुमेह, शिथिलता, आलस्य, सायटिका, सरवाइकल, पीठ दर्द, बदन दर्द, अर्थाराइटिस, जोडों का दर्द, संधिशूल, स्लिपडिस्क, श्वास, कास, दमा, सोटामसिस, एम्जीना, संक्रमण, दूर होते हैं। शरीर चपापचयी तंत्र (Metabolic system) एवं तंत्रिका तंत्र में संतुलन स्थापित होता है। एक बार सावना बाथ लेने से 500 gm तक वजन कम हो जाता है।

ह्रदय रोगीयों, चर्म रोगो में व उच्च रक्त चाप की स्थिति तथा कमजोरी में अथवा बाथ सावना बाथ न लें अथवा सावधानी पूर्वक सोना बाथ लें। सावला बाथ में व चिकित्सा में लिये गये स्टीम बाथ में अन्तर –

सावन बाथ	**स्टीम बाथ**
1. सावना बाथ में सर की ओर गर्मी पर ध्यान नहीं देते।	1. स्टीम बाथ में सर पर गर्मी न पहुंच सके इस बात का विशेष ध्यान रखते है।
2. सावना बाथ में सम्पूर्ण शरीर पर शुष्क भाप दी जाती है।	2. स्टीम बाथ में सर मुंह को छोडकर नीचे के शरीर के भाग पर स्टीम बाथ दी जाती है।
3. सावना बाथ में ऑक्सीजन कम प्राप्त होती है।	3. स्टीम बाथ में मुंह बाहर होने के कारण भरपूर ऑक्सीजन प्राप्त होती है।

c

(xviii) गीली चादर लपेट (Full body wet sheet lpack) – रोगी को एक गिलास गरम पानी पिलाकर एक कम्बल बिछाएं एवं इस पर एक सूती गीली चादर को बिछा दें। सर गीला करके गीली चादर से नंगे बदन को लपेटा जाता है। तत्पश्चात कम्बल को इसके ऊपर लपेट देते है। सर पर गीला तौलिया अवश्य रखें। शरीर से विजातीय द्रव्यों को निकालने मे यह गीली चादर लपेट अच्छी तरह कार्य करती है। शरीर के अंगो विशेष रूप से यकृत, वृक्क, अग्नाशय, को लाभ पहुंचता है। इस कारण शरीर विषाक्तता को भी शरीर से निकालने मे सम्पूर्ण गीली चादर लपेट लाभकारी है।

(xix) ठंडे जल की पट्टियां – ठंडे पानी की पट्टियां शरीर के लिए अंग पर रखी जाती है वह अंग शक्ति प्राप्त कर सूजन एवं संक्रमण से बचता है। मोटे खद्दर के कपडें की चार तह बनाकर ठंडे पानी अथवा बर्फ पर रखकर यकृत, वृक्क, आमाशय, सिर, छाती, पेड, रीढ, आदि पर रखते है। शरीर के भीतरी अंगो को शक्ति प्राप्त होती है। ठंडे पट्टी रखने पर उस स्थान पर पहले तो रक्त एकत्र होता है, स्नायु मांसपेंशियां एवं नस नडियां सिकुडने लगती है। 10–15 मिनट पश्चात पट्टी हटाने से उन अंगो के विजातीय द्रव्य तेजी से बाहर की ओर निकलते है तथा अंग शक्ति प्राप्त करते है।

(xx) गीली पट्टी लपेट (Wet sheet pack) – आक्रोन अंग पर गीले सूति वस्तु की अंग संरचना के अनुसार पट्टी को लपेट देते है इसके ऊपर गरम कपडे की सूति पट्टी को लपेटा जाता है। एक से दो घण्टे तक यह लपेट दी जाती है। पेडू, छाती, कटि, घुटना, लम्वर हाथ, कन्धा, कलाई, आदि पर यह लपेट दी जाती है। जिन अंगो पर यह लपेट दी जाती है। उन अंगों को परोक्ष रूप से लाभ प्राप्त होता है। इन अंगो से विजातीय द्रव्य बाहर की ओर निष्कासित होता है।

पेडू की लपेट – कब्ज, गैस, एसिडिटी, वृक्क, कोलोनाइटिस, आंतो की सूजन मे लाभकारी है।

छाती की लपेट – फेफडों व श्वसन तंत्र में जमा बलगम बाहर निकलता है। ह्रदय रोग में भी लाभकारी है।

यकृत आमाशय लपेट – यकृत की क्रियाविधि सामान्य होती है। गैस जलन एसिडिटी में लाभकारी है। मधुमेह आमाशय वृण (Gastric ulcer) में लाभकारी है।

घुटने की लपेट – घुटने का दर्द व सूजन में लाभकारी है।

ग्रीवा लपेट – सरवाईकल स्पोन्डियोलाउटिस में लाभकारी है।

पैरों की लपेट – वेदीकोज वेन, पैरों की सूजन, पैरों का दर्द, कब्ज, गैस में लाभकारी है।

गीला बनियान लपेट – आधी–बाजु का बनियान पानी में गीलाकरके निचोडकर पहना दें उसके उपर गरम ऊनी कपड़ा उपर से ओढा दें। फेंफडों का बलगम पिघलकर निकलता है। एसीडिटी, गैस एवं ह्रदय रोग में लाभकारी है।

सर की गीली लपेट – बालों को गीला करके उसके ऊपर सूति कपडे की मुसलिम टोपी अथवा उसके ऊपर गरम टोपी पहन लें। सर दर्द, माइग्रेन, सायनुसाइटिस में लाभकारी है।

गीली जुर्दाब लपेट – सूती कपडे की तंग (Tight) जुर्राब गीली करके पहन लें। उसके ऊपर गरम अथवा ऊनी जुर्राब पहन लें। जूते आदि पहन कर घूम सकते है। एडी दर्द, पंजों का दर्द, पैरों की अंगुलियों के दर्द मे लाभकारी है। एडी फटना व पंजों की स्वच्छता (Redicure) में लाभकारी है।

(xxi) गरम ठंडा सेंक (Hot cold compress) – गरम ठंडे जल के प्रयोग का शरीर पर किस प्रकार से वैज्ञानिक लाभ पड़ता है इसके विषय मे इसी ईकाई में पूर्व वर्णन किया जा चुका है। यहां पर गरम ठंडा सेंक का वर्णन करेगें।

किसी भी स्थान का गरम ठंडा सेंक देने के लिए एक भगोने में जल को 70 से 900 c तक गरम करते है। इसमे एक तौलिया दोनो सिरो से तौलिये को पकडकर अच्छी प्रकार से निचोडते है। इस गरम जल की वाष्प सहित तौलिये को 3 मिनट के लिए उपचार किये जाने वाले अंग पर रखते है। तत्पश्चात एक ठंडा तौलिया इस अंग पर रखते है। यही क्रम 5 बार दोहराते है। कुछ विशेष ठंडा गरम सेंक के अंग स्थान एवं उनके लाभ के विषय में वर्णन किया जा रहा है। विधि अंगो की ठंडा गरम सेंक की समान है। यहां पर केवल लाभ का वर्णन करेंगे।

(i)पेडू की गरम ठंडा सेंक ;नाभी से नीचे) – कब्ज, गैस, बवासीर, आंतो की सूजन दर्द, पाचन तंत्र के रोग, यकृत एवं वृक्क रोग, भूख न लगना आदि में लाभकारी है।

(ii) सिर का गरम ठंडा सेंक ;माथा, गीवा व चेहराद्ध – सिर दर्द, अनिद्रा, स्मरण शक्ति नम, स्वाभाविक थकान एवं बेचैनी।

(iii) यकृत–आमाशय गरम ठंडा सेंक (नीचे की तीन पसलियों से नाभि तक) – यकृत दोष, अग्नाशय विकार, आमाशय विकार ठीक होते है। मधुमेह, रक्त की कमी, भूख की कमी, गैस, एसीडिटी में लाभकारी है।

(iv) वस्ति गरम ठंडा सेंक (सम्पूर्ण नितम्ब, कटि एवं वास्ति प्रदेश) – सिमाटिका, गर्भाशय विकार, प्रोस्टेट दर्द, बवासीर की गांठ, कटि का दर्द।

6.8 प्रश्नावली –

प्र. 1. जल का अर्थ एवं परिभाषा के सम्बन्ध में लिखो।

प्र. 2. जल चिकित्सा का क्या इतिहास है?

प्र. 3. पेय जल द्वारा किस प्रकार चिकित्सा सम्भव है? वर्णन करो।

प्र. 4. जल चिकित्सा के कोई पांच मुख्य साधनों की विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन करो।
प्र. 5. ठंडा व गरम जल का सेंक किस प्रकार लाभ पहुंचाता है?
प्र. 6. जल द्वारा कब्ज का निवारण किस प्रकार सम्भव है?

6.9 सहयोगी गंथ –

1. जल चिकित्सा – डॉ. नागेन्द्र नीरज
2. Nature cure - H.K. BAKHRU
3. वृहद् प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ. पी. सक्सेना
4. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. गंगा प्रस्ताद गौड़

इकाई : 7 – जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न पट्टीयां, यंत्र एवं सेक का प्रयोग

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.2.1 जल चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न पट्टियां

7.2.2 जल चिकित्सा में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न सेक

7.2.3 जल चिकित्सा में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न यंत्र

7.4 सारांश

7.5 बोधात्मक प्रश्न

7.6 संदर्भ ग्रंथ

7.1 प्रस्तावना

जल की उपयोगिता को कौन नहीं जानता। इसके बिना न तो शरीर का कोई अस्तित्व है। और न ही सृष्टि की ही कोई कल्पना कर सकता है शरीर के हर भाग में जल ही जल है हड्डियों में जल है चाहे वो कम ही क्यों न हो पूरे शरीर का 2/3 भार वनज का पानी होता है। शरीर की दिनचर्या में जल का सेवन करना तथा जल का निष्कासन करना दिन प्रतिदिन की क्रियाओं में सम्मिलित है। मानव ही नहीं अपितु सृष्टिकेहर प्राणी को इसकी आवश्यकता होती है। जन्म से लेकर आश्वरी दूवास तक शरीर में होने वाली रासायनिक क्रियाओं के लिए जल की बहुत बड़ी उपयोगिता है। जल के द्वारा ही उत्तकों का सृजन होता रहता है। रक्त, पित्त,पखाना, मूत्र इत्यादि का विसर्जन एवं पाचन रस तैयार करने का काम भी जल द्वारा ही सम्पन्न होता है। शरीर के आन्तरिक नस नाडियों एवं आंतों के चिपके से रोकने का काम भी जल ही करता है। शरीर की सभी कोशिकाओं में पोषक तत्व पहुंचाने का काम जल के द्वारा ही होता हैै जल की उचित मात्रा का सेवन हमें बहुत से रोगों से बचा लेता है। शरीर को रोगों से बचाने का सबसे बडा काम प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने का अर्थात्शरीर की सफाई जल के द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार हम इस अंक के अन्दर जल की विभिन्न पट्टिया एवंसेंक, इत्यादि का अध्ययन करने हेतु आगे चलते है।

7.2 उद्दे□य

इस इकाई का उद्देश्य निम्न बिन्दुओं का अध्ययन करना है –

1 जल चिकित्सा में किन पट्टियों का प्रयोग होता है।

2 जल चिकित्सा में प्रयोग किए जाने वाले यंत्रों (केवल नाम) का अध्ययन करेगें।

3 जल चिकित्सा में किन किन सेको का प्रयोग किया जाता है इसका अध्ययन भी इस इकाई में किया जाएगा।

7.2.1 जल चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न पट्टियां

जब भी शरीर में पंच तत्वों (प्राकृति) के असन्तुलन के कारण रोग उत्पन्न होते है तब हमेंउस असन्तुलन को ठीक करने हेतु हम जिन उपचार माध्यमों का उपयोग करते है वह उस तत्व की चिकित्सा कहलाती है, उदाहरण के लिए पृथ्वी तत्व की चिकित्सा के लिए मिट्टी तत्व का प्रयोग, अग्नि चिकित्सा के लिए सूर्य किरणों का प्रयोग, आकाश तत्व की चिकित्सा केलिए उपवास का प्रयोग तथा वायु तत्व की चिकित्सा के लिए उपवास का प्रयोग तथा वायु तत्व की चिकित्सा के लिए हम योगऔर प्राणायाम ने विभिन्न प्रयोग करते है। इन्हीं के साथ जल तत्व की कमी या अधिकता से उत्पन्न रोगों के लिए जिन–जिन पट्टी सेंक, स्नान और विभिन्न प्रकार के यंत्रों का चिकित्सा हेतु प्रयोग करते है।

जल चिकित्सा में प्रयोग होने वाली पट्टियों में हम केवल सूती वस्त्र का ही प्रयोग करते है। क्योंकि सूती कपड़े में पानी को अवशोषित कर धारण करके रखने की क्षमता होती है। इन पट्टियों का वर्गीकरण हम जिस भी अंग पर उसका प्रयोग करते है। उसी के अनुसार उसका नामकरण भी कर देते है। उदाहरण के लिए पेट की गीली पट्टी हाथ की गीली पट्टी छाती की गीली पट्टी इत्यादि। इसी वर्गीकरण में जल के अनुसार भी इसका वर्गीकरण किया जाता है। जैसे स्वभाव के शीतल जल की पट्टी गरम जल की पट्टी और सामान्य जल की पट्टी आइए हम अध्ययन करते है विभिन्न प्रकार की पट्टियां कौन कौन सी होती है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है जिस भी अंग विशेष का उपचार जल चिकित्सा द्वारा करना होता है। उसी अंग पर सूती कपड़े की पट्टी अंग के अनुसार (लम्बी व चौड़ी) ली जाती है। और उसे आवश्यकता अनुसार एवं रोग की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए जिस भी तापमान का जल प्रयोग करना होता है उसी तापमान क`जल में उसे भीगोकर आधा निचोड देना चाहिए।जब उस पट्टी को उस अंग विशेष पर इस प्रकार लपेटना चाहिए कि उसमें सलवट कम से कम आएन आवश्यकता से अधिक कसना चाहिए न ही पट्टी को ढीला बांधना चाहिए। पट्टी बांधने के बाद उसके ऊपर गर्म कपड़े की पट्टी अथवा सूती कपड़े की सूखी लपेट बांधनी चाहिए। इस प्रकार की प्रक्रिया को ही लपेट अथवा पट्टी के नाम से जाना जाता है।

इसकी लम्बाई व चौड़ाई भी अंग विशेष के अनुसार अलग अलग तैयार की जाती है जैसे टांग की लपेट में पंजे से लेकर जंघा तक की पूरी लम्बाई की पट्टी ली जाती है। पेट की लपेट में मोटेव पतले शरीर के रोगी के आकार के अनुसार ही पट्टी की लम्बाई व चौडाई की तैयार की जाती है।

इसी में विभिन्न प्रकार की पट्टियां निम्न प्रकार से समझी जा सकती है।

1. ठंडे जल की पट्टी – ठंडे जल की पट्टी देने के लिए शरीर के विशेष अंग के अनुसार लम्बा और चौड़ा कपड़ा लेते है। उस कपड़े को ठण्डे जल में भीगो कर निचोड लिया जाता है तथा विशेष अंग पर लपेट दिया जाता है। 2 से 5 मिनट तक अर्थात् पट्टी के तापमान बढ़ने पर पुनः ठण्डे पानी में पट्टी को डुबाकर ठंडा कर उसी स्थान पर लपेटा जाता है। पट्टी खोलकर सूखा घर्षण भी दिया जाता है।

लाभ – ठंडी जल पट्टी सभी पकार की पीड़ा, दर्द, टपकन, जलन, चोट तथा सूजन से रामबाण है। किसी जहरीले जानवर या कीड़े के काटने मारने पर प्रयोग करने पर लाभ पहुंचाती है। रक्त स्राव को रोकने में लाभकारी है।

सावधानी – पट्टी केवल दर्द की जगह पर ही नहीं लगानी चाहिए अपितु उसके आपपास भी काफी दूर तक लगानी चाहिए। पट्टी सदैव भली भांति बांध देनी चाहिए ताकि पट्टी हिल्ले नहीं न उसमें हवा घ्ज्ञुसे तथा अधिक कसकर पट्टी न बांधे, रोगी के शरीर की गर्मी घटने की स्थिति में उसपर गुनगुने पानी की पट्टियां लगानी चाहिए।

2 गर्म जल की पट्टी – रोगी के शरीर पर ठंडी पट्टी लपेटने के पश्चात् उसके ऊपर जब ऊनी पट्टी भी लपटी जाती है तो उसे गर्म जल की पट्टी कहते है। सूखी ऊनी लपेट से भीतर की भीली पट्टी भी कुछ ही देर में अपने आप सूखने लगती है।

गीली पट्टी का लपेटने से पहले भलीभांति निचोड़ कर लेना जरूरी है। इसे 3 से 6 घंटे तक रखा जा सकता है। यह पट्टी रोगी के अंग के अनुसार ही लपेटी जाती है। कुछ रोगी की अवस्था में ठंडी पट्टी जल्दी ही सूख जाती है इस अवस्थ्ज्ञा में उसे बदल देना जरूरी होता है। इस पट्टी को हटाने पर गीले कपड़े से रगड़ कर साफ कर लेना चाहिए। इससे शरीर के ऊपर आई अनावश्यक गर्मी दूर हो जाती है।

लाभ – यह पुराने रोगों तथा शरीर में जकड़े हुए स्थानों की रूकावटों को भी दूर करती है। शरीर में बड़ी हुई गर्मी को शांत करती है। रक्त के जमाव को दूर करती है। ज्वर में बड़े ताप को दूर करती है। रोगी की घबराहट को कम करने के लिए पट्टियां महत्वपूर्ण है।

सावधानियां –

ऊनी पट्टी गीली पट्टी से 1–1 इंच अंगुल चारों तरफ बढ़ी रहनी चाहिए। गीली पट्टी जल में इतनी तर नहीं करनी चाहिए कि उसमें पानी टपकता रहे इसे भली प्रकार से निचोड कर ही लपेटना चाहिए।

सदैव रोगी की दशा, देश तथा काल के अनुसार ही पट्टी लगायी जाती है। सबल और कमजोर रोगियों में गीली पट्री की एक ही तह लगानी चाहिए तथा गर्म पट्टी की लपेट 2 या 3 लगानी चाहिए। पटरी प्रयोग के बाद साफ करना और धूप में सूखाना अत्यन्त आवश्यक है।

3 सर्वाग गीली चादर की लपेट – इसे अंगेजी में Full Body wet sheet pack कहते है। यह पूरे शरीर की गरम लपेट है। इस लपेट के लिए सर्वप्रथम एक लकडी के तखत पर 2 कम्बलों को इस प्रकार बिछाते है की कम्बल साइडों से लटके रहते है। इन कम्बलों पर सूती चादर ठंडे जल में गीली कर निचोड कर बिछा ली जाती है। इस चादर पर रोगी को नंगे बदन लैटाकर सूती गीली चादर में फिर कम्बल में लपेट दिया जाता है। तथा ऊपर से कम्बल या रजाई उडाई जाती है। इस लपेट में रोगी के सिर पर गीली लपेट लगानी चाहिए तथा कम्बल गर्दन पर न चबे इसके लिए सती चादर का

बाहर की तरफ ही रखा जाता है। तथा रोगी को लपेट से पूर्व गिलास पानी भी पिला देना चाहिए। यदि रोगी को अधिक पसीना निकले तो थोडी थोडी देर में पानी पिलाते रहना चाहिए। लपेट के बाद पसीना निकलने के बाद रोगी को स्पंजबाथ कर अच्छी तरह से पौंछ कर रजाई या कम्बल में लगभग 1 घंटे तक लपेट कर रखना चाहिए ताकि शरीर थोडा गर्म हो जाए।

लाभ – यह लपेट जीर्ण रोगों में तथा शरीर में विजातीय द्रव्यों के भरे होने की अवस्था में बहुत चमत्कारी है। यह उपचार तंत्रिकातन्तुओं को सक्रिय बनाता है। तथा कमर दर्द शियाटिका, गठिया आदि में विशेष लाभकारी है। तीव्र ज्वर, जलन, चर्म रोग, अनिद्रा, मोटापा, स्नायु विकार आदि इस लपेट से पूरे हो जाते है।

सावधानियां – यदि लपेट लगाने के काफी देर बाद तक भी ठण्डक बनी रहे तो समझना चाहिए की चादर ठीक से नहीं लपेटी गई या शरीर की प्रतिक्रिया ठीक नहीं हो पा रही है इस स्थिति में रोगी के शरीर की सूखे तौलिए से रगड़ कर गर्म करना चाहिए।

कमजोर, उच्च रक्तचाप एवं स्नायु दौर्बल्य के रोगी का हाथ पटरी से बाहर रखने चाहिए परन्तु कम्बल के भीतर ही रखे।

यदि रोगी कमजोर हो तो 2–3 गर्म पानी की थैलिया भी रख सकते है।

4 सिर की गीली पट्टी – यह लपेट सिर और उसके आसपास लपेटी जाती है। इस लपेट के लिए एक साफ मोटे खुद्दरे को ताजे पानी में भीगो कर तथा निचोडकर रोगी के गले के पीछे के ऊपर से लेकर कानों को ढकते हुए आंखों और मस्तक को पूरा पूरा ढक दे और इसके ऊपर ऊनी कपड़ा लपेट दे ताकि उसके भीतर हवा का प्रवेश न हो सके।

इस लपेट को 20 से 30 मिनट तक रखा जा सकता है। लपेट हटाने के बाद हाथों से हल्का घर्षण दे कर त्वचा को गर्म करना चाहिए।

लाभ – इस पट्टी से सिर की पीड़ा और जकड़न दूर होती है। अनिद्रा में यह लपेट लाभकारी है।

सावधानी – ऊनी लपेट सदैव ठीक प्रकार से लपेटे जिससे हवा भीतर नहीं जा सकें। हवा भीतर प्रवेश करने पर सिर में पीड़ा अधिक बड़ सकती है।

5 गले की गीली पट्टी – यह पट्टी विशेषतः गले पर लपेटी जाती है। इसके लिए 4 इंच चौड़ी तथा 32 इंच लम्बी खदर की पट्टी को ठंडे पानी में भिगो कर निचोड़ दे तथा गले पर चारों तरफ लपेट कर ऊपर से ऊनी गर्म कपड़ा लपेट दे। यह लपेट 30 मिनट से 1 घंटे तक भी रखी जा सकती है।

लाभ – यह गले की सूजन, टांसिल, जुकाम, सर्दी, खासी, सिर दर्द आदि में लाभकारी है।

सावधानि – गले की लपेट अधिक कसकर नहीं बांधनी चाहिए तथा गर्म लपेट के लिए चुभन वाले कपड़े का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ठंडी पट्टी गर्म होने पर बदलते रहना चाहिए।

6 छाती की गीली पट्टी – इस पट्टी को छाती के भाग पर लपेटा जाता है। इस लपेट के लिए खद्दर का कपड़ा जिसकी लम्बाई व चौड़ाई छाती के समान हो तथा इसकी 2–3 तह लपेटी जा सके। इस कपड़े की पट्टी को ठंडे पानी में भिगोकर भली प्रकार निचोड़कर रोगी की पूरी छाती पर 2–3 लपेट लगा कर ऊपर से ऊनी कपडा लपेट देते है। इस लपेट को 2 से 3 घंटे रखा जा सकता है।

लाभ – छाती की गली पट्टी छाती के रोगी में लाभदायक है। जैसे निमोनिया, खांसी, फेफड़ो में कफ की दूर करती है तथा जमे हुए कफ को बाहर फैंकने में सहायक है।

सावधानियां –

यदि कोई कमजोर, निर्बल रोगी हो तो उसे ठंडी गीली पट्टी के स्थान पर गर्म पानी की गीली पट्टी की लपेट लगानी चाहिए। ऐसा करने से रोगी को ठंड लगने का भय नहीं रहता।

7 धड़ की गीली पट्टी – धड़ की गीली पट्टी भी छाती की गीली पट्टी की भांति ही बांधी जाती है। परन्तु यह पट्री हंसुली तक दी जाती है। पट्टी बांधने की विधि समान ही रहती है। इस पट्टी को बांधने के बाद पूरे शरीर को कम्बल में लपेटना आवश्यक है।

लाभ – यह पटट्ी फेफड़ों के रोगी के साथ – साथ पेडू, योनी, यकृत, प्लीहा, आमाश्य तथा आंतों के भाग में आए विकारों को दूर करने में सहायक है।

सावधानी –

इस पटटी को बांधने हुए ध्यान रहे की ऊन्नी लपेट 1–1 इंच आगे तक बढ़ी रहे। लपेट हटाने के बाद शरीर को सूखे तौलिए से रगड़ कर गर्म करना चाहिए।

8 पेडू की गीली पट्टी – पेडु की गीली पट्टी को मेडू के भाग पर लपेटा जाता है। इस पटटी का बांधने के लिए खद्दर की पट्टी जो कि 2–3 पर पेडू के भाग पर लपेटी जा सके उतनी पट्टी जो कि 2–3 पर पेडू के भाग पर लपेटी जा सके उतनी लम्बी हो इस पट्टी को ठंडे पानी में भीगो कर निचौड ले तथा इसे पेडू के भाग पर इस प्रकार लपेटे की कपडा शरीर के साथ ठीक से चिपक जाए फिर इसके ऊपर ऊनी कपड़े की पटटी ठीक ढंग से लपेट दे। यह लपेट 2–3 घंटे तक रोगी को दी जा सकती है। यह पट्टी हटाकर सूखे तौलिया से घर्षण देना चाहिए।

लाभ – पेट में सूजन तथा स्त्रियों से संबंधित विकारों में लाभकारी है। ज्वर की अवस्था में यह काफी प्रभावकारी है।

सावधानी – यदि पूडू का भाग पट्टी देते समय ठंडा लगे तो पहले उसे रगड़कर गर्म करने के पश्चात ही पट्टी लपेटनी चाहिए।

9 कमर की गीली पट्टी – इस पट्टी को नाभी से चार इंच ऊपर से नाभी के निचले पूरे भाग पर लपेटा जाता है। इस लपेट को भी ठंडे पानी में भिगो निचोड़कर कमर के भाग पर 3–4 बार घुमा कर लपेटना चाहिए। इसके ऊपर ऊनी कपड़ा लपेटना जरूरी है। ऊनी कपड़े को रस्सी या सेक्टीपिन द्वारा अपटा देना चाहिए। यह पटरी 2–3 घंटे तक रखी जा सकती है इसके पश्चात् इस भाग को रगड़कर तक रखी जा सकती है इसके पश्चात इस भाग को रगड़कर गर्म करना चाहिए।

लाभ – यह सभी तीव्र तथा जीर्ण रोगों में लाभकारी है।

10 जोड की गीली पट्टी – इस पट्टी का प्रयोग शरीर के विभिन्न जोड़ों पर किया जाता है। शरीर को जो जोड ग्रस्त हो उस जोड के अनुसार लम्बा और चोडा

खद्दर का कपड़ा ठंडे में भिगो और निचोडकर जोड पर लपेट दे और ऊपर से कोई ऊनी कपड़े से बनी पट्टी भी लपेट कर बांध दे।

लाभ – इससे जोड़ों में दर्द, सूजन, तनाव आदि धीरे धीरे दूर हो जाते है। गठिया आदि में चमत्कारी प्रभाव है।

यह सेंक नसो के फैलाव व सिकुड़न को बढ़ाकर उस भाग के स्नायुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि कर विजातीय द्रव्य की बाहर निकालता है। तथा नई कोशिकाओं के निर्माण में मदद करता है।

11 गैस्ट्रोहैपाटिक पैक – इस पैक को देने के लिए सर्वप्रथम फलालेन या कम्बल के कपड़े को तख्त पर बिछा कर उसके ऊपर सूती कपड़ा बिछाया जाता है। इस सूती कपड़े पर रोगी को इस प्रकार लैटाया जाता है कि गरम पानी की थैली पेट पर तथा ठंडे पानी की थैली रीड के बीच से निचले हिस्से में रखी हो अब गर्म थैली के ऊपर से सूती कपड़े और उसके ऊपर कम्बल को लपेट देते है। यह पैक 30–45 मिनट तक दिया जा सकता है।

लाभ – यह लपेट यकृत, अग्नाश्य, तिल्ली तथा पाचन संस्थान के रोगों में लाभदायक है। इसे कई प्रकार के रोगों जैसे हैपेटोस्पिनोमेगली, अग्नाश्य में अल्सर, डाईबिटिज, अमाश्य की जलन आदि में भी प्रयोग किया जाता है।

सावधानियां –

इस लपेट को उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि में नहीं देना चाहिए।

12 किडनी पैक – इस लपेट के लिए भी तख्त पर कम्बल की पट्टी के ऊपर सूती कपड़े की पट्टी बिछादे तथा रोगी को इस पर इस प्रकार लैटाया जाता है जिससे गर्म पानी की थैली पैट पर रखी रहे। इसे ऊपर गरम और सूती लपेट बांध दी जाती है।

यह पैक 30 से 46 मिनट तक दिया जा सकता है।

लाभ – यह लपेट गुर्दे और मूत्र संस्थान से संबंधित रोगों में लाभकारी है।

7.2.2 जल चिकित्सा में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न सेक

जल चिकित्सा द्वारा किसी रोग की चिकित्सा करते समय विभिन्न प्रकार के स्नान तथा विभिन्न प्रकार के सेंक का भी प्रयोग करके विभिन्न रोगों का उपचार करते है इसके लिए वस्त्र गर्म पानी की बोतल, आजकल जैल तथा विभिन्न प्रकार के तरल पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। गर्म पानी इनमें भर के जब किसी अंग विशेष की सिकाई की जाती है तो उसे गर्म जल के सेंक के नाम से जाना जाता है। इसमें भी अंग के अनुसार सिंकाई के कपड़े की लम्बाई चौड़ाई तय की जाती है। गर्म पानी में कपड़ा भीगो कर जब सेंक दिया जाता है तो उस सेंक का हम गीले कपड़े की थैली में भर कर सेंक दिया जाता है तो इसे सूखा सेंक कहा जाता है।

इन सभी प्रकार के सेंकों का उद्देश्य प्रभावित अंग को गर्मी प्रदान करना होता है। यह सेंक एक दिन में तीन से चार बार भी दिया जा सकता है। परन्तु जब भी सेंक दे तो वह लगातार देना चाहिए। लेकिन किसी भी हालत में सेंक 30 मिनट से ज्यादा नहीं देना चाहिए।

यदि आवश्यकता हो इससे भी ज्यादा सेंक देने की तो 25 से 30 मिनट के सैंक के बाद 1–2 मिनट के लिए ठंडा सेंक देना आवश्यक होता है। सेंक लगातार देने पर पसीना आ जाए तो ठंडे पानी में तोलिया या कपड़ा भीगो कर पसीना पौछना चाहिए तथा गर्मी देने के लिए कम्बल उडाना चाहिए। कभी भी गैस या हीटर पर हाथ या कपडा गर्म करके सेंक नहीं देना चाहिए। इस प्रकार के सेंक करके सेंक नहीं देना चाहिए। इस प्रकार के सेंक विभिन्न प्रकार के मल्लमों से अधिक लाभकारी होते है। इससे किसी अंग विशेष में खून का प्रवाह बढ़ाना हो नर्सों या मांसपेशियों को उत्तेजित करना हो किसी भी शक्ति विहिन अंग की क्रियाशील बनाना हो कोई भीतरी चोट हो, छाती में बल गया जमा हो, मसूड़ों में सूजन हो, गुर्दों में पथर का दर्द हो, गले में टासिलस का संक्रमण हो इस प्रकार के अनेकानेक रोगों में यह सेंक लाभकारी सिद्ध होते है।

इस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों और भागों पर गीली पट्टी का प्रयोग लाभकारी सिद्ध होता है। अंग या भाग की बनावट के अनुसार ही लम्बी और चौड़ी पट्टी का प्रयोग किया जा सकता है। इन गीली पट्टियों पर गर्म ऊनी कपड़े की लपेट लगाना तथा लपेट हटाने के बाद उस भाग को रगड़कर गर्म करना आवश्यक है। इस तरह शरीर के किसी भी भाग पर इन गीली पट्टियों को प्रयोग किया जा सकता है। जैसे आंखों की,

हाथों, पैरों, हृदय की आदि। इन पट्टियों को रोगी के शरीर पर बांधने की अवधि रोगी की शारिरिक व रोग की स्थिति पर ही निर्भर करता है।

1 गरम सेंक –

जल चिकित्सा में रोग उपचार के लिए प्रायः कई प्रकार के सेकों का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए जल को गर्म करके तोलिया या अन्य मोटे फलालैन के कपड़े को उस में भिगों कर या रबड़ की बोतल के द्वारा भी शरीर के विशेष भाग पर सेंक किया जा सकता है। सेंक करने से पूर्व रोगी के हाथ पेर छूकर यह देखले की वो ठंडे तो नहीं यदि ऐसा हो तो उसे रगड़कर गर्म कर लेना चाहिए तथा यह भी देखना चाहिए रोगी के सिर की तरफ रक्त का संचार तीव्र तो नहीं इस स्थिति में रोगी के सिर पर पहले ठण्डी लपेट लगानी चाहिए तब सेक देना चाहिए।

कपड़े द्वारा सेक देते समय, कपड़े को गर्म पानी में भिगोकर ठीक से निचोडने के बाद ही सेक के स्थान पर कपडा रखना चाहिए। यदि सेक बोतल द्वारा किया जाना है तो उस स्थान पर पतला कपड़ा रखकर ही उसके ऊपर बोतल रखनी चाहिए। इससे त्वचा को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती है। गर्म उपचार के समय सदैव पानी का तापमान रोगी द्वारा सहन करने योग्य ही पानी का तापमान रोगी द्वारा सहन करने योग्य ही होना चाहिए तथा सेक का समय रोग की अवस्था और आवश्यकता के अनुसार निर्धारित करना चाहिए। तौलिया या कपड़े का प्रयोग कर जो सेंक दिया जाता है। उसे गीला सेक कहते है जबकि रबड की थैली में पानी भरकर दिए जाने वाले सेक को सूखी सेक कहते है।

सेक देने की अवधि 10–30 मिनट या अधिक भी हो सकती है।

यदि किसी रोग की अवस्था में सेक आधे घण्टे से अधिक दी जाती है तो उस स्थिति में आधे घंटे के बाद ठंडे पानी की तौलिया से उस भाग को पौछकर ही आगे सेक करना चाहिए। यदि सेक के दौरान रोगी को पसीना आता है तो उसके पूरे शरीर मो गीले तौलिए (ठंडे पानी के) से जल्दी से पौछकर गर्म कर देना चाहिए।

लाभ – गर्म सेक सभी प्रकार के दर्द का निवारण करती है। भीतर चोट, मांसपेशिया फटना, सूजन, पेट दर्द, नसों का दर्द, माच आदि असंख्य रोगों में गर्म सेक लाभदायक है। रक्त स्राव में वृद्धि करता है।

सावधानियां – गर्म सेक खुले व हवादार कमरे में न करे। उच्च रक्त चाप व हृदय रोगियो को गर्म सेक से पूर्व सिर का ठंडी लपेट तथा छाती पर ठंडी पट्टी रखनी चाहिए। जल का तापमान जांच कर ही सेक करनी चाहिए।

2 गरम ठंडी सेक –

जब रोगी के रोग ग्रस्त भाग पर एक समय पर ठण्डी और गर्म दोनों सेक दी जाती है तो उसे गरम ठण्डी और गर्म दोनों सेक दी जाती है तो उसे गर्म पानी भीगी निचोडी हुई तौलिया को फैलाकर ग्रस्त भाग पर निचोडी हुई तौलिया को फैलाकर ग्रस्त भाग पर ठण्डी तोलियां को रखा जाता है यह सेक ठण्डी सेक पर ही समाप्त होता है। इस सेक में गरम ठण्डी सेक का समय रोग के अनुसार निर्धारित किया जा सकता है।

लाभ – इस सेक द्वारा सूजन, दर्द, नसों की कमजोरी, अंग का सुन्नपन, हड्डियों में दर्द, कमर दर्द, में रामबान है।

3 लीवर और अमा□य का गरम और ठण्डा सेक विधि –

नाभि से 6–7 उँगल ऊपर तक के भाग पर गरम पानी में भीगी हुए तथा भलि प्रकार निचुड़ी तौलियों को रख कर ऊपर से गरम पानी की बोतल रखते है तथा इसी के ठीक कमर के भाग पर ठंडे पानी में भीगी तथा निचुड़ी हुई तौलियों को रखे इन्हें 3 मिनट रखने के बाद इसका विपरीत करे पेट पर ठण्डी तथा कमर मर गरम गोलिया 3 मिनट के लिए रखे इसी को क्रम से तीन बार किया जाता है।

इस सैक को 10 से 15 मिनट तक किया जा सकता है।

लाभ – यह सेक विशेष रूप से लीवर के समस्त रोगों में की जाती है। इससे पेट में भोजन के पाचन संबंधित होने वाले रोगों में लाभ मिलता है। यह पेन्क्रियाज तथा सप्लीन की वृद्धि होने पर या उनमें किसी प्रकार के प्रभाव आने से शरीर में होने वाली रक्त की कमी तथा मधुमेह आदि में भी विशेषतः लाभकारी है।

4 फैफड़े का गरम और ठण्डा सेक –

इस सेक को करने से पूर्व रोगी के सिर पर ठण्डे पानी में निचौड कर तौलिया को रखकर छाती के भाग पर ठण्डे पानी की तथा ठीक इसी के पीछे गर्दन पर गरम तौलिया से सेक करना चाहिए इसे 3 मिनट तक करने के बाद फिर इन्हें क्रमशः बदलकर छाती

पर गरम सेक तथा पीठ और गर्दन पर ठण्डी सेक करनी चाहिए ऐसा क्रम से 3–4 बार तथा 10 से 12 मिनट तक करना चाहिए।

लाभ

यह सेक पुरानी खांसी तथा पुराने जमे हुए कफ को बाहर निकालने में प्रभावकारी सिद्ध होता है। इससे फेफडो की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। यह फेफड़ों में होने वाले संक्रमणों तथा रक्तस्राव को भी कम करता है।

सवधानियां –

इस सेक के साथ साथ गरम पाद स्नान देने से रोगी को और अधिक राहत महसूस होती है।

उच्च रक्त चाप या हृदय रोगियो को यह सेक देते समय सिर और गर्दन पर ठण्डा तौलिया अवश्य रखना चाहिए।

3 किडनी का गरम और ठण्डा सेक

किडनी पर गरम और ठण्डी सेक के लिए सर्वप्रथम रोगी के नाभि के चारों और चार उँगल नीचे तक के भाग पर ठण्डे पानी का निचुडा तौलिया तथा ठीक इसके पीछे पीठ के भाग पर गरम पानी में भीगी तौलिया को 3 मिनट तक रखकर इस सैक को बदलते हुए नाभि वाले स्थान पर गरम और पीठ के भाग पर ठण्डी तौलिया का 3 सेक करो ऐसा क्रम से 3–5 बार करे।

लाभ –

इस सेक किडनी पर आई हुई सूजन, दर्द, संक्रमण आदि दूर हो जाती है। इससे पथरी के गुर्दे में होने के कारण उठने वाले दर्द में भी राहत मिलती है। मूत्र विसर्जन में पीडा को भी दूर करता है। तथा गुर्दों की क्रियाशीलता बढ़ाकर तेजी से विजातिय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालने में सहायक है।

6 सिर की गरम और ठण्डी सेक –

सिर की गरम ठण्डी सेक के लिए सर्वप्रथम चेहरे पर और सिर पर सहने योग्य गर्म जल में भीगी तौलिया का सेक कर इसी के साथ गर्दन पर ठण्डे जल की तौलिया का सेक कर 3 मिनट बाद इन्हीं भागों पर इसके विपरीत सेक अर्थात चेहरे व सिर पर ठण्डी तथा गर्दन पर गरम सेक करनी चाहिए। इसे भी क्रमश उसे 4 बार करे।

लाभ – इसका प्रभाव मस्तिष्क के स्नायु और रक्तप्रवाह में देखने को मिलता है। यह अनिद्रा तनाव व थकान में लाभकारी है। इससे चेहरे पर भी तेज लाकर मांसपेशियों की झुरियों को पूर करती है।

7 कटि प्रदे□ा का गरम ठण्डा सेक –

मेरूदण्ड के निचले भाग से लेकर गुदा भाग पर गर्म तौलिया रखना चाहिए इसके पश्चात 3 मिनट तक ठण्डे पानी का निचुडा हुआ तौलिया 3 मिनट के लिए रखना चाहिए इस प्रकार क्रम से 3 से 5 बार तक करना चाहिए।

लाभ

यह बवासीर, खुजली, खूनी बवासीर तथा फिशर जैसे रोगो में लाभकारी है। यह कमर की निचली हड्डी में तथा सियाटिका दर्द में प्रभावकारी है।

नोट – निम्नलिखित यंत्रों की विस्तृत जानकारी इकाई संख्या 1 में चित्र सहित अध्ययन करें।

8 जल चिकित्स में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न यंत्रों के नाम

7.2.3 1 जेट स्प्रे

2 वतुलाकार जेट स्प्रे

3 हाइड्रोकोन यंत्र

4 एनिमा पोट

5 गर्म और ठण्डे पानी की बोतल

6 भाप स्नान यंत्र

7 जलान्तर्गत जलीय मालिश टब

8 इमरसन स्नान टब

9 कटि स्नान टब

10 भंवरकूप स्नान टब

11 रीढ़ स्नान टब

12 हस्त–पाद स्नान यंत्र

13 रफ्यूजन

14 चेहरे का भाप स्नान यंत्र

16 मेहन स्नान यंत्र

17 डूश पम्प

18 फव्वारा स्नान यंत्र

सारां

उपरोक्त इकाई में आपने पढ़ा कि जल तत्व चिकित्सा द्वारा उपचार दिए जाने में किन–किन अंगों पर, किन–किन पट्टियों एवं सेकों का प्रयोग किया जाता है किन यंत्रों का प्रयोग कर उपचार को प्रभावकारी बनाया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार में जल चिकित्सा द्वारा किया उपचार इतना साधारण एवं सरल है तथा परिणाम को देखते हुए एक चमत्कारी उपचार का नाम दिया जा सकता है। भंयकर से भंयकर रोग की स्थिति में वानी इतना व बड़ा काम कर सकता है। विश्वास करना कठिन है परन्तु सत्य भी है। जल चिकित्सा की विभिन्न सेक व पट्टियों के महत्व को विदेशी लेखक डॉ. जे.एच. केलांग ने अपनी पुस्तक ''रैशनल हाइड्रो थैरेपी'' में सिद्ध करके प्राकृतिक चिकित्सा जगत के सामने रखा है। इस इकाई के पढ़ने के बाद हम सामान्य बीमारियों का उपचार घर में केवल पट्टी व सेक के द्वारा भी करने में सफल हो सकते है।

बोधात्मक प्र

1 जल तत्व द्वारा चिकित्सा में प्रयोग होने वाली विभिन्न पट्टियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2 जल चिकित्सा में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न सेकाकें का विवेचन कीजिए।

3 जल चिकित्सा में प्रयोग किए जाने वाले यंत्रों के नाम लिखें तथा दर्द में प्रयुक्त सेक का वर्णन करें।

संदर्भ ग्रंथ

1 प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – राकेश जिन्दल

2 प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग – डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज

3 वृद्ध प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ.पी. सक्सैना

4 प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र – आचार्य शेषाद्रि स्वामिनाथन

इकाई : 8 – सूर्य किरण चिकित्सा (अग्नितत्व) का अर्थ, परिभाषा एवं महत्व तथा विभिन्न रोगों में उपचार हेतु 7 रंगों का प्रयोग

इकाई संरचना

8.1 परिचय

8.2 उद्देश्य

8.2 अर्थ व इतिहास

8.4 सिद्धान्त व विशेषताएं

8.5 सूर्य किरणों का शरीर पर प्रभाव

8.6 सूर्य किरण चिकित्सा एवं चक्र

8.7 महत्वपूर्ण प्रश्न

8.8 संदर्भ ग्रंथ

8.1 परिचय

पुथ्वी ग्रह के लिए सूर्य उर्जा का मूल स्रोत है। समान जीव मंडल के चर–अचर प्राणी जैव विकास के प्रारम्भिक काल से ही सूर्य से जीवन उर्जा प्राप्त कर रहे हैं। सूर्य द्वारा विकिरण उर्जा पृथ्वी पर पौधों द्वारा चेतन जगत द्वारा प्राप्त की जाती है। पौधों द्वारा शाखाहारी प्राणियों उर्जा प्राप्त होती है। इस प्रकार चेतन जगत में उर्जा का प्रवाह होता है श्री गीता में वर्णन भी है।

रसोऽमक्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशि सूर्ययोः

मैं जल में रस हूं और सूर्य चन्द्रमा में प्रभा हूं।

इस सूर्य किरणों द्वारा उपचार की कोई नई पद्धति नही है। वैदिक ग्रंथों के इस पूर्व ज्ञान को आधुनिक रूप में विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकी खोजों एवं अनुभव के आधार पर नवीनीकृत किया गया है।

8.2 उद्दे□य

सूर्य किरण द्वारा उपचार के साधनों तकनीकियों एवं विभिन्न प्रकार के वर्णन को प्राकृतिक चिकित्सा विद्यार्थी इस इकाई से प्राप्त कर सकेंगे। विभिन्न रंगों का रोगो के अनुसार किस प्रकार प्रयोग किया जाये। संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

परिचय

अग्नि सृष्टि से प्रदत्त पंच तत्वों में तीसरा उपयोगी तत्व है संसार का सम्पूर्ण भौतिक विकास सूर्य की सत्ता पर निर्भर है। सूर्य की शक्ति के अभाव में किसी प्राणी, पशु–पक्षी एवं वनस्पति वर्ग आदि का स्वस्थ एवं जीवित रहना असंभव है। सूर्य को आदि काल से शक्ति का पुंज माना गया है। जब तक सौर मण्डल में सूर्य है तब तक पृथ्वी पर प्राणियों का जीवित रहना संभव है। यदि कल्पना की जाये कि सूर्य का अस्तित्व समाप्त हो गया है तो यह निश्चित है कि पृथ्वी पर प्राणि अधिक दिनों तक जीवित नही रह सकेगा।

सूर्य की निश्चित दूरी के कारण ही पृथ्वी पर जीवन संभव हुआ है। यदि सूर्य पृथ्वी के समीप होता तो भी प्राणी जीवन संभव ही नही हो पाता या सूर्य दूर होता तो वह इस स्थिति भी असंतुलन पैदा करने वाली होती है। परन्तु केवल इसी संतुलित दूरी के कारण ही सम्पूर्ण पृथ्वी का वातावरण जीवन के लिए उपयोगी है इसलिए यह रहस्य भी अत्यन्त चमत्कारी एवं तर्क से परे है।

सूर्य की रश्मियाँ जब पृथ्वी पर पड़ती है तो सभी स्थानों पर समान नहीं पड़ती कहीं अधिक कहीं कम होने का प्रभाव वहां के वातावरण पर भी पड़ता है। पृथ्वी पर सूर्य की किरणें विभिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न प्रकार से पड़ने के कारण पृथ्वी के हर स्थान के लोगों का रहन–सहन, रूप–रंग, कद आदि से इतना अंतर है। क्योंकि पृथ्वी के समस्त जीव सूर्य के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित है। इस कारण पृथ्वी के विभिन्न–भिन्न स्थानों पर रहने वाले निवासियों का शारीरिक विकास, शारीरिक गठन मानसिक शक्ति उसका रूप–रंग एवं उसकी आयु हर स्थान पर भिन्न–भिन्न होता है।

जिस स्थान पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है वहां के निवासियों का रंग गहरा होता है तथा तेज वहां के वृक्ष और भूमि भी अलग तरह की होती है। वहां पर भिन्न–भिन्न पशु–पक्षी, फल तथा फूल पाये जाते है।

सूर्य के प्रकाश में जब हम वस्तुओं को देखते है तो सभी का रंग भिन्न–भिन्न जान पड़ता है। उन सभी वस्तुओं का अपना अपना कोई न कोई रंग अवश्य होता है। इन रंगों के कारण हम हर वस्तु में उसकी अपनी विशेषताएं देखते है। जैसे – गुलाब लाल रंग का है, गाय काली है। दूध सफेद होता है। रात काली होती है।

इस प्रकार रंगों के कारण हम उस वस्तु के संबंध में एक धारणा बना लेते है।

रंग और सूर्य का प्रका□ा

रंग प्रकाश पुंज की वे किरणें है जो किसी वस्तु विशेष से टकराने के पश्चात हमें दिखाई देने लगती है। रंग और सूर्य के प्रकाश का संबंध बहुत ही जटिल है। सूर्य के प्रकाश के अभाव में रंग विलिन हो जाते है। रंगों की रक्त केवल सूर्य के प्रकाश में ही उपस्थित रहता है। प्रकाश की अनुपस्थिति में सभी रंग काले रंग के दिखाई देते है।

इस चमत्कार का पता चलते ही वैज्ञानिकों ने सूर्य की रोशनी का विश्लेषण करना शुरू किया क्योंकि यदि रंग प्रकाश की उपस्थिति में ही दिखाई देते है तो यह अलग–अलग रगों में क्यों दिखाई देते है। जबकि प्रकाश की अनुपस्थिति में सभी वस्तुएं काली दिखाई देती है। वैज्ञानिकों का सोचना था कि प्रकाश में ही कोई रहस्य है। जो सभी वस्तुओं को भिन्न–भिन्न रगों में विभाजित कर सकता है। इस प्रकार का उदाहरण सर आइजिक न्यूटन का प्रयोग है जो कि उन्होंने सन् 1666 में किया था। उन्होंने अंधरे कमरे के एक छेद से आते हुए सूर्य के प्रकाश पर प्रिज्म रखा और पाया कि जब सूर्य रश्मियाँ का प्रिज्म से गुजारा जाता है तो दिवार पर सात रंगों की एक पट्टी सी बन जाती है। न्यूटन ने देखा कि सात रंग इस प्रकार थे – 1 लाल 2 नारंगी, 3 पीला, 4 हरा, 4 नीला, 6 आसमानी, 7 बैंगनी। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि सफेद रंग और काला रंग दोनों वास्तव में रंग है ही नही फिर भी यह महत्वपूर्ण रंग है। दोनों रंग एक दूसरे के विरोधी रंग है। काला रंग सभी रंगों को अपने में समेट लेता है जबकि सफेद रंग सभी रंगों को

वापस भेज देता है। इस प्रकार रोशनी सात रंगों का एक पुंज है। जो सम्मिलित रहने पर सफेद रंग में दिखाई देता है। इन्हीं सातों रंगों के कारण हम पूरी दुनिया रंग बिरंगी दिखाई देती है। जब यह सप्त किरणों का पुंज किसी भी वस्तु पर पड़ता है तो उस वस्तु के गुण धर्म अनुसार किरणों में से कुछ किरणे उस वस्तु केद्वारा वापस भेज दी जाती है। जबकि कुछ को वह अपने में समेट लेती है।

इस प्रकार जो किरणे वस्तु से टकराकर वापस आकर हमारी आंखों से टकराती है तब उस हम उन किरणों से बने रंगों को देखते है जिसके कारण हम यह जान पाते है कि वस्तु का रंग क्या है।

सूर्य किरणों में अपनी तेजी के अनुसार उष्मा होती है। सूर्य की किरणों में गर्मी का अनुभव किया जा सकता है। जब काले रंग पर सूर्य किरण पड़ती है तो काला रंग सातों किरणों को अपने में सौख लेता है। जिसके कारण जल्दी गर्म हो जाता है। जबकि सफेद रंग पर जब किरणों को डाला जाता है तो वह किरणों को वापस भेज देता है। जिससे वह कम गर्म होता है।

इसका उदाहरण है जब हम गर्मियों में काले रंग के वस्त्र धारण करते है तो गर्मी बहुत अधिक महसूस होती है। जबकि सफेद कपड़ों में गर्मी कम लगती है।

अतः रंगों का चरित्र उसकी विशेषता एवं उसकी गुणवत्ता ही उसका रहस्य है।

8.3 सूर्य किरण चिकित्सा का इतिहास – सूर्य किरण चिकित्सा का संबंध सूर्य की किरणों से है। यह पद्धति पूरी तरह से सूर्य की किरणों पर आधारित है। इसलिए इसकी उत्पति भी तभी से मानी जा सकती है। जब से सूर्य और पृथ्वी है क्योकि सूर्य ही एकमात्र ऐसा ग्रह है जिसका प्रकाश हमें प्रभावित करता है। सूर्य के प्रकाश से हमे उर्जा प्राप्त होती है। यही हमारे अग्नि तत्वों का प्रतीक है। हमारे इस संसार में जो कुछ भी है सभी का निर्माण पंच तत्वों से मिलकर हुआ है। अग्नि पंच तत्वों में तीसरा उपयोगी तत्व है। अग्नि को अग्नि देव मानकर उनकी पूजा, अर्चना का विधान हिन्दू शास्त्रों में प्राप्त होता है।

हमारे चारों वैदों में सूर्य की स्तुति, अग्नि का आह्वान एवं उर्जा को नमन किया गया है। ये तीनो हमें सूर्य से मिलते है। सूर्य ही अग्नि और उर्जा का स्रोत है। इस पर सम्पूर्ण प्राणी जगत निर्भर है।

सूर्य केवल प्रकाश और गर्मी ही नही देता बल्कि वह बुद्धि और दीर्घायु भी प्रदान करता है।

सवितानः सुवतु सर्वातींत सवितानो रसतादीर्घायुः।

अर्थात् यह प्रकाश जो सारे पृथ्वी लोक को प्रकाशमान कर रहा है। हमें सुबुद्धि और दीर्घायुष्य प्रदान करे।

इसीलिए जो व्यक्ति सूर्य से प्राप्त प्रकाश का जितना सेवन करता है उसकी बुद्धि का विकास उतना ही विकसित होात है हमारे ऋषि मुनि व पूर्वज सूर्य उपासना करके ही बुद्धिमान बने विश्व के विद्वानों के अनुसार हिन्दुओं का सबसे प्राचीन धार्मिक ग्रंथ वैद है तथा इससे तथा इससे ज्ञान का प्रानेन विश्वता तीर्थ देवाः सूर्य समैश्यन्।

(ऋग्वेद)

अर्थात् देवता जो समस्त गुणें से युक्त है वह सूर्य के प्रकाश का सेवन भिन्न–भिन्न रूपों में करते है।

''प्राणः प्रजानामुदयत्येस सूर्यः।।

अर्थात् प्रातः का उदित होता हुआ सूर्य सम्पूण्र जगत को आतमा है। सूर्य को व्यक्ति विशेष वर्णन जैसे आगामी में भी मिलता है।

''सूय्र नो दिवस्पातु

अग्निः पार्थिलेश्यः।। (ऋग्वेद)

अर्थात् सूर्य हमारे दिन की रक्षा करें और अग्नि हमारे धन–जन की रक्षा करें।

अग्नि ततव से हमें धन–जन की प्राप्ति होती है। और यह हमारी रक्षाभी करती है।

''नमः सूर्याय शाताय् सर्व रोग विनाशिने।

आयुरा रोग्यमैश्वर्यदेद्धिदेव नमो इस्तुते।।''

अर्थात् शांति प्रदान करने वाले रोग नाश करने वाले सूर्य भगवान को नमस्कार है। हे सूर्यदेव आयु आरोग्य और ऐश्वर्य हमे दो। आपको नमस्कार है।

''मा नः सूर्यस्थ सदृशो युषोया''

अर्थात् है अनंत प्रभु। हमें सूर्य के दर्शन से अलग न रखें यह युक्ति कितनी सत्य है कि हे ईश्वर हमें सूर्य को शक्ति निरंतर मिलती रहे क्योंकि एक मात्र सौरमंडल में सूर्य ही है जो इस सम्पूर्ण विश्व का पोषण कर्ता है।सूर्य के बिना जीवन की कल्पना भी करना संभव नहीं है।

मनुष्य ने अपनी आंखे खोलते ही चमकते हुए सूर्य को देखा एवं सूर्य ही एक मात्र प्रकाश पुंज है जो प्रतिदिन उद्रित होता है एवं अस्त होता है अतः मनुष्य का सबसे अधिक आकर्षण सूर्य के प्रति रहना अत्यन्त सहज घटना है।

अतः इतिहास की दृष्टि से सूर्य चिकित्सा का प्रचलन बहुत प्राचीन है। यह चिकित्सा सर्व प्रथम भारत, युनान, चीन एवं अमेरिका आदि देशों से होती हुई आज यह ईरान एवं इग्लैंड जैसे आधुनिक देशों में अत्यन्त लोकप्रिय होने लगी है।

भारत में यह चिकित्सा प्रायः लोप हो चुकी है मध्य काल में इस चिकित्सा का चलन बहुत कम हो गया क्योंकि नयी नयी चिकित्सा पद्धतियां जैसे आयुर्वेदिक एलोपैथिक, होम्योपैथिक एवं युनानी दवा आदि के कारण इसे चिकित्सा शास्त्र में पिछ़डना पडा किन्तु बीसवीं सदी में एक बार फिर इस चिकित्सा पद्धति का पुनरूत्थान हुआ है। इसका बडा प्रमाण यह है कि जब इस चिकित्सा पद्धति को भारत से अमेरिका में ले जाा गया तो वहां इसका सबसे अधिक विकास हुआ अमेरिका में इस चिकित्सा पद्धति पर कई सफल प्रयोग किए जिसके कारण अमेरिका वासी इस पद्धति से बहुत अधिक प्रभावित हुए।

आज इग्लैंड भी इस चिकित्सा मं विश्व में सर्वोपरि स्थान पर है। आज इग्लैंड में सूर्य–चिकित्सा से कैंसर जैसे रोगों को भी नियंत्रित किया जा रहा है। धीरे धीरे यह समस्त देशों में अपनी प्रभाव दिखा रही है यह चिकित्सा अपने चमत्कार परिणाम एवं सहज

उपलब्धता के कारण साधारण लोगों में विश्वसनीय होती जा रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आने वाले कुछ वर्षों में सूर्य चिकित्सा – चिकित्सा के क्षेत्र में सर्वोपरि हो जाएगी।

आज एलोपैथिक के अनेक बड़े–बड़े डॉक्टरों ने रोग चिकित्सा को अपनाया है इस परउच्च कोटि की शोध की जा रही है। अनेक शौध ग्रंाि विदेशों में प्रकाशित हुए है बड़े बड़े सम्मलेनों का आयोजन किया गया है।

जिस प्रकार सूर्य – चिकित्सा किसी समय भारत से पलायन कर पश्चिम के देशों में जाकर पनपने लगी थी अब विगत पांच वर्षों से इस चिकित्सा को दोबारा विदेशों से भारत की ओर आगमन हो रहा है। इसी को इतिहास कहा जाता है कि हर घटना एक निश्चित अवधि के पश्चात दोबारा दोहरायी जाती है।

आज कतिपय होम्योपैथिक तथा एलोपैथिक डॉक्टर भी इस चिकित्सा को अपनाने लगे है यह तो निश्चित है परिवर्तन तभी होता है जब हर क्षेत्र में स्थिति परिपक्व हो। अब ऐसा लग रहा है कि भारतवासी अपनी प्राचीनतम चिकित्सा विधि को दोबारा अपना रहे हैं।

8.4 सूर्य किरण चिकित्सा का सिद्धान्त –

सूर्य के प्रकाश से विश्व भी प्रकाशमान होता है यदि सूर्य के अभाव में संसार का क्षण भर में नास हो सकता है। इसी सूर्य की किरणों से संसार के कण – कण में जीवन का शक्ति का सौन्दर्य का निर्माण करने का गुण विद्यमान है।

सूर्य प्रकाश के दो सिद्धान्त भी है जिसके आधार पर ही संसार चलायमान हो पाता है वह निम्नलिखित है।

क) संसार के सभी प्राणी भिन्न भिन्न रंगो के होते है। प्राणी का सम्पूर्ण शरीर रंगीन है। बाहर से देखने पर प्राणी का पूरा शरीर एक ही रंग का दिखाई पड़ता है परन्तु यदि भीतर के अवयवों को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि सभी का रंग भिन्न–भिन्न होता है। इस प्रकार मनुष्य का पूरा शरीर रंगों का पिण्ड है।

ख) सूर्य के ताप की शक्ति किरणें रोशनी रंगों और उर्जा का प्रभाव प्राणी के शारीरिक मानसिक और भौतिक विकास पर पड़ता है। यह प्राकृतिक विज्ञान का

सर्वोत्तम तथ्य है जब हमारे जीवन का आधार सूर्य है तो सूर्य किरणें से उत्पन्न किरणों के रंगों से उत्पन्न समस्याओं और रंगों की सही चिकित्सा भी की जा सकती है क्योंकि प्राकृतिक नियम के अनुसार स्वभाविक चिकित्सा ही प्रभावशाली होती है।

सूर्य किरणों की विशेषता – सूर्य चिकित्सा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पूरी तरह से प्राकृतिक एवं सरलता से प्राप्त की जा सकती है। यह पद्धति अत्यन्त सरल है इसके गुणों को जानकर इसका प्रयोग कोई भी कर सकता है इस चिकित्सा पद्धति में किसी भी प्रकार की दवाई या जडी बूटियों का सेवन नहीं किया जाता इसलिए इस चिकित्सा पद्धति का कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता यह एक स्वाभाविक चिकित्सा पद्धति है। यह चिकित्सा सहसता से उपलब्ध होने के कारण अत्यन्त सस्ती है। इस चिकित्सा विधि से जटिलता न होने के कारण सभी व्यक्ति अपनी चिकित्सा स्वयं कर सकते है। मात्र जानकारी अपनी इसी विशेषता के कारण यह चिकित्सा सबसे अधिक उपयोगी है।

जैन आगयो में मूल रंग पांच माने गए है एवं अन्य सभी रंग इन पांचों रंगों के मिश्रण से बनाये जाते है नीला, लाल, काला, पीला और सफेद से पांच मूल रंग है अन्य सभी रंग इन पांचों रंगों के मिश्रण से बनाये जाते है।

1 हरा – हरा रंग वास्तव में दो रंगों के मेल से तैयार होता है यदि पीला एवं नीला रंग समान अनुपात में मिलाया जाए तो हरा रंग बन जाता है।

2 आसमान – आसमानीरंग में भी दो रंगों का मेल है यह रंग सफेद एवं नीले रंगों का मिश्रण यदि नीला एवं सफेद रंग समान अनुपात में मिलाया जाय तो आसमानी रंग बन जाता है।

3 बैंगनी – बैंगनी रंग वास्तव में दो रंगों के मेल से बनता है। यह रंग नीले एवं लाल रंगों का मिश्रण है। यदि नीले एवं लाल रग को समान अनुपात में मिलाया जाये तो बैंगनी रंग बन जाता है।

4 नारंगी – नारंगी रंग वास्तव में उपर्युक्त रंगों की तरह ही दो रंगों का मेल हे यह रंग लाल और पीला रंग का मिश्रण है। यदि लाल रंग मिलाया जाय तो नारंगी रंग बन जाता है।

सूर्य किरणें सात रंगों का समूह है एवं सातों किरणें अलग – अलग रंगों की है। आज विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध हो गया है कि किरणों का अपना तापमान होता है क्योंकि पुंज रंगों का समूह है अतः यह भी कह सकते है कि रंगों का आपका तापमान होता है।

सूर्य किरणों में निहित गुणों के कारण समस्त बीमारियों की चिकित्सा मात्र सात रंगों की किरणों द्वारा ही की जा सकती है। जब किसी बीमारी में दवा का चुनाव करना पड़ता है तो इन सातों रंगों में से एक या दो रंगों का चुनाव करना ही चिकित्सा के लिए पर्याप्त है यह अत्यन्त सरल प्रक्रिया है इसके विपरीत एलोपैथिक, आयुर्वेदिक एवं होम्योपैथिक या युनानी चिकित्सा में चिकित्सक के सामने हजारों दवाओं में से बीमारी के लिए उचित दवा का चयन करना बेकार स्थिति उत्पन्न करता है उस स्थिति में उसे सावधानी एवं सतर्कता बरकनी पड़ती है यह एक जटिल और कठिन कार्य है। सूर्य किरण चिकित्सा मे औषधियों का निर्माण करना अत्यन्त सरल एवं सहज है न पीसना, न मिलाना न अर्क निकालना और न तो घोटना ही पड़ता है सूर्य चिकित्सा के लिये औषधियों के निर्माण के लिये किसी यंत्र या कारखने की आवश्यकता नहीं होती इसलिये मानव श्रम की भी आवश्यकता नहीं होती।

सूर्य चिकित्सा के प्रयोग में आने वाली औषधियां सात रंग की बोतलों में स्वतः ही तैयार हो जाती है एवं इसे सरलता से साधारण व्यक्ति भी प्रयोग कर सकता है इस चिकित्सा के लिये जानकारी प्राप्त करना बीमारी एवं चिकित्सा के सम्पर्क को समझना और इसको प्रशिक्षण प्राप्त करने मे 15 से 30 दिनों का समय पर्याप्त है।

सूर्य चिकित्सा की दवाईयां इतनी प्राकृतिक है कि इसका प्रयोग सीधा मानव पर करने से किसी भी प्रकार की कोई क्षति की आशंका नहीं होती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका कोई प्रतिकूल शरीर पर नहीं पड़ता जबकि अन्य पद्धतियों में प्रयोग होने

वाली दवा का शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा दवाइयें का शोध एवं प्रशिक्षण करने में ही हजारों प्राणियों का संहार हो जाता है।

सूर्य किरण चिकित्सा के संबंध में विद्वानों के मत –

सूर्य चिकित्सा पद्धति के कई विद्वान भारत एवं विदेशों में हुए इस चिकित्सा के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विभिनन मत एवं विचार है।

इन सभी विद्वानों के विचारो में एक समानता यह है कि यह चिकित्सा मानव शरीर के लिए वरदान है सूर्य – चिकित्सा मानव शरीर के लिए वरदान है सूर्य – चिकित्सा की विश्वसनीयता के लिये इन विद्वानों की राम जानता भी आवश्यक है।

1 डॉ. रोलैण्ड हण्टे – डॉ. रोलैण्ड हण्टे ने न्यूयार्क में अपनी पुस्तक ''दा सेवन कीम टक्लर हीलिंग'' में सूर्य चिकित्सा के संबंध में लिखते हुए कहां कि यह चिकित्सा उन समस्त बीमारियों की जड़ से नष्ट कर देती है। जिसका इलाज दूसरी चिकित्सा पद्धति में संभव नहीं है।

2 डॉ. जेम्स कुक – इनके अनुसार सूर्य प्रकाश में निस्सन्देह स्वास्थ्य वर्द्धक शक्ति है।

3 डॉ. फीर्ब्स विसलो – इन्होंने अपनी पुस्तक Light its influona on life and health में लिखते है यह मानी हुई बात है जो लोग अंधरे में रहते है व काम करते है उनके शरीर और मस्तिष्क के विकास में बांधा उत्पन्न होती है।

4 एस.जी.जे. आंसले – सूर्य चिकित्सा के संबंध में इग्लैण्ड की अत्यन्त लोकप्रिय किताब कलर मेडिटेशन में लिखा है यह चिकित्सा पद्धति मनुष्य को वरदान स्वरूप प्राप्त हुई है एवं इसका असरअलोकिक है।

5 डॉ. बेविर – इन्होने अपने लेखों में इस बात पर अधिक जोर दिया की शरीर में रक्त का प्रवाह सूर्य की गर्मी पर आधारित है।

डॉ. लिण्डा क्लार्क – इन्होने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम कलर थैरेपी है इसमें इन्होंने कहां कि सूर्य चिकित्सा द्वारा रोगों पर नियंत्रण ही नही पूरे शरीर को जीवाणु मुक्त भी किया जा सकता है।

7 डॉ. एल.जी. जे. ऑसली – इन्होंने अपनी 'द पावर ऑफ द रे' नामक पुस्तक में यह उल्लेख किया कि सूर्य चिकित्सा समस्त चिकित्साओं में सबसे विश्वसनीय एवं हानिरहित चिकित्सा है।

8 डॉ. बैबिट – सूर्य प्रकृति का प्रयोगशाला में विशेष स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तु है हर प्रकार के रोग चाहे वे कितने ही पुराने और जटिल हो सूर्य किरणों की सहायता से अच्छे किये जा सकते है सूर्य किरणों की सहायता से विजातीय पदार्थ जिसका होना ही रोग का मुख्यकारक है दूर करने में सूर्य की शक्ति कारजगर है सूर्य की किरण रक्त को शुद्ध करती है तथा उसके प्रवाह और शक्ति को बढाती है।

9 डॉ. एडविन – इन्होंने अपनी पुस्तक दी प्रिसीपल ऑफ लाइट एण्ड कलर में अपने जीवन के अनुभव लिखते हुए लिखा है कि उन्होंने अपने अधिकांश मरीजों के जटिल रोगों का इलाज सूर्य – चिकित्सा से ही किया है। एवं वे ठीक हुए है यहां यह उल्लेखनीय है कि डॉ. एडविन एलोपैथिक के विश्व प्रसिद्ध डॉक्टर थे।

10 डॉ. डब्ल्यू. उस. फ्रेजन – अल्ट्रा वाइलेट किरणें जीवाणु नाशक होती है ये वायुमण्डल को शुद्ध करती है आलोक की किरणें आकाश में विद्युत की लहरों द्वारा कंपन को जन्म देती है। जिसका आभास नेत्रों द्वारा हमोर शरीर की सूक्ष्म नाडियों को होता है। प्रकाश वहन रूप में भौतिक होते हुये भी सूक्ष्म ही है। प्रकाश को यदि प्रकृति का उत्साह कहा जाये तो अधिक युक्ति संगत होगा।

11 डा्. रिबन अम्बर (न्ययार्क) – यह न्यूर्याक के एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे। इन्होंने कई पुस्तकें लिखी जिसमें प्रसिद्ध पुस्तक 'कलर थैरेपी' में लिखते है कि रंगों की चिकित्सा कितनी महत्वपूर्ण है वह इन बातों से प्रमाणित होता है कि यदि किसी एलोपेथिक दवा की धूप में घंटों रख दिया जाय तो उसका असर या तो एक दिन

खत्म हो जाता है या बहुत अधिक बढ जाता है। धूप में लगातार रहने वाला फल सूख जाात है पर सड़ता नहीं है।

12 डॉ. एफ.जी. वेल्श – पूर्वी अफ्रीका के निवासियों की अदभूत शक्ति का रहस्य केवल उनका खुली हवा और प्रकाश में नंग शरीर रहना है डॉ. जेम्स सी. जेक्सन सूर्य प्रकारूा का सेवन से मस्तिष्क में चुम्बकीय शक्ति की वृद्धि होती है तो एक अनूठी चीज है।

13 डी.डी.एन. नारंग – यह दिल्ली के लोकप्रिय चिकित्सक रहे है उन्होंने अपनी पुस्तक क्रोमोपैथी में रंगों का प्रयोग चिकित्सा क्षेत्र का अनिवार्य अंग माना है एवं सिफारिश की है कि रंगों द्वारा असाध्य रोगों पर भी नियंत्रित पाया जा सकता है।

14 डॉ.हायरान – अपने समय के प्रसिद्ध रंग चिकित्सक रेने एडमीन ने अपनी पुस्तक 'कलर एण्ड यू' में लिखा है रंग चिकित्सा रंगों की तरह असर करने वाली चिकित्सा पद्धति है।

15 डॉ. सी.जी. सेन्टर – इन्होंने अपनी पुस्तक 'कलर इन हेल्थ' में लिखा है स्वास्थ्य को बनाये रखने एवं बीमारी में रंग चिकित्सा से उत्तम अन्य कोई चिकित्सा नहीं है।

16 डॉ. इवेन बी व्हीलेन – अपनी पुस्तक ' व्हाइट कलर मीन टू यू' नामक पुस्तक में लिखा है सूर्य चिकित्सा विश्व की सबसे पुरानी एवं विश्वसनीय चिकित्सा है।

इस प्रकार पता चलता है कि सूर्य चिकित्सा की विश्वसनीयता भारत में ही नहीं विदेशों में भी बहुत अधिक है। अतः हम कह सकते है कि रंग चिकित्सा का इतिहास जहां काफी पुराना है उसकी विश्वसनीयता की नीति भी उतनी गहरी है।

यह चिकित्सा अत्यन्त जुगम सरल एवं सस्ती होने के कारण आज के व्यस्त एवं खर्चीले युग में लोगों के मन में इसकी विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह् लग गया है। यदि यह चिकित्सा मंहगी एवं जटिल होती है वो निश्चित रूप से मनुष्य का आकर्षण इस चिकित्सा के प्रति अधिक रहता एवं मोह भी बना रहता।

8.5 सूर्य किरणों का शरीर पर प्रभाव

सूर्य चिकित्सा एक बहुत पुरानी प्राकृतिक रासायनिक तत्वों वाली चिकित्सा है सूर्य स्नान सतरंगी किरणों का मेल है इसके लाल हरे एवं नीले रंगों के गुण ही इस चिकितसा की मुख्य विशेषताएं है सूर्य की किरणें एवं इसके सात रंगों द्वारा हमारे शरीर को लाभ देने की उत्तम एवं लाभकारी तकनीक है सूर्य की किरणों के सात रंग समस्त रोगों में सफल इलाज के अतिरिक्त रोगों की स्वास्थ्य प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसीलिये होमोपैथी हानि रहित बिना लागत प्राकृतिक रासायनिक तत्व सूर्य देव अमूल्य आर्शीवाद से सुसज्जित है।

सूर्य किरण और रंग चिकित्सा एक पुरानी पद्धति के मूल सिद्धान्त वात पित्त तथा कफ की तरह ही शरीर में रंगों के घुअने बठने से रोगों की उत्पति मानी गयी है। रोग ज्ञात होने पर जिस रंग की शरीर में कमी हो उस रंग के पूर्ण हो जाने पर रोगों से छुटकारा पाया जाता है। इन रंगों की उत्पति के मूल स्रोत भगवान सूर्य स्वयं है। सूर्य के तेजस्वनी किरणें भिन्न–भिन्न रंगों को लिये हुए होती है जिनको उसी रंग की पारदर्शी बोतलों में जल के द्वारा अवशोषित किया जाता है।

जिस रंग की बोतल होती है उसमें भरे जल से सूर्य की किरणें उसी रंग के चिकित्सकीय गुण छोड देती है जिसकेकारण वह जल साधारण जल न होकर एक औषधि के रूप में तैयार हो जाता है। यद्यपि यह जल दिखने में साधारण ही लगता है परन्तु जिस रंग की बोतल में यह सूर्य की रोशनी में चार्ज किया हुआ होता है। उस रंग के पूर्ण चिकित्सकीय गुण इसमें समाहित होते है। इस प्रकार हर रंग का अपना विशेष गुण होता है। तथा इसका शरीर पर प्रभाव भी अलग अलग पड़ता है रंगों के अनुसार शरीर पर उसका पड़ने वाला प्रभाव निम्नलिखित है –

1 लाल किरणें – सूर्य की किरणों में 80 प्रतिशत अंश केवल लाल किरणों का ही होता है यह बहुत तीव्र तथा गर्म होती है यह किरणें हमारी त्वचा द्वारा सोख ली जाती है। इन किरणों का कार्य हमारे शरीर में उर्जा तथा उष्मा प्रदान करना है स्नायु मण्डल पर प्रभाव डाल कर उसे अर्जित करती है। लाल रंग का विभिन्न प्रकार से प्रयोग कर लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

लाल कपड़े – लाल रंग के अस्तर की बनी रजाईयां सर्दियों में ओठने से रक्त हीनता तथा गठिया में लाभ मिलता है। लाल रंग के वस्तु शरीर की दुर्बलता दूर कर उज्म प्रदान करते है घुटने के दर्द एवं पैर के तलवें ठण्डे रहने पर लाल रंग के मौजे लाभ पहुंचाते है। क्योंकि लाल रंग उर्जा प्रदान करता है। अतः इस रंग के वस्त्र धारण करने पर शरीर में चंचलता का अनुभव होता है।

लाल रंग का प्रकाश – लाल रंग का सेवन प्रकाश के रूप में भी किया जा सकता है इसके लिए इन्फारेड लेम्प या सेलोफिन पेपर का प्रयोग कर किया जा सकता है। यह प्रयोग वायु से जोड़ो में उत्पन्न दर्द, सूजन, मोच, लकवा शीतांग तथा स्नायु मण्डल से उत्पन्न सभी रोगों में लाभकारी है इस रंग के प्रकाश का सेवन शरीर को निर्जीव भाग को चौलन्यता प्रदान करता है।

लाल रंग से तृप्त जल – प्रयोग कर शरीर मे ंइस रंग की पूर्ति कर विभिन्न रंगों को दूर किया जाता है। परन्तु लाल रंग से संतृप्त जल का सेवन सावधानी पूर्वक ही करना चाहिए क्योंकि इस रंग की अधिकता शरीर के तंत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है यदि भूल से यह जल पी लिया जाय तो खून के दस्त होने का भय रहता है इस रंग से तृप्त जल का प्रयोग प्राय लगाने और अंग विशेष की मालिश करने के काम आता है परन्तु कुछ अन्य रंगों से तृप्त जल के साथ लाल रंग से तृप्त जल को भी दिया जा सकता है। यह रोग आंखों में पड़ने से आंखों की क्षति ग्रस्त होने की सम्भावना बनी रहती है।

लाल रंग से तृप्त तेल – इस रंग की किरणों से तृप्त तेल भी तैयार किया जा सकता है। जिसका प्रयोग मालिश के लिये किया जाता है। इसका प्रयोग जोड़ों के दर्द, कमर दर्द या गठिया में जोड़ों पर होने वाले दर्द में प्रयोग किया जाता है। जिनके पैर के तलवे ठंडे रहते है। या जिन्हें सर्दी या कफ से संबंधित विकार हो उस स्थिति में तलबों पर इस तेल की मालिश की जा सकती है।

लाल रंग के फल और सब्जियां – लाल रंग के फलों और सब्जियों का सेवन कर शरीर मे ंइसरंग की पूर्ति की जाती है।

लाल रंग के फल जैसे सेब, खजूर, चैरी, स्ट्रोबेरी, लीची आदि तथा सब्जियों जैसे गाजर, टमाटर, लाल शिमला मिर्च, लाल चौलाई आदि के सेवन से शरीर में उत्पन्न लाल किरणों की कमी पूरा किया जा सकता है।

शरीर में लाल रंग की वृद्धि – शरीर में लाल रंग की वृद्धि त्वचा में सूजन आ जाती है एवं गर्मी के विकार उभर आते है। दस्त जल मुंह के छाले उच्च रक्त चाप आदि शरीर में लाल रंग की वृद्धि के कारण है।

शरीर में लाल रंग की कमी – शरीर मे ंलाल रग की कमी से सुस्ती अधिक होती है। निद्रा बढ़ जाती है। भूख घट जाती है कब्ज होने लगती है। आंखे व नाखून नीले दिखाई देते है।

2 नारंगी किरणें – यह रंग भी गर्मी प्रदान करता है यह रंग पुराने रोगों में पहले तीन दिनों तक देकर पेट साफ कराने के पश्चात् ही रोग विशेष का उपचार किया जाता है। यह रंग दमा लकवा वात व्याधियों तथा नसों की बीमारी में लाभकारी सिद्ध होती है।

नारंगी रंग के कपड़े – लाल रंग की भांति ही यह रंग भी शरीर को गर्मी प्रदान करता है। अतः इस रंग के बस्तो का प्रयोग कर लाल रंग के वस्त्रों का ही लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

नारंगी रंग का प्रकाश – नारंगी रंग के प्रकाश को लकवा वाले भाग, दर्द वाले भाग, जोड़ के दर्द आदि पर प्रयोग कर छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है।

नारंगी रंग से संतृप्त जल – नारंगी रंग की बोतल की सूर्य की किरणों में रखकर तैयार किया जल बढ हुई तिल्ली मूत्राशय तथा आंतों की शिथिलता, उपदंश आदि रोगों में भी दिया जा सकता है।

नारंगी रंग से सतृप्त तेल – इस तेल का प्रयोग शरीर के दर्द में किया जाता है। खासी या दमा होने पर छाती पर इस तेल की मालिश लाभकारी सिद्ध होती है।

नारंगी रंग के फल एवं सब्जियां – नारंगी रंग के फलों एवं सब्जियों का सेवन कर इस रंग की कमी को दूर किया जा सकता है। इस रंग का फुल जैसे कीनू, संतरा रस भरी, पपीता आदि सब्जियों में गाजर शिमला मिर्च आदि।

5 पीली किरणें – यह रंग लाल एवं नारंगी रंग से कम गर्म होता है तथा बाकी रंगों से गर्म होता है। इस रंग की कमी से पेट संबंधित विकार गुल्म रोग, शूल, पसली का दर्द, मसूड़ों का दर्द योनिजन्य शूल, कृमि, दिल का रोग, फेफड़े का रोग, कोष्ठ बढता तथा शोध उत्पन्न हो जाता है। इस रंग की वृद्धि से शरीर में दर्द उठना धड़कन दर्द आदि उत्पन्न हो जाते है। इस रंग के बढ़ने से लाल और नीला रंग मिश्रित के जो कुप्रभाव होते है वे मिट जासते है। वात तथा कफ जनित्र रोगों का यह रंग शीघ्र दूर करता है। इस रोग की पूर्ति करने के लिये इस रंग के वस्त्र धारण किये जा सकते है।

पीली किरणों से तृप्त जल – पीली किरणों से तृप्तजल का सेवन इसकी कमी से उत्पन्न रोगों को दूर करने में लाभकारी होता है पीली किरण तृप्त जल थोड़ा थोडा कुछ दिनों तक पीने से लाभ होता है। परन्तु अधिक मात्रा में पीने से पेट में गर्मी बढ सकती है। इस जल का सेवन किया जा सकता है तथा मालिश के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

पीली किरणों से तृप्त फल एवं सब्जियां – इस रोग के फलों जैसे केला, अनानास, खरबूजा आदि तथा सब्जियां जैसे सीताफल, पीली शिमला मिर्च आदि का प्रयोग कर इस रंग की पूर्ति में मदद मिलती है।

4 हरी किरणें – इसका स्वभाव मध्यम है। यह रंग आंख और त्वचा के रोगों में विशेष उपकारी है। इस रंग का शरीर में पकने वाले सड़ने वाले, बढ़ने वाले धुरगन्ध युक्त और किसी भी दवा से न अच्छा होने वाले विकार दूर किये जा सकते है यह रंग शरीर में ठंडक पहुंचाता है। ज्ञानन्तओं और स्नायु मण्डल को बल देता है स्वप्न दोष का नास करता है। हरा रंग मस्तिष्क की गर्मी को शान्ति करने और आंख के रोगों में अचूक है इस रंग का प्रयोग से समय से पहले सफेद बाल फिर से काले होने लगते है।

हरे रंग के वस्त्र – हरा रंग शरीरको ठण्डक प्रदान करके हरे रंग की वृद्धि की जा सकती है। जिसको गर्मी खुजली या नासूर आदि चर्म विकार हो उन्हें हरे रंग के वस्त्र पहनने चाहिए इससे हाथ पांव का फटना, दर्द खाज फोडा, गंजरक्त पित आदि ठीक हो जाते है।

हरी किरणों से तृप्त जल – हरी किरणों से तृप्तजल पीने के पट्टी रखने के इसी जल से तैयार मिट्टी तथा जल की मालिश के लिए प्रयोग किया जाता है। शरीर के भीतर की गर्मी की समाप्त करने के लिए और उससे उत्पन्न रोगों को नष्ट करने के लिए हरे रंग से तृप्त जल का प्रयोग किया जाता है। यह जिगर आंखों और त्वचासे संबंधित विकारों में लाभप्रद है।

हरी किरणें से तृप्त तेल – इस तेल के द्वारा मस्तिष्क की गर्मी शान्त होती है बालों में लगाने से बाल काले रहते है। सिर के पिछले भाग में लगाने से स्वप्न दोष तथा धातु सम्बन्धी रोग दूर होते अनिद्रा तथा कर्ण रोगों में इस तेल को कान में डालते है। जिससे कर्ण विकार नष्ट हो जाता है।

हरे रंग के फल एवं सब्जियां – हरे रंग के सभी फल और सब्जियां इस रंग की पूर्ति करने में सहायक सिद्ध होती है। जैसे अमरूद, नारियल, हरा सेब, हरे अंगूर नाशपाती आदि तथा सब्जियां जैसे पालक, मैथी, बथुआ, बंदगोभी परमल फलियां आदि।

5 आसमानी किरणें – इस रंग की किरणें ठंडक और शान्ति प्रदान करती है। यह शरीर की गर्मी को दूर करती है। तथा गर्मी की अधिकता से होने वाले रोगों को दूर करती है। जैसे श्वास, कास, सिर पीडा, पेचिस, अतिसार, संग्रहणी मस्तिष्क के रोग प्रयेह, पथरी, मूत्र विकार आदि यह रंग सब रंगों में श्रेष्ठ है। यह जीवन शक्ति में वृद्धि करता है। यह शान्ति का प्रतीक है। इसके प्रयोग निम्नलिखित है।

आसमानी रग के वस्त्र – इस रंग के वस्त्र शरीर और मन में शान्ति बनाने में सहायक है। उच्च रक्त चाप में इस रंग के वस्त्र धारण करने चाहिए।

आसमानी रंग से तृप्त जल – आसमानी किरणेां से तृव्त जल का प्रयोग प्रायः सभी रोगों में किया जाा सकता है। यह जल गले के छालों, पीव, रूधिर बहाव आदि में लाभप्रद हैं। यह जल पीने पट्टी रखने आदि के काम में लता है किसी जहरीले कीड़े या साफ द्वारा काटे जाने पर इस जल में भीगी पट्टी उस स्थान पर रखने से लाभ मिलता है।

आसमानी रंग से तृप्त तेल – इन किरणेां से तृप्त तेल की मालिश करने से शरीर गठीला हो जाता है तथा बल वर्द्धक भी है। सिर में इस तेल की मालिश ठंडक प्रदान करती है।

नीली किरणें – इस रग की कमी से मनुष्य ज्वर अतिसार एवं पेट के मरोड आदि रोग में पीड़ित हो जाता है। यह मस्तिष्क को शान्त रखता है।

नीले रंग के वस्त्र – इस रंग केवस्त्र शरीर को ठण्डक पहुंचाते है तथा त्वचा से संबंधित विकारो ंसे लाभप्रद है।

नीली किरणों से तृप्त जल – इन किरणों से तैयार जल का सेवन कर शरीर की गर्मी को शान्त करने में सहायता मिलती है। इस जल के कुल्ला करने से गले का रोग टांसिल, मुंह के छाले आदि ठीक हो जाते है। अति ज्वर होने पर टांसिल मुंह के छाले आदि ठीक हो जाते है। अति ज्वर होने पर इस जल की औषधिय मात्रा दी जाती है।

नीली किरणों से तृप्त तेल – इन किरणों में तैयार तेल से असमय बालों का सफेद होना, कडा हो तो रूसी होना उनका गिरना तथा सिर दर्द इत्यादि में लाभ मिलता है। यह तेल बालों की वृद्धि तथा दिमाग पर और शांत रखता है।

7 बैंगनी किरणें – यह रंग भी नीले और हरेरंगकी भांति शीतल है यह शरीर का ताप सन्तुलित करता है। इस रोग की कमी शरीर में गर्मी बढ़ाता है। इस रंग की कमी से हैजा, अतिसार, प्रलाप, आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। इस रंग का प्रयोग भी उन्हीं रोगों को ठीक करने में किया जाता है। जो नीले व आसमानी रंगों की कमी से होते है। जो पागल कुत्ते के काटे मस्तिष्क दौर्बल्य तथा हृदय की

धड़कन में बैंगनी किरण तप्त जल लाभ करता है। ये विद्युत किरणें भी कहलाती है। जिन पर पृथ्वी के सभी प्राणियों का जीवन निर्भर है।

8.6 सूर्य किरण चिकित्सा एवं चक्र

1 योग शास्त्र के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध तथा मन की संचलता को दूर करने का उपाय स्वस्थ शरीर और मन में आध्यात्मिक विचारों का वास होना माना गया है। जिसका शरीर पूर्व रूप से स्वस्वस्थ्य होगा तथा मन शांत होगा वही वृत्तियों का अभाव होना सम्भव होता है। योग शास्त्र में मन को भटकने से रोकने के लिए शरीर में मौजूद 7 चक्रों पर ध्यान किया जाता है तथा प्रत्येक चक्र पर ध्यान लगाते हुए कुण्डालिनी शकित का जागरण सम्भव होता है।

इन चक्रों पर ध्यान लगा कर शरीर में उर्जा को संतुलित किया जा सकता है तथा उज्र के असन्तुलन से उत्पन्न शरीर व्याधियों को भी समाप्त किया जा सकता है । सात चक्रों का सम्बन्ध सूर्य किरण में स्थित सात रंगों से होता है। हमारे शरीर में स्थित सात चक्रों का अपना एक विशेष रंग होता है जैसे मूलाधार चक्रपर लाल रंग, स्वाधिष्ठान चक्र पर हरा, विशुद्धि चक्र पर हल्का नीला, आज्ञा चक्र पर गहरा नीला रंग और सबसे ऊपर सहस्त्रार चक्र पर बैंगनी रंग है। प्रत्येक चक्र पर विशेष रंगहोता हैजो मन, बुद्धि और संस्कारों से जीवन को जोड़ता है ओर प्राण शकित का संचार करता है। इन चक्रो पर इनके विशेष रंग का ध्यान लगाकर या प्रकाश डाल कर उस चक्र की उर्जा में वृद्धि करके अर्थात् चक्रो में होने वाले विकारों को दूर किया जा सकता है। यह चक्र हमारे मेरूदण्ड पर गुदा भाग से लेकर सिर की चोटी तक अलग अलग स्थान पर होते है तथा प्रत्येक चक्र जिस स्थान पर स्थित होता है उस भाग के अंगों को प्रभावित करता है। जब चक्रो की उर्जा में कुछ कमी होती है तो उस स्थान के अंगों में व्याधि उत्पन्न होने लगती है। इन उत्पन्न होने वाली व्याधियों को उस स्थान स्थित चक्र के विशेष रंग के द्वारा पुनः उर्जा मान किया जा सकता है तथा रोगों को दूर किया जा सकता है रोगी के विशेष चक्र पर टार्च द्वारा विशेष रंग का प्रकाश डाल कर इस उपचार को किया जा सकता है। यदि रोगों की मानसिक और शारीरिकी स्थिति सामान्य

हो तो वह अपने रोग से संबंधित चक्र पर उससे सम्बन्धित विशेष रंग के ध्यान भी कर सकता है। इसे विशेषत की देख रेख में ही करना चाहिए। इस प्रकार सूर्य किरण में स्थिति सप्त रंगों को सीधा संबंध हमारे चक्रों और उनसे संबंधित तंत्रों और अवयवों से भी होता है। जिन्हें सरलता से समझकर अपनी छोटी समस्या को दूर किया जा सकता है।

2 सूर्य किरणों के द्वारा जल तैयार करना – सूर्य चिकित्सा के सिद्धान्त के अनुसार रोग उत्पति का कारण शरीर में रंगों का घटना – बढ़ना है। सूर्य किरण चिकित्सा के अनुसार अलग अलग रंगों के अलग अलग गुण होते है। लाल रंग उत्तेजना और नीला रंग शक्ति पैदा करता है। इन रंगों का लाभ लेने के लिए रंगीन बोतल में आठ नो घण्टे तक पानी रखकर उसका सेवन किया जाता है। यदि रंगीन बोतल में न मिले तो उस रंग का सिलोफिन कागज बोतल पर लपेटकर उसमें जल को तैयार कर प्रयोग किया जा सकता है।

8.8 संदर्भ ग्रंथ

1 वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ.पी. सक्सेना

2 प्राकृतिक आयुविज्ञान – अरोग्य सेवा प्रकाशन

3 जटिल रोगों की सरल प्राकृतिक चिकित्सा

4 प्रथम भाग – सूर्य किरण चिकित्सा – राजेश दीक्षित

इकाई : 9 - वायु तत्व का अर्थ (विधि एवं उपयोगिता)

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.2.1 वायु तत्व का अर्थ विधि एवं उपयोगिता

9.2.2 वायुमुद्रा विधि एवं लाभ

9.2.3 वायु तत्व एवं सूर्यनमस्कार

9.2.4 सूर्य नमस्कार के लाभ

9.2.5 प्राणायाम परिभाषा – विधि एवं प्राणायाम मंत्र

9.2.6 प्राणायाम एवं त्रिबन्ध

9.2.7 जालंधर बंध विधि एवं लाभ

9.2.8 उड्डियान बंध विधि एवं लाभ

9.2.9 मूल बंध विधि एवं लाभ

9.2.10 महाबंध विधि एवं लाभ

9.2.11 प्राणायाम नियम – आहार काल – स्थान संबंधित नियम

9.2.12 दैनिक 6 प्राणायाम एवं उनकी विधि तथा लाभ

9.2.13 स्वास्थ्य संवर्धन में वायु तत्व की महत्तता

9.3 सारांश

9.4 बोधात्मक प्रश्न

9.5 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.1 प्रस्तावना –

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत प्रस्तुत इकाई में वायुतत्व (प्राण तत्व) द्वारा जीवन एवं रोगों को दूर करने की विधि का वैज्ञानिक महत्व वर्णित है।

स्वस्थ जीवन मनुष्य सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति है। यदि आरोग्यता नहीं है, स्वास्थ्य नही ंतो जीवन निरर्थक एवं भारस्वरूप है। रोगी मनुष्य पुरूषार्थ चतुष्ट्य अर्थातृ धर्म, अर्थ, काम का उपभोग स्वयं नहीं कर सकता एवं मोक्ष भी प्राप्त नहीं कर सकता। जीवन को कठिनाईयों विपत्तियों पर

विजय प्राप्त करने में असहाय रोगी व्यक्ति होता है। समाज जीवन में धनी एवं गरीब सभी निरोग एवं स्वस्थ तथा सुखायु

वायुतत्व (प्राण वायु) की महती आवश्यकता है।

इस भौतिक संसार में वायुतत्व अर्थात् प्राणवायु मूल्यवान से मूल्यवान सुन्दर से सुन्दर और बलवान से बलवान है। सृष्टि की उत्पत्ति–स्थिति एवं विनाश तीनों सिद्धान्तों में वायुतत्व का महत्व है। वायु तत्व द्वारा विशेष प्रकार के तीन लाभ शरीर रूपी मंदिर को प्राप्त होते हैं।

1 आक्सीजनयुक्त वायु 2 आन्तरिक सूख्म व्यायाम एवं 3 सकारात्मक जीवन शैली। आज के इस तनाव भरे जीवन में मेडिरेशन (ध्यान) योगासन–प्राणायाम : सूर्य नमस्कार, त्रिबन्ध आदि वायुतत्व की विधियों द्वारा जीवन शैली जन्य रोग, वायु के 80 प्रकार के रोग तथा आनुवंशिक रोगों में सतत अभ्यास से व्याधिक्षमत्त्व बल बढ़ाते हुये आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है।

वायुतत्व (प्राण वायु) की महती आवश्यकता है।

इस भौतिक संसार में वायुतत्व अर्थात् प्राणवायु मूल्यवान से मूल्यवान सुन्दर से सुन्दर और बलवान से बलवान है। सृष्टि की उत्पत्ति–स्थिति एवं विनाश तीनों सिद्धान्तों में वायुतत्व का महत्व है। वायु तत्व द्वारा विशेष प्रकार के तीन लाभ शरीर रूपी मंदिर को प्राप्त होते हैं।

1 आक्सीजनयुक्त वायु 2 आन्तरिक सूख्म व्यायाम एवं 3 सकारात्मक जीवन शैली। आज के इस तनाव भरे जीवन में मेडिरेशन (ध्यान) योगासन–प्राणायाम : सूर्य नमस्कार, त्रिबन्ध आदि वायुतत्व की विधियों द्वारा जीवन शैली जन्य रोग, वायु के 80 प्रकार के रोग तथा आनुवंशिक रोगों में सतत अभ्यास से व्याधिक्षमत्त्व बल बढ़ाते हुये आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है।

पंचमहाभूतों के अन्तर्गत क्रमशः 1 आकाश 2 वायु 3 अग्नि 4 जल एवं 5 पृथ्वी ये पांच तत्व आते हैं। सर्वप्रथम सर्वगुण सम्पन्न ईश्वर द्वारा आकाश तत्व की उत्पत्ति हुयी। तत्पश्चात दूसरा तत्व वायु की आकाश तत्व से उत्पत्ति हुयी। वायु तत्व में 2 गुण ''शब्द एवं स्पर्श'' होते हैं। वायु में ''गत्यात्मक तत्व प्रधानता से होता है। बाह्य जगत में देखा जाय तो वायु तत्व द्वारा वृक्षों को हिलाना, सर्वत्र गतिशील होना, गन्धादि युक्त पदार्थों को घ्राणादि इन्द्रियों के पास ले जाना, शब्दों को कर्णेन्द्रिय (श्रवणेन्द्रिय) के पास ले जाना, तृणादि को एकत्र करना तथा शारीरिक दृष्ट्या समस्त इन्द्रियों को गति कराना, उनमें कार्यशक्ति प्रदान कराना आदि वायु तत्व के कार्य है।

सम्पूण सृष्टि में पंचमहाभूतों के द्वारा जीवनशक्ति एवं शरीर की परिपृष्टि होती है। हमारे शरीर में आकाश तत्व, वायुतत्व एवं अग्नि तत्व द्वारा शारीरिक जीवन शक्ति का तथा जल एवं पृथ्वी तत्व अर्थात् भोजन से शरीर का पोषक होता है। वायु तत्व प्राणियों का प्राण ही है। प्राण पांच प्रकार के होते है।

पंच प्राण एवं पंच वायु दोनो एक ही है जो शरीर की सजीवता को धारण किये हुये है।

1 प्राण वायु

2 उडान वायु

3 व्यानवायु

4 समानवायु

5 अपान वायु

वायु का महत्व – आधुनिक मतानुसार वायु तत्व ही प्राणतत्व है जिसे हम ''ऑक्सीजन'' भी कह सकते है। सृष्टि में सामान्यतः वृक्षादि कार्बन डाई ऑक्साइड (Co_2)वायु का अवशोषण करके जीवित रहते है और उसके बदले में वे ऑक्सीजन (o_2) उत्सर्जित (छोड़ते) करते हैं। ''ऑक्सीजन'' से प्रकाश एवं ताप दोनों की उत्पत्ति होती है।

वायुमण्डल द्वारा प्राणियों में ऑक्सीडेशन का कार्य होता है जिससे शरीर की अंतिम इकाई कोशिका सजीव रहती है। वायु तत्व के द्वारा शरीर के विभिन्न अंग एवं अवयवों को रक्त में स्थित लाल कणों तक ऑक्सीजन के माध्यम से शरीर की प्रत्येक सूक्ष्म कोशिकाओं को प्राणवायु (o_2) पहुंचाया जाता है। यही जीवन है। जो वायु तत्व पर निर्भर करता है। वायु के बारे में एक लोको वित है कि ''सौदवां एवं एक हवा''।

प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से प्रातः काल का भ्रमण पवन–स्नान या वायु सेवन कहलाता है। इसे Air Both या Morning Walk भी कह सकते हैं। प्रातः काल सूर्योदय के पूर्व बिना बात किये स्वच्छ सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में चहां चारों और हरियाली हो, शीतल – सुगन्धित मन्द बयार (वायु) बह रही हो ऐसी वायु का सेवन शरीर के बाह्य एवं आन्तरिक अवयवों को आरोग्यता प्रदान करती है।

Air Bath या Morning Walk से शरीर एवं मन दोनों प्रसन्न रहते हैं जिससे रोग दूर होकर स्वास्थ्य लाभ होता है। हमारे शरीर में त्वचा के असंख्य छिद्रों के द्वारा भी किञ्चित पवन स्नान होता रहता है। नासिका द्वारा प्राणवायु का लेना एवं त्वचा छिद्रों द्वारा भी प्राणवायु का शरीर में प्रवेश या पवन स्नान की भी प्राण तत्वों का शरीर में प्रवेश या पवन स्थान की उपयोगिता में लाभकारी है। ताजावायु अर्थात शुद्ध वायु के सेवन के

कब्जियत, हृदय रोग मधु महादि उच्चव्यान एवं मोटापा आदि जीवन शैली के रोगों से मुक्ति दिलाने में सराहनीय है।

वर्ष पर्यन्त प्रातः काल हल्के वस्त्र पहनकर वायु स्नान आनन्दायक होता है। स्वाभाविक रूप से टहलने (संचक्रमण) से शरीर के सभी अंगों को मांसमेशियों को, फेफड़ों को सशक्त बनाया जाता है। वायु स्नान के लिये प्राकृतिक वातावरण में प्रसन्न मन के साथ टहलने से ही आरोग्य प्राप्ति होती है। कृत्रिमवायु अर्थात् पंखे, ए.सी. में टहलने से लाभ होता क्योंकि कृत्रिम बिजली जनित वायु में पवन स्नान करने से यह वायु उदान वायु दूषित कर देती है जिसमें सम्पूर्ण शरीर मे ंत्वचा के नीचे स्थित व्यानवायु अवरूद्ध होकर परिणामस्वरूप चक्कर आना (भम्र) एवं संधियों में गठिया आदि रोगों को बढ़ाने में सहायक होती है। कृत्रिम वायु के सेवन से ही पाचन, दोस, खांसी, श्वसनतंत्र के रोग, दुर्बलता आदि विकार शरीर में उत्पन्न होते है।

वायु स्नान के समय गहरी श्वास लेने का एवं गहरी श्वास निकालने का सतत् अभ्यास जो कि थकाने वाला नहीं हो करना चाहिये। इससे शरीर की संजीवनी अर्थात् प्राण शक्ति में अभिवृद्धि होती है। वायु स्नान के समय शरीर के साथ साथ मानसिक प्रसन्नता आनन्द की स्थिति अनुभव करना चाहिये। क्योंकि प्रसन्नता आनन्द का सभी इन्द्रियों के स्वस्थता में महत्वपूर्ण योगदान है। यथासम्भव नंगे पैर एवं नंगे बदन प्रकृति की गोद में वायु स्नान करने से शरीर में स्फूति आती है। त्वचा स्वस्थ एवं लचीली तथा कोमल होती है। शरीर की आभा एवं तेज बढ़ता है। शरीर की बाहरी एवं भीतरी सफाई होती है। विजातीय द्रव्यों का निष्कासन होता है। जीवन शक्ति बढ़ती है। आयु में वृद्धि होती है। वायु के 80 प्रकार के रोग दूर होते हैं। स्नायु दौर्जल्य, अनिद्रा, स्वप्न दोष, कब्ज, मोटापा, सर्दी–जुखाम दूर होता है। शरीर में कांति – चमक बढ़ती है।

वायु तत्व के अन्तर्गत प्राणवायु – योगासन – सूर्य नमस्कार एवं प्राणायाम आदि का प्राकृतिक चिकित्सा में समावेश होता है।

वायुमुद्रा : हमारे शरीर का पांच अंगुलियों में पंचमहाभूत के पांचों तत्वों का स्थान होता है। 1 अंगूठे Thumb इसमें अग्नि तत्व 2 तर्जनी Index Finger में वायु तत्व 3 मध्यमा Middle Finger आकाश तत्व 4 अनामिका Ringh Finger पृथ्वी तत्व 5 कनिष्ठा सबसे छोटी अंगुली Small Finger जल तत्व की होती है।

वायु मुद्रा विधि – इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम तर्जनी अंगुलि को अंगुठे की जड़ में लगाकर तर्जनी को उपर अंगूठे से दबाने पर वायु मुद्रा बनती है।

वायुमुद्रा के लाभ – वायु मुद्रा से 80 प्रकार के वायु के रोगों जैसे आमवात, पक्षापात, वातकम्प, गठिया जोड़ों में या शरीर मे ंदर्द ये सभी नियमित वायु मुद्रा के अभ्यास से ठीक होते है।

वायुतत्व में सूर्यनमस्कार '

सूर्यनमस्कार भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रातः काल पूजा का एक अंग है। पूजा के साथ साथ यह एक प्रकार का सम्पूर्ण व्यायाम भी है। सूर्य नमस्कार 12 आसनों का संग्रह है। 12 मंत्रों के साथ सूर्याभिमुख होकर जिन्हें श्वास की प्रत्येक आसान में पूरक कम्मक – रेचक आदि में से निर्धारित श्वसन क्रिया द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

12 आसनों में सड्चक्र अर्थात् मूलाधार चक्र, रचाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञाचक्रम आदि उद्दीप्त होते है।

सूर्य नमस्कार के लाभ –

1 शरीर के सभी अंग प्रत्यंग बलिष्ठ एवं निरोग होते है।

2 मेरूदण्ड (कमर) लचीली बनती है।

3 उदर आन्त्र आमाशय – अग्नाशय – हृदय–फुफ्फुस सहित सम्पूर्ण शरीर स्वसथ बनता है।

4 हाथ पैर – भुजा – जंघा कंधा आदि अंगों की मांसपेशियां चुस्त एवं सुन्दर होती है।

5 शारीरिक बल – मानसिक शांति बढ़ती है।

6 रक्त संचार बढ़ने से मुंह की कांति एवं शोभा बढ़ती है।

7 मोटापा कम होता है।

8 फुफ्फुसों की कार्यक्षमता बढ़ती है।

9 विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकलते हैं।

10 शरीर के सभी अंगों का व्यायाम एवं पोषण होता है।

11 हार्मोनल बेलेन्स होता है।

12 स्मरण शक्ति तेज होती है।

13 कार्य करने की कुशलता बढ़ती है।

14 जीवन शैली जन्य रोग, हद्रोग, मधुमेह – मोटापा – कब्जी – थायोराइड ठीक होते है।

15 मानसिक एवं मानसिक आरोग्यता प्राप्त होती है।

प्राणायाम की परिभाशा –

तस्मिन सति – श्वास श्वास योर्गतिविच्छेद : प्राणायामः।

योगदर्शन 2/49

अर्थात् श्वास प्रश्वास की गति को यथाशक्ति नियंत्रित करना प्राणायाम है। संक्षेप में शरीर में व्याप्त प्राण शक्ति को उत्प्रेरित संचरित, नियमित एवं संतुलित करना प्राणायामक का उद्देश्य है। वायु तत्व अर्थात् प्राण तत्व यानि शारीरिक दृष्ट्या ''श्वास की क्रिया'' तीन प्रकार की होती है।

''प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचक पूरक कुम्भवैः।। योगि याज्ञ

वर्ण त्रयात्मका हचेते रेचक पूरक कुम्मकाः।।6/2–3

पूरक अर्थात श्वास अन्दर लेना, कुम्भक अर्थात श्वास रोकना

एवं रेचक अर्थात श्वास बाहर छोड़ना।

1 श्वास – सांस लेना, ऊंचा सांस 2 प्रश्वास – श्वास फैलाना सांसों का प्रसार एवं विस्तार करना 3 उच्छवास – सांस अंदर एवं सांस बाहर निकालना 4 निः श्वास – शब्दहीन श्वास, जिसमें किसी प्रकार की आवाज ना निकले।

प्राणायाम विधि –

1 प्राणायाम करते समय रीढ़ की हड्डी (मेरूदण्ड) सीधा होनी चाहिये। प्राणायाम करने हेतु ध्यानात्मक आसन सिद्धासन, पद्मासन, सुश्वासन, वज्रासन में बैठकर परि शतिरिक्त अस्थ्वस्थता। परिस्थितिवश हो तो कुर्सी पर भी सीधे बैठकर प्राणायाम कर सकते हैं, परन्तु रीढ़ की हड्डी को सदा ही सीधा रखकर प्राणायाम

करें। रीढ़ सीधा होने से प्राणशक्ति का उत्थान होता है एवं सभी चक्रों का जागरण होता है मन का भी निग्रह होता है।

प्राणायाम मंत्र –

आइम् भूः। ओइम भुवः। ओइम स्वः। ओइम महः। ओइम जनः। ओइम तपः। ओइम सत्यम्ः।

अर्थात् (ऊँ) जो सर्वरक्षक (भूः) प्राणों से प्रिय, जीवन का हेतु (भुवः) सर्वविधदुःखें का विनाशक (स्वः) सर्वव्यापक, सुख – स्वरूप तथा धर्मात्मजनों को सुख देने वाला (महः) सबसे बड़ा पूज्य है। (जनः) सब जगत का उत्पादक हैं। तपः (ज्ञानस्वरूप तथा दृष्टों का सन्तापकारी है। (सत्यम्) अविनाशी तथा परम सूक्ष्म होने से जीवों और प्रकृति में भी व्यापक है, वह मेरी शुद्धि करके छल–कपट आदि दोसों से रक्षा करें।

प्राणायाम में उपयागी बन्धत्रय एवं महाबन्ध

प्राणायाम के अन्तर्गत बन्धों के द्वारा शरीर से जिस गति का बहिर्गमन होता है उसे रोककर अन्तमुखी करते हैं। बंध का अर्थ ही बांधना/रोकना है।

तीन प्रकार के बन्ध : –

1 जालन्धर बंध

2 उड्डियान बंध

3 मूल बंध

हठयोग प्रदीपिका में विस्तार से त्रयबंधों एवं महाबंध की क्रिया विधि एव ंउनसे होने वाले स्रामों के बारे में वर्णन मिलता है।

1 जालंधर बंध विधि – पक्ष्माासन या सिद्धासन में सीधे बैठकर श्वास को अन्दर भरते हैं। दोनों हाथ घुटनों पर टिकाये रखते है तथा ठोड़ी को नीचे झुकाते हुये कंठकूप में लगाना जालंधर बंध कहलाता है।

दृष्टि भूमध्य के, छाती आगे तनी हुयी रहती है।

जालन्धर बंध के लाभ –

कंठ मधुर, सुरीला एवं आकर्षक होता है। थायोराइड, हांसिल, स्वरभेद आदि गले के रोगों में लाभदायक। कूड़ा–पिगला नाड़ियों को बंद होने से प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है जिससे विशुद्धि चक्र जागृत होता है।

2 उड्डियान बंध –

उड्डियान बंध विविध –

खड़े होकर दोनों हाथों को सहज भाव से दोनों घुटनों पर रखते है। तत्पश्चात् श्वास बाहर पेट को ढीला छोड़ते हुये उपर उठाते हैं। यथाशक्ति करने के बाद पुनः श्वास लेकर, रेचक करते हुये बाह्यकुम्भक कर पुनः क्रिया करते हुये अभ्यास बढ़ाते है।

उड्डियान बंध के लाभ –

पेट संबंधी रोगों को दूर करता है।

अंगों को जाग्रत करते हुये मणिपुर चक्र का शोधन करता है।

3 मूलबंध

सिद्धासन या पद्मासन में बैठकर या अभ्यान्तर कुम्भक करते हुये गुदाभाग एवं मूत्रेन्द्रिय को उपर की ओर आकर्षित करते हैं। इसके बाह्य कुम्भक लगाने की सुविधा रहती है एवं नाभि के नीचे वाला हिस्सा खींचता है।

लाभ – मूलबंध से अपान वायु का क्षेत्र स्वस्थ रहता है। अर्शन्मगन्दर आदि रोगों से मुक्ति मिलती है। मूल मत्र के वेगों में सामान्यता आती है।

4 महाबंध

पद्मासन में या किसी ध्यानात्मक आसन में बैठकर तीनों बंधों को एक साथ लगाना महावैद्य कहलाता है। बाह्यकुम्भक कर क्रमशः तीनों मूल बंध – उड्डीयान बंध एवं अन्त में जालन्धर बंध लगाते है।

लाभ – प्राण ऊर्ध्वगामी होता है।

वीर्य शुद्धि एवं बल वृद्धि होती है।

इड़ा पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का संयम होता है।

वायुतत्व के अन्तर्गत प्राणायाम के लाभ –

1 पाचन तंत्र स्वस्थ होकर पेट की बीमारियां दूर होती है।

2 मस्तिष्क हृदय–फुफ्फुस संबंधी रोग दूर होते है।

3 रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

4 दीर्घायु प्राप्त होती है।

5 स्मरण शक्ति बढ़ती है।

6 शरीर स्वस्थनी रोगी एवं मेद का संचय (मोटापा) कम होता है।

7 शरीर की नाडियां, रक्त वाहिनियां शुद्ध होती है।

8 शरीर के सुस्ती दूर होती है।

9 जाठराग्नि बढ़ती है।

10 कब्जी दूर होती है।

11 भुख सामान्य लगती है।

12 मन की एकाग्रता बढ़ती है।

13 मन की चंचलता दूर होती है।

14 आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत होती है।

15 उदर–यकृत–मूत्राशय, क्षुद्रांस और वृहदात्रं प्रभावित होकर कार्यक्षम बनती है।

16 वातफितकफ त्रिदासों का प्रकोप शान्त होता है।

17 विजातीय द्रव्य नष्ट होते हैं।

18 सकारात्मक सोच – विचार – चिन्तन उत्साह प्राप्त होती है।

19 काम क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि दोस नष्ट होते है।

20 मन में एकाग्रता, स्थिरता – प्रसन्नता उत्पन्न होकर तनाव दूर होता है।

21 षड्चक्रों की शुद्धि होती है।

22 मुख पर दीप्ति ओग, तेज आकर प्रकाांति बढ़ती है।

23 वंशानुगतरोग बीपी, शुगर, कुष्ठ से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

24 रक्त की शुद्धि होती है।

25 स्त्रियों एवं पुरूषों के जननांग सहित योन रोग दूर होते है।

26 मोटापा–मधुमेह–कोलेस्ट्राल कब्जी, एसिडिटी, एलर्जी श्वसन रोग, माइग्रेन, किडनी के रोग दूर होते है।

27 हार्ट ब्लोकेज दूर होते है।

28 शारीरिक थकान दूर होकर गहरी निद्रा आती है।

जीवन में ऊर्जा , पवित्रता एवं सकारात्मक शक्ति का संचय होता है। शारीरिक एवं मानसिक व्यवहार के संतुलन बना रहता है। मन पर आया असत्, अविद्या एवं क्लेश रूपी तमस् का नाश होता है।

प्राणायाम हेतु आवश्यक नियम – आहार – काल स्थान संबंधी नियम –

- शुद्ध – सत्विक एवं निर्मल स्थान पर प्राणायम करे,
- यथासम्भव प्राकृतिक मनोहट वातावरण में जलाशय के समीप बैठकर करें तो श्रेष्ठ रहेगा।
- मन को स्थिर एवं एकाग्र करने का अभ्यास करें।
- ब्रह्माचर्य का पालन करें।
- भोजन साच्विक व दूध – घी एवं फलत तथा फलों का रस सेवन करें।
- प्राणायाम करते समय मुंह, आंख, नाक आदि अंगों पर तनाव न लावें। सहजावस्था एवं प्रसन्न मुद्रा में मुखाकृति रखें।
- ग्रीवा मेरूदण्ड वक्ष कटिको सीधा रखें।
- श्वसन क्रिया धैर्य के साथ नियमपूर्वक मन लगाकर करें।
- गर्भवती महिला, भूख से पीड़ित एवं ज्वर के रोगी प्राणायम नहीं करें।
- प्राणायाम ऋतु एवं प्रकृति के अनुकूल करें। सूर्यभेदी ग्रीष्म में, चन्द्र भेदी शीत ऋतु में कम करें।

- प्राणायाम खाली पेट भोजन से 5–6 घंटे पूर्व करें।
- प्राणायाम बैठने की आसनी, विघुत की कुचालक यथा कम्बल/चटाईन्द्रिरी का प्रयोग करें।
- प्रदूषण युक्त स्थान पर प्राणायाम नहीं करें।
- गुरू की देख रेख में प्राणायाम अभ्यास करें।
- प्राणायाम प्रतिदिन निश्चित समय पर भूखे पेट करें।
- बिना थकावट के प्रणायाम करें। प्राणायाम के बाद ताजगी एवं स्फूर्ति महसूस करें।
- प्राणायाम में पूरक कुम्भक ओर रेचनक की क्रिया धीमी लम्बी गहरी हो।
- मध्य गति एवं मध्यम शक्ति से प्राणायाम करें।
- प्राणायाम करते समय आंखों यथासम्भव कोमलता से बंद करें।
- प्राणायाम में शुभ संकल्प प्रणव ऊँ का उच्चारण सर्वप्रथम करें।

दैनिक प्राणायाम विधि

1 मस्तिका प्राणायाम – पद्मासन या सुखासन में सुविधापूर्वक बैठकर दोनों नासिकाओं से श्वसन को पूरा अन्दर महा प्राचीरा पेशीतक मरना एवं बाहर की पूरी शक्ति के साथ मस्तिका प्राणायाम कहलाता है। 3 से 5 मिनट की अवधि तक एकाग्रभाव से मस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए।

मस्त्रिका प्राणायाम के लाभ –

जाठरानिन प्रदीप्त होती है। सर्दी–जुकाम, एलर्जी, श्वास रोग, पुरान वजला, साइनस आदि दूर होते हैं। फुफ्फुस बलशाली बनते हैं। थायोराइड एवं टोन्सिल सहित गले के रोग दूर होते हैं। शुद्ध प्राण वायु मिलने से ग. हृदय एवं मस्तिष्क दोनों स्वस्थ होते है।

सावधानियां – हाई ब्लड प्रेशर एवं हार्ट पेशेन्ट मन्द गति से मस्त्रिका प्राणायाम करें।

ग्रीष्म ऋतु में अधिक समय तक नहीं करें।

2 बाह्यप्राणायाम –

ध्यानासन में बैठकर श्वास को एक ही बार में बाहर निकालकर बाहर ही रोकना – बाह्य कुम्भक या बाह्य प्राणायाम कहलाता है। बाह्य कुम्भक पश्चात क्रमशः मूलबंध, उड्डियान बंध व जालन्धर बंध लगाते हैं। श्वास लेने की इच्छा होने पर क्रमशः जालन्धर, उड्डियान एवं मूल बंधन हटाते हुये पूरक करते हैं।

बह्य प्राणायाम के लाभ –

उदर रोगों में लाभदायक

जाठराग्नि को बढ़ाता है।

मन की एकाग्रता बढ़ती है।

स्वप्न दोष, शीघ्रपतन दूर होता है।

वीर्य की ऊर्ध्वगति होती है।

बन्धयतत्व – श्वेतप्रदर–रक्त प्रदर एवं मर्ग शियगत रोग दूर होते है।

अनुलोम – विलोम प्राणायाम –

सर्वप्रथम दाये हाथ के अंगुष्ठ से दायी नासिका को बंद कर बांयी नासिका से धीरे – धीरे श्वास लेते है। श्वास पूरा भरने के बाद अनामिका एवं कनिनिका अंगुलि से वामनासिका बंद कर दाहिने नाक से पूरा श्वास बाहर निकालते हैं तथा पुनः दायी नासिका से पूरक कर बाय नासिका से श्वास छोड़ना अनुलोम विलोम प्राणायाम कहलाता है।

अनुलोम विलोम प्राणायाम से लाभ –

1 हार्ट की धमनी एवं शिराओं में आये हुये अवरोध खुल जाते है।

2 वातफ्तिकफजन्य रोग यथा संधिवात – आमवात – गठिया – कम्पवात स्नायुदौर्लबहित्य? सर्दी–जुकाम, प्रतिश्याय, श्वास कास आदि रोगों में लाभ मिलता है।

3 कोलेस्ट्रॉल, ट्राइग्लिसराइड्स एचडीएल, एलडीएल की अनियमिताऐं दूर होती है।

4 सकारात्मक सोच बढती है एवं तनमन के विकार दूर होते है।

सावधानियां –

सर्वप्रथम वामस्वर (चन्द्रशक्ति) से प्रारम्भ करें।

जिस नासापुर से रेचन करते हैं उसी से पूरक करते है लाम्बा गहरा श्वास पूरक एवं रेचक में बिना आवाज के करते हैं। दूड़ा पीड़ा के द्वारा सुषुम्ना जाग्रत होने का भाव क्रम में रखें।

4 भ्रामरी प्राणायाम –

भ्रामरी प्राणायाम विधि – भ्रमर की भांति गुंजन करते हुये नाद रूप में ''मकार'' का उच्चारण करते हुये श्वास को बाहर छोड़ना भ्रामरी प्राणायाम कहलाता है। सर्वप्रथम पूरक करते हुये मध्यमिका अंगुलियों से नासिका मूल को मन्द दबाते हुये अंगूठे से दोनों कानों को पूरा बन्द कर भ्रमर की भांति गुंजन करते हुये रेचक करते हैं एवं मन को आज्ञा चक्र में केन्द्रित करते है।

भ्रामरी प्राणायाम से लाभ – मन की चंचलता दूर होती है। मानसिक तनाव, उत्तेजन दूर होती है।

हृदय के रोगों में लाभकारी है।

ध्यान के लिये महत्वपूर्ण है।

विद्यार्थियों में याददाश्ती को बढ़ाता है।

भ्रामरी प्राणायाम में सावधानियाँ –

आंखे कोमलता से बंद, मकार का ताल से गुंजन करें।

कर्ण गुहा में दोनों हाथों के अंगूठे से दबाते हुये करें।

न्यनतम तीन बार से 21 बार तक करें।

उदगीथ प्राणायाम –

श्वास – प्रश्वास पर मन को केन्द्रित कर ''ओइम'' का ध्यान कर ओइम का उच्चारण करते हुये दीर्घ रेचक करते हैं। रेचक इतना धीरे करें कि श्वास की अनुभूति मीन हो यदि नासिका के आग रूई या लाल रख दे ंतो हिले नहीं।

उद्गीथ प्राणायाम के लाभ

1 निद्रा अच्छी आती है।

2 तनाव दूर होता है।

3 दिव्य आनन्द की प्राप्ति होती है।

4 मानसिक रोग दूर होते है।

6 अग्निसार प्राणायाम – पद्मासन बैठकर हथेलियां घुटनों पर रखकर बाह्यकुम्भक करते हुये उदर का आकुंचन प्रसारण अर्थात् एबडोमन पम्पिंग करते है।

अग्निसार प्राणायाम का लाभ –

1 विजातीय द्रव्यों के निष्कासन में सहायता

2 जाठराग्नि प्रदीप्त होती है।

3 श्वसन तंत्र पुष्ट होता है।

4 हृदय की आंतरिक रक्त प्रणाली मजबूत होती है।

5 पेट का मोटापा कम होता है।

6 कब्जी दूर होती है।

7 नौलि क्रिया में सहायक होता है।

वायु तटव की उपयोगिता –

पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मूलघातवाः।

वायुनायग नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेधवतः।। भार्डगधर संहिता अर्थात पित्त दोष, कफ दोस, शरीर के मूल मूलादि, सात धातु में सभी पंगु है, केवल वायु ही सक्षम है – शक्तिवान है जो इन सभी की क्रियायें करवाती हैं। नमस्कृत्य वायवे –

''वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः, प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्तकश्रेष्नामुच्चावचानां, नियन्ता प्रणेता च मनसः, सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः, सवेन्द्रियार्थानिममिवोढ़ा, सर्वशरीर धातुव्यूहकरः, संधानकरः शरीरस्थ, प्रवर्तको वाचः, प्रकृतिः स्पर्शशब्दयों श्रोत्रस्पर्शननियोर्मलं, हर्षोत्साहयोयोनिः, समीरणोऽग्नेः दोषस्मंशोषणः, क्षेप्ता बहिर्मलानां, स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता, कर्त्ता गर्भाकृतीनाम् आयुसोऽनुकृत्ति भवत्यकपितः।।

चरक संहिता सूत्र स्थान।।

आचार्य चरक वायु की उपयोगिता बताते हुये कहते हैं कि वायु देवता को नमस्कार है। यह वायु शरीर रूपी तन्त्र एवं शरीरावयवों रूपी यंत्र को धारण करने वाली है ।

1 प्राण 2 उड़ान 3 सयान 4 ब्यान और 5 अपान।

इन पांचों की आत्मा है, वायु शारीरिक सभी उच्चावच चेष्टाओं अर्थात् क्रियाओं का प्रवर्त है। वायु ही मन का नियंत्रण तथा प्रणयन करती है। सभी इन्द्रियों को अपने अपने विषयों को ग्रहण करने में प्रवर्त करती है।

वायु ही मन का नियंत्रण एवं प्रणयन करती हैं। सभी इन्द्रियो को अपने अपने विषयों को ग्रहण करने में प्रवृत्त कराती है। सभी इन्द्रियों को स्वयं ग्रहण कर एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने वाली होती है। शरीर के सभी धातुओं जैसे रस, रक्त, मांस, मेद अस्थि, मज्जा, शुक आदि को अपने अपने कार्यों में लगाती है, तथा अपने अपने स्थान और मात्र में स्थित रखती है। शरीर का संधान अर्थात गर्भावस्था में अस्थि एवं पेशियों को यथास्थान जोड़ना वाणी को प्रवृन्त करना, स्पर्श और शब्द की प्रकृति का कारण, स्पर्शज्ञान की अनुभूति, शब्द की उत्पत्ति, कान एवं त्वचा के निर्माण में मूल कारण वायु तत्व ही होता है।

इसी प्रकार शरीर में हर्ष (आनन्द) तथा उत्साह होने में वायु ही कारण होती है। यह वायु जाठ रामिन को तेज करती है। दोषों को सुखाती है। शरीर के मल अर्थात विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालती है। बड़े बड़े एवं छोटे स्रोतों/शरीस्थ मांर्गों का भेदन करती हैं, गर्भ की आकृतियों को निर्माण कराने वाली तथा अकुपित वायु तत्व शरीर के प्रत्येक कार्य को सुचारू रूप से करती हुई आयु के परिपालन में कारणभूत वायुतत्व ही सर्वोपरि होता है। शरीर में वायु को ही प्रधान माना गया है।

वायु तत्व ही शरीर रूपी तन्त्र यन्त्र घर है। यदि प्राणवायु शरीर से निकल खाये तो शीघ्र मृत्यु हो जायेगी।

वायु तत्व ही अन्न को शरीर के भीतर ले जाती है एवं प्राण को धारक होती है। शरीर को समग्र रूप से ''धारण करना'' ही वायुतत्व का कार्य है।

यदि वायुतत्व कुपित हो जाय तो इससे 80 प्रकार के रोग होने की सम्भावना रहती है। यह कुपित वायुतत्व शरीर के बल, वर्ण, सुख एवं आयु के नाश का कारण होती है। मन को दुःखी करती है। गर्म को नष्ट करती है, शरीर तथा मन में भय, शौक, मोह, दीनता आदि उपद्रव करते हुये प्राणों का नाश करती है।

वायुतत्व द्वारा प्राणायामदि क्रियाओं के परिणामस्वरूप तीन प्रकार के विशेष लाभ प्राप्त होते हैं।

1 ऑक्सीजनयुक्त रक्त

2 आन्तरिक सूक्ष्म व्यायाम

3 सकारात्मक जीवन शैली

वायु तत्व हमारे शरीर में प्राणों के धारण करने हेतु महत्वपूर्ण है। यह प्राण तत्व कोशिका एवं अंगावयवों में होने वाली निक्रोसिस या क्षरण की प्रक्रिया को रोकने के कारण श्रेष्ठ ऑक्सीडेन्ट है।

वायुतत्व में ध्यान क्रिया द्वारा श्वसन द्वार तनाव एवं डिपेशन (अवसाद) से मुक्ति मिलती है। लम्बे गहरे, एवं मंदगति के श्वासों से कछुओं की तरह आयु बढ़ती है।

नाड़ी संस्थान पर स्वास्थ्यानुकूल प्रभाव होता है। रक्त में शर्करा नियंत्रण में रहती है। ह्रदयगति भी सामान्य होती है। विभिन्न प्रकार के वायु तत्व की प्राणायाम विधियों के अन्तर्गत भिन्न भिन्न प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलती है। उदाहरण के लिये संक्षेप में मस्त्रिका से – शिर – नासा – ग्रीवा, गले के रोग , अनुलोम विलोम से इड़ा पिंगाला कुंडलिनी शक्ति का जागरण श्वास द्वारा ह्दय गति संतुलन भ्रामरी एवं उद्गीथ प्राणायाम से मन की एकाग्रता नींद अच्छी आना, मन की शांति मिलना, याददास्ती बढ़ाना आदि अनेक प्रकार के वायु तत्व से लाभ मिलते है। सभी प्राणायामों से अंतःस्रावी ग्रंथियों का स्राव संतुलित एवं सुचारू होता है। निष्क्रिय पड़े फफ्फुसों के वायुकोषों में प्राणवायु का

संचार होकर फुफ्फुसों सहित सम्पूर्ण शरीर के विजातीय द्रव्यों का निष्कासन होने से आरोग्य प्राप्ति होती है।

सारांश

प्रस्तुत इकाई में पहला एवं सच्चा सुख निरोगी काया के परिप्रेक्ष्य में आरोग्य प्राप्ति में वायुतत्व का विवेचन किया गया है।

मनुष्य दे हके पंच प्राण, चिकित्सकीय दुष्टिकोण से वायु के शरीर एवं पाञ्चभौतिक प्रकृति में रूपी सृष्टि में महत्व का वर्णन किया है। आज के यांत्रिक तथा प्रतिस्पर्धा के युग में मनुष्य शरीर के साथ साथ मानसिक रूप से अधिक मनोरोगों से पीड़ित होता जा रहा है। ऐसे में इस इकाई में वर्णित वायुमुद्राऐं, सूर्यनमस्कार विधि मंत्र प्राणायाम विधि मंत्र, बन्ध महाबंध आदि द्वारा मन को प्रसन्न एवं शांत कर आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है।

वस्तुतः वायुतत्व के द्वारा दैनिक जीवन में सतत् अभ्यास रूपी साधना द्वारा जटिलतम रोग, आनुवंशिक रोग तथा असाध्य रोगों पर भी विजय प्राप्त होने में सहायक है।

बोधात्मक प्रश्न

1 वायुतत्व से आप क्या समझते हैं? इसकी चिकित्सकीय उपयोगिता वर्णित कीजिये।

2 वायुतत्व के अन्तर्गत, प्राणायाम एवं सूर्यनमस्कार की विधियाँ, सावधानियाँ एवं लाभ का वर्णन कीजिये?

3 प्राणायाम एवं बंधत्तम की विधि एवं लाभ का वर्णन कीजिये?
4 प्राणायाम – योगासनों द्वारा शरीर एवं मन पर वैज्ञानिक प्रभावों का विवेचन कीजिए?
5 आरोग्य प्राप्ति में वायु तत्व की विधियों सहित महत्व का वर्णन कीजिए।

संदर्भ गंथ सूची

प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – श्री रोकश जिन्दल
वृहद् प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ.पी. सक्सेना
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र – आचार्य स्वामीनाथन् शोसाद्रि
प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग – डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
पातज्जल योगदर्शन एवं सूर्यनमस्कार का स्वास्थ पर प्रभाव – डॉ. नित्यानन्द शर्मा

इकाई : 10 – उपवास (आकाश तत्व) का अर्थ, महत्व एवं विभिन्न प्रकार के उपवास विधियां

इकाई संरचना

10.0 परिचय

10.1 उद्देश्य

10.2 उपवास और आरोग्य

10.3 उपवास और भूखमरी

10.4 उपवास के चार कारण

10.5 उपवास का महत्व एवं प्रकार

10.6 सारांश

10.7 बोधात्मक प्रश्न (अभ्यासार्थ)

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.0 प्रस्तावना :–

प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास को ब्रह्मास्त्र की संज्ञा दी गई है। शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में उपवास बडी शीघ्रता से करता है। यही विजातीय द्रव्यों रोगों का मूल कारण है। उपवास कितना अधिक लाभकारी माना गया है। उतनी ही सावधानीयां एवं बारिकियां उपवास को करने व उपवास करने वाले चिकित्सक को ध्यान में होती है।

दिन प्रतिदिन होने वाले नवीन शोधों से यह स्पष्ट होता जा रहा है कि उपवास स्वयं में ही एक सम्पूर्ण चिकित्सा का काम करती है। प्राकृतिक चिकित्सा में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध हुआ है। जब रोग की स्थिति खराब होती चली जाती है वैसी अवस्था में एक ही रास्ता दिखाई देता है। वह है उपवास, प्राकृतिक चिकित्सानुसार सब रोगों का मूल विजातीय द्रव्य ही है। और विजातीय द्रव्य को नियंत्रित करने का सर्वोत्तम उपाय है उपवास हमारे धार्मिक ग्रंथों के अनुसार उपवास का महत्व विशेष स्थान रखता है। इसलिए एकादशी नवरात्रि इत्यादि पर्वो पर तथा सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार, शनिवार साप्ताहिक व्रत का भी प्रावधान

किया गया है। यह केवल शारीरिक शुद्धि का ही शोध नहीं है। अपितु मानसिक एवं अध्यात्मिक स्वास्थ्य में बहुत अधिक उपलब्धि प्राप्त नहीं हुई महात्मा गांधी जी ने भी उपवास का सहारा लेकर अनेकों आन्दोलनों अहिंसात्मक रहे उपवास से पाचनतंत्र को विश्राम तो मिलता ही है साथ ही मन के विचार भी नियन्त्रित होकर सन्तुलित बन जाते है इस प्रकार हम कह सकते है कि हमारे शरीर में मुख्य भूमिका निभाने वाली जीवनीय शक्ति भी उपवास द्वारा सुदृढ बनती है।

10.1 उद्देश्य :– इस इकाई का उद्देश्य उपवास के विषय में निम्न बिन्दुओं का अध्ययन करना है–

1. उपवास का अर्थ व परिभाषा
2. विभिन्न प्रकार के उपवास,
3. उपवास का महत्व
4. उपवास की विभिन्न विधियां
5. उपवास द्वारा जीवन में आरोग्यता प्राप्त करना
6. उपवास के दिनो में उभाड से रोगी में आने वाली प्रभावों को जानना।

10.2 उपवास और आरोग्य :–

आयुर्वेद ने कहा है, आहारं पचति शिखि दोषानाहारवजितः – अग्नि भोजन को पचाती है और जब शरीर में खाद्य नहीं रहता, तब यह दोषों को पचाती है।

हम जो खाते है श्वास वायु के साथ ग्रहीत ऑक्सीजन के संयोग से वह हल्के रूप से जलकर हमारे शरीर के काम में आता है। जब हम उपवास करते है तब शरीर में ऑक्सीजन ग्रहीत होता है वह नयें खाद्य के अभाव में पुराने खाद्य के अवशेष को तथा शरीर के दूषित पदार्थों को धीरे–धीरे जला डालता है। (डा. चुनीलाल बसु एम. बी. – खाद्य पृष्ठ 256)

इसके अतिरिक्त उपवास से लाभ होता है इस कारण से कि यह शरीर के भिन्न–भिन्न यंत्रो को साफ करने का अवसर होता है। हम जो खाते है उसे हजम करने के लिए को यथेष्ट शक्ति लगानी पडती है। जब हम भोजन बंद करते है, तब वह शक्ति शरीर को दोषमुक्त करने के काम में लग जाती है। कभी–कभी केवल एक दिन उपवास करने रहने से मुंह और श्वांस दुर्गन्धयुक्त हो उठता है। प्रकृति शरीर के कोने–कोने समस्त कूडा कचरा बाहर निकाल देती है इसीलिये ऐसा हुआ करता है।

इस प्रकार उपवास के एक ओर से जैसा शरीर को दूषित संच कोष तथा तंतुओं के पिंजरे से मुक्त होता है। वैसा ही वह अपने आप ही शरीर के अन्दर जल भी जाता है। इसीलिए दीर्घ उपवास में रक्त विशुद्ध होता है शरीर का विष जलकर खाक हो गया है और शरीर के विभिन्न यंत्र नूतन तैयार हो जाते है।

उपवास के फलस्वरूप पाक स्थली विशेष रूप से शक्ति प्राप्त करती है पाकस्थली के अंदर कोई सूजन रहने से वह सूख जाता है। पाकस्थली यदि बडी हो तो वह पुनः संकुचित होता है। और यदि झूल गई हो तो फिर से अपने स्थान पर वापस आ जाती है।

इसके द्वारा दुर्बल यकृत और मूलयंत्र का स्वास्थ्य वापस आ जाता है। उसके फलस्वरूप शरीर का स्वास्थ्य ही सुधार जाता है। विविधपूर्वक उपवास करने से आंखों को दृष्टिशक्ति तथा कानों को श्रवण शक्ति बढती है।

आश्यर्च की बात यह है कि वजन बढाने का यह श्रेष्ठ उपाय है। जो लोग बहुत दुर्बल होते है। वे साधारणतः बहुत अधिक खाते है। किंतु उससे उन्हें कोई लाभ नहीं होता। उपवास से शरीर के परिपाक, परिपोषण तथा देहात्मीकरण की क्षमता बढती है। इसी कारण उपवास के बाद खाद्य ग्रहण करने के साथ ही धीरे–धीरे वजन बढता है और अन्तः में शरीर को उचित वजन प्राप्त होता है।

प्लूटार्च ने कहा है औषधि का उपयोग करने के बदले एक दिन उपवास करों।

प्रकृति में हम देखते है कि पशु–पक्षीयें को कोई रोग होते ही वे उपवास करते है। उपवास के द्वारा ही वे आरोग्य लाभ करते है। वास्तव में संसार में मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियों की एकमात्र चिकित्सा उपवास ही है। इसलिए यही प्रकृति की निजी चिकित्सा–विधि है।

साधारण छोटी व्याधियां दो–तीन के उपवास से ही अधिकांश क्षेत्रों में अंकुर ही विनष्ट हो जाते है। जो रोग दो तीन दिनों के उपवास के आरोग्य होने को नहीं, उपवास से उनकी प्रबलता अत्यन्त कम हो जाती है और पद्धति के अनुसार उपवास चलाते रहने पर जो रोग अन्य किसी प्रकार अच्छे नहीं होते, अनेक अवस्थाओं में वे अच्छे हो जाते है। वातव्याधि, अजीर्ण, यकृत–रोग, पथरी, दमा ओर चर्मरोग आदि में मनुष्य जीवन भर कष्ट पाता है। किंतु पद्धति के अनुसार उपवास ग्रहण करने में इन सारी असाध्य व्याधियों से आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है।

रक्तचाप संधि–प्रदाह, एपेंडिसायटिस, मूत्रग्रन्थि प्रदाह और स्थूलता आदि में भी उपवास के द्वारा आरोग्य प्राप्त किया जाता है। वास्तव में प्रायः सभी असाध्य रोग में ही उपवास से लाभ होता है। क्योंकि हमें जो कोई भी बीमारी होती हों, देह–संचित, विभिन्न विष और कचरा ही उसका प्रधान कारण है। जब दीर्घ उपवास से यह विष जल जाता है तब सभी रोग अच्छा हो जाते है।

नये रोगों में एक बार मात्र उपवास करना ही पर्याप्त होता है। और यह भी बहुत अधिक दिनों तक करने की आवश्यकता नही होती। किंतु पुरानी व्याधियों में सदैव दीर्घ उपवास की आवश्यकता हुआ करती है।

कितने दिनों तक उपवास करना आवश्यक है सदैव ही रोगी और रोग की अवस्था पर निर्भर करता है। साधारणतः असाध्य व्याधियों में दीर्घ उपवास की आवश्यकता होती है। जब एक साथ दस दिन या उससे अधिक उपवास किया जाता है। तब दीर्घ उपवास कहा जाता है। और उपवास यदि तीन से सात दिनों तक किया जाये तो उस अल्प उपवास कहा जाता है। मैकफाडेन का कहना है कि केवल एक से तीन दिनों तक खट्टा जातीय फल या फल का रस लेकर रहने से ही उपवास आरंभ करने के लिए जो कुछ करना आवश्यक है। वह हो जाता है। उपवास आरंभ करने के लिए जो कुछ करना आवश्यक है वह हो जाता है।

उपवास आरंभ करते ही आंत के अंदर मल सुखकर एकदम काला हो जाता है। इसलिए उपवास आरंभ करने के पहले दिन त्रिफला आदि के द्वारा केवल एक दिल के लिए पेट को साफ कर लेने से अत्यंत लाभ होता है।

लंबे उपवास में जो कुछ कष्ट होता है वह साधारणतया दो–तीन दिन तक ही रहता है। इसके बाद यह कम हो जाता है। इन्हीं कई दिनों तक भोजन ग्रहण करने की इच्छा बहुत कष्ट देती है। किंतु आरंभिक कई दिनों तक भोजन करने के नियत समय के पहले यदि काफी मात्रा में पानी पी लिया जाये तो भूख की तीव्रता उतनी अधिक नहीं सतायेगी।

बहुतों की यह धारणा है कि उपवास निर्जल होना चाहिए। इससे बढकर और कोइ गलती हो नहीं सकती। सभी प्रकार के उपवास में नींबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिए। उपवास से जो विकार शरीर में जलता है, पानी उसे धो भगाता है पर

एक साथ कभी भी अधिक पानी नहीं पीना चाहिए। बल्कि बार–बार यहां तक कि प्रति घंटे नींबू के रस के साथ एक गिलास पानी पीया जा सकता है।

भोजन बंद करने के साथ–साथ प्रायः हमेशा स्वाभाविक पाखाना होना बन्द हो जाता है। किन्तु जिस नाबदान से शरीर का अधिकांश विकास बाहर हुआ करता है, यदि वही बन्द हो जाये तो उपवास से लाभ पाना मुश्किल हो जाये। इसी कारण लम्बे उपवासी में प्रतिदिन रोगी को डूस देकर उसके कोष्ट को साफ कर देना चाहिये। फिर भोजन प्रांरभ करने के बाद भी कई दिनों तक डूस लेने की आवयकता पडती है।

उपवास के कारण जो विकार शरीर में भस्म होता है खून उसे विभिन्न भागों में शरीर से बाहर निकाल देता है। इसी कारण सामयिक रूप से रक्त में विकार रहने के कारण इस समय शरीर में कितने रोगों के लक्षण प्रकट होने लगते है। इस समय जिसके अंदर जितना अधिक रोग लक्षण प्रकट होता है? समझना चाहिये कि उसके लिए उतने दीर्घ उपवास की आवश्यकता है।

इस अवस्था में रोगी कभी–2 रोगी के सिर में दर्द होता है पेट फुलता है सिर घूमता है अनिन्द्रा प्रकट होती है अथवा ज्वर–सा मालूम पडता है। इन अवस्थाओं में प्रतिदिन डूस लेने से नींबू के रस के साथ काफी मात्रा में पानी पीने से दिने मे तीन बार सिर धोकर भीगे गमछे के द्वारा समस्त शरीर पोंछ डालने से और यथेष्ट रूप में विश्राम लेने से थोडे समय में ही ये सब रोग–लक्षण अन्तर्हित होते है। किंतु जो लोग धीरे–धीरे उपवास में अभ्यस्त होते है उनके अंदर प्रायः ही ये लक्षण प्रकट नहीं होते।

उपवास की प्रारंभिक अवस्था में थोडा हल्का परिश्रम करना आवश्यक है। इस समय का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम टहलना ही है। इच्छा होन से रोगी घरेलू काम भी कर सकता है। किंतु जिस प्रकार उपवास की अवधि बढती जाय, परिश्रम भी उसी मात्रा मे कम करते जाना चाहिये यदि रोगी खूब कमजोर महसूस कर तब उसे पूरा विश्राम करना जरूरी है। यथासंभव रोगी की खूली जगह में लंबी अवधि तक रहना चाहिये और प्रतिदिन श्वास–प्रश्वास का व्यायाम लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त दैनिक स्नान करना आवश्यक है।

साधारणतया उपवास करने के दो–एक दिनों में ही जीभ पर लेप सा चढ जाता है। और श्वास–प्रश्वास तथा मुंह से दुर्गन्ध निकलने लगती है। ये सभी लक्षण यह

प्रमाणित करते है कि शरीर में काफी मात्रा में दूषित पानी का संचय हो रहा था। और उपवास का सुयोग पाकर पद्धति सभी उपयों से इसे निकाल बाहर करने की चेष्टा कर रही है। इस प्रकार के लक्षणों को देखकर समझना चाहिये कि रोगी के लिए यह उपवास नितांत आवश्यक था। जब तक शरीर निर्दोष नहीं होता तब तक यही अवस्था चलती रहती है। उसके बाद कुछ दिनों तक उपवास करने के बाद जैसे जैसे शरीर विकार–रहित हो जाता है जीभ भी उसी तरह गुलाबी होती जाती है, श्वास–प्रश्वास भी उतना ही निर्मल होता जाता है, नाडी तथा शरीर का ताप स्वभाविक हो जाता है और प्रभात के प्रकाश की तरह क्षुधा की एक प्रकार की अनिवेचनीय मधुर अनुभूति जग उठती है। तक समझना चाहिये कि शरीर विकास रहित हो गया और उपवास तोडा जा सकता है।

उपवास भंग करने से पहले इस अवस्था का आना अत्यन्त आवश्यक है। इस अवस्था के आने के पहले इस अवस्था का आना अत्यन्त आवश्यक है। इस अवस्था के आने के पहले उपवास तोडने पर उसका असली फल नहीं मिलता। केवल व्यर्थ का कष्ट होता है।

पर कृत्रिम भूख को स्वाभाविक भूख समझने की भूल नहीं करनी चाहिये। क्षुधा एक दुर्लभ अनुभूति है। बहुत लोग जिन्दगी भर उसे जानने का सुयोग्य नहीं पाते कि भूख क्या चीज है। हर रोज भोजन के निश्चित समय पर खाने की इच्छा हो जाती है परंतु भूख नहीं रहती हम लोग मर्म से उसे ही क्षुधा मान बैठते है। उपवास में इस प्रकार की कृत्रिम भूख लगने पर पानी पीकर या दूसरी ओर मन लगाकर इस इच्छा को रोकना आवश्यक है जीभ आदि के साफ हो जाने के बाद जो असली भूख लगती है। केवल उसी को क्षुधा समझना उचित है।

लंबा उपवास करना तो बहुत ही आसान है, पर उपवास तोडना कठिन है। यदि ठीक प्रकार से उपवास न भंग किया जाय तो उपवास के समस्त प्रकार नष्ट हो जा सकते है। तथा उपकार के बदले अनिष्ट हो सकता है। अधिक दिनों तक काम करने के कारण लंबे उपवास के अंत में पाकस्थली सामयिक रूप से बडी हो जाती है। इस अवस्था में पहले ही पहले अधिक फल देने से कोई भी तकलीफ हो सकती है। इसी कारण पाकस्थली की धीरे–धीरे फिर से भोजन ग्रहण का आदी बना लेना उचित है।

उपवास के बाद पहले कई दिनों तक केवल सरल पथ्य ही ग्रहण करना उचित है। पहले दिन गरम पानी फल के रस के साथ मिलाकर पीकर उपवास भंग करना

चाहिये। उपवास तोडने के समय पहले कमला नींबू, मौसंमी आदि फलों का एक छटाक रस गरम जल मे मिलाकर लेना उचित है। पहले दिन में तीन–तीन बार लेना उचित है। एक तृतीयांष जल में मिलाकर कमला नींबू का रस उपवास तोडने के लिए सर्वश्रेष्ठ है। यदि फल रस न मिले, तो परबल, नेनुआ, धनियां की पत्ति आदि पकाकर उनका सूप दिया जा सकता है। इसके अलावा अन्य दिनों की तरह रोगी को नींबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। दूसरे दिन फल रस के साथ एक या दो कमला नींबू खाये जा सकते है। तीसरे दिन सवेरे धारोष्ण या खौंखलया हुआ एक झटौंक दूध और दो कमला नींबू, मौसंमी या टमाटर, दोपहर मे आधा गिलास फल का रस या तरकारी का सूप तथा शाम को तीन छटोंक रस लेना उचित है। चौथे दिन इन सब पथ्यों के साथ सेव या आधी मुट्ठी पुरना चावल, दिन में एक बार तरकारी के सूप के साथ लिये जा सकते है। उसके बाद बहुत धीरे–धीरे रोगी का पथ्य बढाना चाहिये।

किंतु उपवास तोडने के समय जल्दी में दुष्प्राभ्य भोजन या अति भोजन करने से कोई भी नुकसान हो सकता। एक आदमी के सात दिन का उपवास करने के बाद पहले ही दिन खजूर खाकर उपवास तोडा उसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। बंगाल के गल अकाल में बहुत दिनों तक भूखे रहने के बाद सरकारी दातव्यशाला जब खुली तो भूखी जनता ने पहले ही दिन पेट भरकर भोजन किया। उसके परिणामस्वरूप जिन्होने सरकारी दाल भात खाया था। उसमें से बहुत से लोग सात दिन से अधिक जीवित नही रह सके।

इसलिए पहले ही दिन अति–भोजन या दुष्पाच्य भोजन करके उपवास तोडना उचित नहीं। अथवा तोडने के बाद भी कुछ दिनों तक एक साथ भोजन करना अनुचित है। बल्कि पहले कुछ दिनों तक एक साथ अति भोजन करना अनुचित है। बल्कि पहले कुछ दिनों तक हर बार थोडा–थोडा करके आहार करना चाहिये।

यदि केवल सात दिनो का ही उपवास किया गया हो तो पन्द्रह दिनों तक संयमित भोजन करना चाहिये। यदि तीन दिन का उपवास हो तो अगले और पिछले दिनों तक कम आहार करना उचित है। जो तीन सप्ताह का उपवास करते है। उन्हें स्वाभाविक भोजन पर लौट आने में तीन सप्ताह से जरा भी कम समय लगाना उचित नहीं है।

उपवास के समय जिस प्रकार काफी पानी पीना आवश्यक है उसी प्रकार उपवास तोडते समय भी कुछ दिनों तक काफी पानी पीना उचित है। लंबा उपवास करने के

बाद दो–तीन महीनों तक खूब प्यास लगती है। ऐसी हालत में नींबू के रस के साथ पानी, फल का रस और डाब का पानी काफी परिमाण में पीना चाहिये।

तो भी हर किसी को उपवास नहीं करना चाहिये। बहुत बूढे, गर्भ स्त्री और रक्तहीन रोगी को लंबा उपवास करना भी ठीक नहीं। किंतु ये रोगी आंशिक उपवास करके पूर्ण उपवास का लाभ उठा सकते है। केवल फल, फल का रस, कच्ची शाक–सब्जी, तरकारी का रस सलाद, पकी तरकारी का सूप और हल्का मट्ठा खाकर रहने से अर्धोपवास हो जाता है यदि फल और फल का रस खाकर रहा जीव तो सबसे अधिक लाभ होता है। क्योंकि फल की प्रकृति की सबसे आरोग्यकारी औषधि है। इस अवस्था में हर दिन छः से आठ कमला नींबू या मौसमी नींबू हर समय दो–दो करके दिन मे तीन–चार बार लिये जा सकते है। जो लोग फल खरीदने में समर्थ नहीं है, गाजर, टमाटर, लेट्स मूली, टमाटर धनियां की पत्ती आदि भी कच्ची अवस्था में सलाद के रूप में खाई जा सकती है। जिने लोगों को हाजमा शक्ति अत्यन्त कमजोर है वे झोंगा तथा परबल आदि रसयुक्त साग–सब्जी सांझाकर उसका सूप पान कर सकते है। इस प्रकार का हल्का व अपनयनमूलक खाद्य ग्रहण करने पर भी यथेष्ट उपकार किया है।

10.3 उपवास एवं भूखमरी :–

भोजन न करने का ही नाम उपवास नही है, बल्कि इसका अर्थ बहुत व्यापक है। उपवास एक विज्ञान भी है, तो एक कला भी है। उपवास से हमारे जीवन का मनोवैज्ञानिक और भावात्मक क्षेत्र प्रभावित होता है। उपवास का वास्तविक अर्थ जीवन का सर्वांगीण कल्याण है।

उपवास का साधारण अर्थ सभी प्रकार के भोजनों का कुछ निश्चित काल के लिए त्याग करना किया जाता है। अंग्रेजी का "फास्टिंग" शब्द मूल अंग्रेजी फास्टेन से बना है, जिसका वास्तविक अर्थ दृढ या निश्चित है। इसलिए अंग्रंजी का अर्थ, दुसरे प्रकार से यह होता है कि उपवास वह क्रिया है जो नियन्त्रित एवं निर्धारित अवस्थाओं में हम दृढ निश्चय के साथ हाथ में लेते है।

धार्मिक पर्वो पर हम जो उपवास करते है उसे पूर्ण उपवास नहीं कहा जा सकता। ऐसे पर्वो पर अन्न एवं अन्न से बने पदार्थ एवं अमिष भोजन ग्रहण करना निबिद्ध माना गया है। फिर भी कुछ न कुछ फलाहार तो किया जाता है। इस प्रकार का

उपवास प्रायः एक वेला तक ही रखा जाता है। अतः इसे अर्थ उपवास कहना ही युक्तिसंगत है। ऐसे अवसरों पर उपवास करने वाले बहुत से व्यक्तियों का वजन पहले से अधिक बढा है। क्योंकि वे उपवास–काल में साधारण भोजन का त्याग तो अवश्य करते है। परंतु उसके स्थान में फल, दूध वगैरह अधिक पोषक तत्व वाला आहार ग्रहण करते है।

उपवास और भूखमरी में बहुत अंतर है। दोनों अवस्थाओं में अन्न ग्रहण नहीं किया जाता है। (1) उचित काल तक उपवास करना। और (2) भूखमरी की दीर्घ अवधि में अन्नाभाव से प्राण त्याग करना। इन दोनों परिस्थितियों का अंतर विशेष अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। हम उपवास उतने ही समय तक चालू रख सकते है। जितने समय तक हमारे शरीर पर अपने तन्तुओं में संचित तत्व पूर्णरूप से काम में आ जाते है। या खतरे के बिन्दु तक क्षीण हो जाते है तब तक अनशन लम्बाते जाते है तो भूखमरी की अवस्था प्रारंभ हो जाती है। यह भी ध्यान में रख लेना चाहिए कि कई शब्द भी ऐसे है, जो भ्रम पैदा करते है जिससे लोगों की उलझने बढ जाती है। उदाहरणस्वरूप "जल–उपवास" एक शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ जल न ग्रहण करना होता है। किन्तु उसका वास्तविक अर्थ तो है कि अन्य सभी वस्तुओं का त्याग करके केवल जल का ही सेवन करना। यह भ्रम "फल–रस उपवास" के विषय में भी पैदा की जाता है, किन्तु इनका भी वास्तविक अर्थ यही है कि शेष सभी खाद्य–पदार्थों का त्याग कर केवल ये ही पदार्थ ग्रहण करना।

दैनिक आहार पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध रखते हुए कुछ नियमों के अनुसार किये जाने वाले किसी भी प्रकार के उपवास को आंशिक उपवास कहा जा सकता है।

भुखमरी वस्तुतः प्राण त्यागने की प्रक्रिया की है। भुखमरी की प्रक्रिया से स्वास्थ्य–लाभ नहीं किया जा सकता। उचित तरीकों से उचित समय तक उपवास करके शारीरिक अवस्थाओं में विशेष सुधार और अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते है। उपवास में काफी लंबे समय तक अन्नादि न ग्रहण करने पर भी शरीर पर अत्यन्त लाभकारी प्रभाव पड सकता है। उपवास करने वाले अनुभवी चिकित्सक जब देखते है कि अन्न ग्रहण न करने का परिणाम विपरीत आ रहा है, तब उपवास बंद करना होता है।

उपवास नयी जीवन–पद्धति का एक अंग है। इसलिए शरीर का वजन घटाने के लिए ही उपवास नहीं है, बल्कि अच्छा स्वास्थ्य स्वास्थ्य बनाये रखने या खोये हुए स्वास्थ्य

को पुनः प्राप्त करने के साधनों का यह एक उत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ अंग बन सकता है बल्कि यह निश्चित ऐसा है ही।

आप जरा पशुओं की ओर देखिये, वो बीमार पडते है घायल होते है फिर भी अच्छे हो जाते है, न डॉक्टरी इलाज होता है न कोइ औषधि दी जाती है और न कोइ पट्टीयां बांधी जाती है, इसका प्रधान कार्य यही है कि वे उपवास करने की कला को समझते है। एवं उसका पालन करना भी जानते है वे ऐसे एकान्त स्थानों की शरण लेते है कि जहां वह गरत रह सकते हैं, शीत, वर्षा, गर्मी आदि मौसमों के प्रभावों से रक्षा हो सकती है। और कोइ खलन नहीं पहुंचता वे विश्राम और उपवास दोनो कार्य करते रहते है। पशुओं के जीवन के अस्तित्व के लिए उपवास एक बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक उपाय है। न केवल घायल व बीमारी की अवस्थाओं, बल्कि अच्छी अवस्थाओं में पशु उपवास रखते है। ,

कुत्ता, बिल्ली तोता इत्यादि पशु और पक्षीयों को जब हम पालतू बनाते है, तब वे बिल्कुल नये वातावरण में कई दिनों तक कुछ भी आहार ग्रहण नहीं करते है। कभी–2 अकाल पडने पर वह तुषारपात होने पर पशुओं को खाद्य–पदार्थो के अभाव में मजबूरी से बहुत दिनों तक उपवास करना पडता है। ऐसी स्थितियों में भी बिना कुछ खाये बहुत दिनों तक जीवन रक्षा करने में वे सक्षम पाये गये है।

संसार के बहुत से भागों में शताब्दियों से धार्मिक, राजनैतिक, चारित्रिक तथा स्वास्थ्य सुधार के निमित्तों से मनुष्यों के द्वारा उपवास का प्रयोग होता आ रहा है। केवल हाल के ही कुछ वर्षों में लोगों की ऐसी धारणा बनी कि शक्ति बनाये रखने के लिए भोजन करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्राकृतिक चिकित्सों एवं स्वास्थ्य सुधारकों ने 140 वर्षो से या इसके कुछ वर्ष पहले से ही स्वास्थ्य संवर्धन और शीघ्रता पूर्वक बीमारियों को शरीर से दूर करने के साधन के रूप में उपवास का प्रयोग किया है। इस क्षेत्र में चिकित्सा सम्बन्धी असाधारण अनुभव उन्हें प्राप्त हुए है। इन्ही अनुभवों से यह धारणा सुदृढ है कि उपवास एक विधायक शक्ति है, जिसे आधुनिक जीवन नियमित कार्यकलापों के अंग रूप में आवश्यक व्यवहार मे लाना चाहिए। और साथ ही साथ उपवास का विकास और प्रसार भी करना चाहिए। वास्तव में उपवास का खण्डन करने वाले वे ही लोग है, जिन्हें उपवास व उसकी तकलीफ का अत्यल्प ज्ञान प्राप्त है। जो लोग मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखते है। और अपनी भलाई चाहते है, वे कभी उपवास की उपेक्षा

नहीं कर सकते। चाहे हमें अपना स्वास्थ्य सुधारना हो। और शरीर का वजन बढाना और घटाना हो। सभी के लिए उपवास का बहुत अधिक महत्व है।

10.4 उपवास के चार प्रमुख कारण :–

उपवास करने के अनेक और विविध उद्देश्य हैं। स्वास्थ्य सुधारने, शरीर का वजन घटाने, धार्मिक व्रतांदि आदि का पालन करने के लिए हम लोग प्रायः उपवास रखते है। धार्मिक एवं संस्कारों से सम्बद्ध उपवास आम तौर पर दिन अधिक समय तक नहीं रखा जाता है। थोडा समय तक रखे जाने के कारण इसे कठिन उपवास नहीं कहा जा सकता।

प्रथम कारण – वजन घटाना–

यह बात ठीक है कि हम वजन घटाना चाहते है किन्तु क्या केवल वजन घटाना ही उपवास का मकसद होना चाहिए? क्या वजन घटने के साथ ही साथ हमारे शरीर में स्वच्छता, उत्साह, बल और यौवन के लक्षण नहीं दिखलाई पडते है?

जर्मनी के अनेक डॉक्टरों का अनुभव है कि बहुत से रोगी उपवास से अच्छे हो जाते है। रोग जड से मिट जाता है। लम्बे उपवासों का प्रभाव कहां और किस तरह हमारे शरीर की बनावट पर और अंग–प्रत्यंगों पर पडता है और वे किस तरह हमारे अंग–प्रत्यंगो को सहायता पहुंचाते है उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। हम जानते है कि वजन घटाने के लिए उपवास ही सबसे अच्छा, सुगम, शीघ्र और स्थायी तौर पर लाभ पहुचाते वाला साधन है।

यह बडी मार्के की बात है कि मोटे वजनी आदमियों को लम्बे उपवास से वे सभी लाभ मिलते है जो उन्हें मिलने चाहिए। वजन कम हो जाने के लाभ को तो उन पर एक अतिरिक्त उपकार ही समझना चाहिए। उपवास का हमारा उद्देश्य एक हो या अनेक, इससे कोई फर्क नहीं पडता है।

दूसरा कारण – क्षति पूर्ति –

उपवास का दूसरा कारण यह है कि उसके शरीर की क्षति पूर्ति होती है। उसमें प्रकृति के सूक्ष्म और कोमल पूर्जे काम करने लगते है। पोषक तत्वों को प्रकृति एक स्थान में संचय करके रखती है, ताकि उसे दूसरी जगह खर्च कर सके। बार–बार परीक्षण करके पाया गया है कि इस तरह संचय सभी जीवित प्राणियों एवं मनुष्यों के

भीतर भी अकसर रहता है। मान लीजिये, एक नल के सहारे पानी स्नान घर का नल खुलते ही स्नान घर में पानी के बहाव का मात्रा तुरन्त घट जाती है। फिर रसोईघर की नली को बंद कर दीजिये और देखिये कि पानी के बहाव की मात्रा स्नानघर में फौरन बढ जाती है।

ठीक इसी से मिलती–जुलती घटनाएं हमारे शरीररूपी मशीन के भीतर भी घटती हुई देंखी जाती है। भोजन को पचाने के लिए पाचन–क्रिया में लगे हुए शरीर के अंगो में काफी मात्रा में रक्त–प्रवाह का संचार कराने की जरूरत होती है। फलस्वरूप हमें सुस्ती मालूम होने लगती है ओर हम सो भी जाते हैं यदि हम कठिन शारीरिक परिश्रम के कर्मों में लग जाते है। तो हमारे भीतर पाचन–संबंधी क्रियाएं उतने समय के लिए निश्चित की रूक जाती है।

शरीर की जिस शक्ति का व्यय नियमित रूप से पाचन–संबंधी कार्यों में होता रहता है, उसी शक्ति को उपवास के समय दूसरी दिशा में मोड दिया जाता है। और उसी से शरीर के अन्य जरूरी कार्यो को पूरा कराया जाता है। अतः शरीर के एक विभाग से शक्ति को बचाकर उसका उपयोग दूसरे विभाग में किया जाता है।

तीसरा कारण – विश्राम –

उपवास करने का तीसरा कारण शरीर स्थित सभी कल–पूर्जों को विश्राम या आराम पहुंचता हैं। पाचन–प्रणाली, ग्रन्थि–प्रणाली, रक्त संचार–प्रणाली, श्वास–प्रणाली, नाडी–प्रणाली, नाडी–मण्डल इत्यादि विभागों को उपवास–काल में काफी आराम मिलता हैं। हम जितना अधिक भोजन करते है उतना ही अधिक परिश्रम हमारी मशीनों को उन्हें विश्राम करने के लिए कुछ समय मिल जाता है। जब बिल्कुल ही नहीं रखते है, तब उन्हें पूरा आराम मिलता हैं यह समझना कठिन नहीं है कि भोजन करने पर हमारे मुख व उदर की ग्रन्थियां, समूची पाचन–नली, यकृत और पाचन–रस की थैली, हृदय और धमनियां इन सभी का भार हल्का होने के कारण अधिक मात्रा में उन्हें विश्राम मिलता है। पाचन रसों को बाहर निकालने वाले अंगों को छोडकर, हमारे शरीर की बाकी ग्रन्थियों को दूषित पदार्थों के बाहर निकालने का काम भी कम हो जाता है। सांस लेने की क्रिया भी कम हो जाती हैं। नाडी–मण्डल को भी कम ही काम करना पडता है। इन सबका सारांश यह है कि हमारे शरीर के सभी अंगों को उपवास में आराम करने का अच्छा मौका मिल जाता है।

एक सिद्धांत के अनुसार उपवास के समय मनुष्यों के चयापचय (शरीर की वह क्रिया, जिससे सभी भोजन जीवित पदार्थों में बदलता है) और निष्क्रियता की तुलना सोने वाले जानवर से की गई है। मांस–पेशियों और पाचननली में शिशु की अवस्था में जितनी गतिशीलता पायी जाती है उससे भी कम हरकत उपवास में करनी पडती है। इस सिद्धांत में भी कुछ सचाई हे। किंतु हमें समझना चाहिए कि उपवास करने वाला मनुष्य सदा सोता नहीं रहता। जहां तक दिमाग और पेशियों का सवाल है उपवास करने वाला मनुष्य जब तक सो न जायें, तब तक शरीर को ढीला और शिथिल रखता है और दिमाग को काफी आराम देता है फिर भी वह अत्यधिक कार्यशील पाया जाता है। यह बात ठीक है कि उपवास में मनुष्य जितना अधिक निष्क्रिय और शिथिल रह सकेगा, उतनी ही शीघ्र उसकी अवस्था में उन्नति और सुधार हो सकेगा इसी विश्राम की अवस्था में शरीर की कोषाओं का कायाकल्प होता है।

चौथा कारण – शरीर की सफाई –

शरीर के भीतरी दूषित पदार्थों का बाहर निकालना उपवास करने का चौथा कारण है। हम जानते है कि हमारे शरीर के भीतर भोजन को पचाने की क्रिया बराबर चालू रहती है। भोजन के पोषक तत्व मांस, रक्त, मूत्र, वीर्य आदि रूपों में शरीर में मिल जाते है। और शेष बचे हुए पदार्थ मूल, मुत्र कफ आदि मे हमारे शरीर में जमा रहते है। उन्हीं दूषित पदार्थों को हम मलमूत्र त्याग आदि दैनिक क्रियाओं द्वारा बाहर करते है। और पसीने से भी सभी दूषित पदार्थ शरीर से बाहर होते रहते है। फिर भी कुछ कारणों से सभी दूषित पदार्थों को हम रोजाना बाहर करने में असमर्थ रहते हैं। ये ही बचे हुए पदार्थ धीरे–2 एकत्र होकर हमारे शरीर में विष उत्पन्न कर देते है। इन्हीं विषैले पदार्थों को शरीर से पूर्ण से बाहर करने के लिए उपवास का सहारा लेना पडता है। "कोलोरेडो" के "डेनवरो" स्थित प्रसिद्ध "डॉक्टर टिल्डेन हेल्थ स्कूल" के संस्थापक जे. एच. टिल्डेन, एम. डी. दो पत्रिकाओं के संपादक एवं बहुत–सी पुस्तकों के लेखक है। उनका कथन है कि मैने 55 वर्षों तक चिकित्सा–शास्त्र संबंधी अन्वेषण कार्य निर्जन स्थानों में जाकर किया है। मै निःसंदिग्ध रूप से यह कहने को बाध्य हूं कि शरीर के दूषित पदार्थों की निकासी के लिए उपवास से बढकर दूसरी कोई चिकित्सा नहीं है। यही एक विशिष्ट और विश्वसनीय उपचार है।

डॉक्टर फेलिक्स एल. ओसवाल्ड, एम.डी. भी उपर्युक्त कत से सहमत है। उनका कथन है कि शरीर की भीतरी सफाई के लिए उपवास सबसे उत्तम तरीका है। सालभर में

केवल तीन दिन के उपवास से शरीर की सफाई करने और विषैले पदार्थों को नष्ट करने में जितनी सफलता मिल सकती है। उतनी सफलता रक्त–शोधक कडती औषधियों की सैकडों बोतलों के सेवन से भी नहीं पायी जा सकती है।

रक्त और तन्तुओं के विजातीय पदार्थों (तलछटों) को शरीर से तेंजी से बाहर करने के लिए उपवास के समान और कोई दूसरा साधन नहीं है। केवल थोडे समय के लिए भोजन न करने से शरीर की सफाई रखने वाले अंग अपना कार्यक्षेत्र बढा देते है। और वास्तविक रूप में शरीर रूपी इमारत की पूरी सफाई में लग जाते है।

जैसे–2 उपवास की अवधि बढती जाती है वैसे–2 शरीर के भीतर एकत्र दूषित पदार्थ बाहर निकल जाते है। शरीर पवित्र और स्वच्छ हो जाता है। पीडी कम हो जाती है। देह को आराम मिलने लगता है। किंतु रक्त और पित्त से दूषित पदार्थों को दूर करने के लिए कुछ और समय की जरूरत पडती है। लंबी अवधि के उपवास में शरीर के गौण तंतुओं में अधिक दिनों में एकत्रित विजातीय पदार्थों को भी बाहर निकाल देने का अवसर मिल जाता है।

उपवास के जरिये अंगों को काफी शक्ति मिल जाती है। शरीर के अंदर मन्थन का काम शुरू हो जाता है पोषक तत्व अलग होकर शरीर के बलवान तन्तुओं में पहुंच जाते है। व्यर्थ के तन्तुओं का एवं पहले से संचित विजातीय द्रव्यों का विघटन निकासी के अंगो में होने लगता है जिससे वे दूषित पदार्थों शरीर के बाहर सूगमता उनमें रहती है।

प्रकृति को शरीर की पूरी सफाई के लिए काफी समय की आवश्यकता पढती है। केवल पाचन–प्रणाली को तेज करने से यह काम ठीक से नहीं किया जा सकता है। भोजन करते रहने की अवस्था में हमारी इन्द्रियों कार्यों के भार से यों ही शिथिल हो जाते है। और उसी अवस्था में ठीक से भीतरी सफाई करने की सामर्थ्य उनमें रहती है।

आज से प्रायः डेढ सौ वर्ष पहले सीलवेस्टर ग्राहम ने एक पुस्तक लिखी थी "सांइस ऑफ ह्यमन लाइफ" (मनुष्य जीवन का विज्ञान) जिसमें उन्होनें ने बताया था कि पोषण की तरह मल–निष्कासन भी हमारे शरीर का एक मौलिक अर्थ है। जैसे पोषक तत्वों का संचय करने एवं बाहर निकालने कि क्रिया भी होती रहती है जब तब हमारे शरीर के अंग–प्रत्यंग ठीक है तब तक ये दोनों क्रियां लगातार चालू रहती है।

जन्म से मृत्यु तक, दिन–रात, सोते–जागते, इन दूषित द्रव्यों का शरीर से बाहर निकलना कभी बंद नहीं होता है। पालन–पोषण और मल त्यागने की अधिकतर क्रियाएं शरीर के अलग–अलग अंगों द्वारा की जाती है। किंतु कहीं एक ही अंग ग्रहण और निष्कासन दोनों कार्य किये जाते है। अंगों की शक्तियों को दो विभागों में विभाजित किया जाता है।

(1) संचय की शक्तियां, (2) निष्कासन की शक्तियां। किंतु ऐसे भी अवसर आते है जब एक विधि से अधिक महत्व की हो जाती है। शरीर की कुछ निश्चित अवस्थाओं में निष्कासन की महत्ता अधिक हो जाती है। और संचय की क्रिया घट जाती है।

एक दूसरा सिद्धांत यह है कि जब हम भोजन करते रहते है तब निकासी कार्य दब जाता है। हमारा शरीर एक ही समय संचय ओर निष्कासन दोनों कार्य नहीं कर सकता। यद्यपि इस सिद्धांत में सत्य का कुछ अंश है, परंतु इसे पूरा–पूरा सही नहीं कहा जा सकता। मल–निष्कासन (इक्सक्रीशन) की क्रिया का हमारे भोजन के पचने के साथ ही साथ जारी रहना जरूरी है, अन्यथा ये दूषित पदार्थ इतनी अधिक मात्रा में इकट्ठे हो जायेगें और इनके विषैले प्रभाव से मृत्यु भी हो सकती है। केवल कुछ अंशों मे "संचय–क्रिया" मल–निकासी को रोक देती है। एक और सिद्धान्त है कि उपवास काल में जब शरीर का प्रयत्न कार्यकारी तन्तुओं के लिए पोषक तत्वों को जुटाने का रहता है, कि अनावश्यक और कम आवश्यक तन्तुओं को हमारा शरीर तरल पदार्थों में परिवर्तित कर देता है। और इन्हीं पदार्थों को पोषक तत्व के रूप में जरूरी तन्तुओं के पोषण में लगाया जाता है और एकत्रित हुए पदार्थों का रक्त में छोड दिया जाता है। और उन्हें निकासी के अंगो तक पहुंचाकर शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि पोषक तत्वों का संचय करना प्राथमिक कार्य है, निकासी का कार्य गौंण।

मै मानता हुं कि इस सिद्धांत में सच्चाई है। कडा और विजातीय द्रव्य, खासकर चर्बी एवं तत्संबंधी तन्तुओं में जमा होते है और जब इन तन्तुओ को पिघलाया जाता है तब विजातीय द्रव्य और कूडे बाहर निकालते है। उपवास के समय बहुत अधिक मात्रा में बराबर ये दूषित पदार्थ जो निकला करते है, उनका यही कारण प्रतीत होता है।

जीवन की इस बुनियादी और महत्वपूर्ण क्रिया (मल–निष्कासन) को दूसरा दर्जा देना। क्या बुद्धिमानी का काम कहा जा सकता है? इसमें मुझे संदेह है। इन दो क्रियाओं की

शक्ति कम अधिक मात्रा में एक–दूसरे से बराबर संबंद्ध है। उपवास में पाचन क्रिया में कम ही शक्ति का व्यय होता है। इससे बडी हुई शक्ति का उपयोग दूसरी क्रियाओं में होता है, जो उस समय पाचन की अपेक्षा अधिक जरूरी होता है। इस तरह शरीर अपनी शक्तियों को उस समय बीमारियों को दूर करने एवं शरीर को स्वस्थ बनाने में खर्च करता है।

यह बात ठीक है कि विश्राम की अवस्था में और कम मात्रा में भोजन करने पर भी कूडे के बहिर्गमन की मात्रा अधिक रहती है। यह सही है कि उपवास, विश्राम और कम भोजन करना, इन तीनों अवस्थाओं में दूषित पदार्थ के निकलने की मात्रा में समानता नहीं रहता है। शरीर के अंगों को जितना ही कम काम करना पडेगा, उतना ही अधिक दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलेगा।

उपवास के प्रांरभिक और अंतिम दिनों में गूर्दो के बढने पर और हृदय–रोग में विजातीय द्रव्यों के त्याग की मात्रा अधिक रहती है। बढी हुई शक्ति भी कुछ अंशो में बहिर्गमन–क्रिया को बढाने में सहायक होती है।

उपवास के समय कैंसर का विकास बहुत अंगो में कम हो गया है किंतु रोगी को कैंसर से बिल्कुल अच्छा होते हुए कभी नहीं देखा गया है। डॉक्टर वर्ग का कहना है कि रोग से प्रभावित तन्तुओं का क्षय उपवास में देखा गया। फिर भी उपवास से सीमित लाभ ही मिला है। लेकिन छोटे टयूमरस (छोटी गिल्टियां) प्रायः पूर्ण रूप से फूटकर बैठ जाते है। जलोदर–संबंधी बहाय, सूजन, दूषित पदार्थों का जमाव, इत्यादि की निकासी उपवास के समय बडी तेजी के साथ होती रहती है। कहीं–कहीं कैंसर को लंबे उपवास में भी बढते हुए पाया गया है, क्योंकि कैंसर के टयूमर अधिकतर एक के नीचे एक दबे रहते है। और वे बढते ही जाते है। और उनका अपना राज्य रहता है। शरीर के अन्य भागों से उनका कोई प्रत्यक्ष संबंध भी नही रहता है।

10.5.3 उपवास का महत्व :–

उपवास एक वैज्ञानिक विधि है जिसमें रोगी की दशानुसार चिकित्सा की जाती है। इसमें पानी के अतिरिक्त ठोस अथवा तरल पदार्थ का सेवन बंद कर दिया जाता है। जिसमें रोगी के पाचन तंत्र को विश्राम मिलता है। इसलिए यह पद्धति रोग निवारक कहलाती है, परंतु भूखा मरना इसका उद्देश्य नहीं है। इसमें एक मुख्य शर्त यह है कि उपवास रोगी की स्वेच्छा से किया जाना चाहिए। उपवास हमारे प्राचीन ग्रंन्थों के

अनुसार उपवास का शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि हेतु एक विधान के रूप में दिया है जिसमें मुख्य रूप से वर्ष में दो बार नवरात्रों के दिनो में नो–नो दिन का उपवास, एकादशी उपवास, जन्मष्टमी उपवास इत्यादि सब जानते है। मानवमात्र ही नहीं, अपितु पशु–पक्षी एंव जीवधारी प्राकृतिक रूप से उपवास को करते पाए गए है। रोग की अवस्था में कुछ भी खाना जहर के समान है। फिर भी हम रोग की अवस्था में कुछ न कुछ खाते ही रहते है। जिससे हमारा पाचन तंत्र जो पहले ही रोग से लडने में अपनी ताकत लगा रहा है उसकी ताकत खाना पचाने में लग जाएगी तो रोग से मुक्ति असंभव है।

आहार हमारे शरीर की नष्ट हुई कोशिकाओं के बदले नई कोशिकाओं का निरंतर निर्माण करता रहता है जिससे हमारे शरीर की जीवनदायी शक्ति बनी रहती है लेकिन आहार को भूख लगने पर ग्रहण करे तो यह अपना कार्य सुचारू रूप से कर पाएगा।

भूख से मरना एवं उपवास करना दोनों के अंतर को जान सकते है कि उपवास भोजन छोडने से शुरू होकर वास्तविक भूख का आभास होने तक तो समय लगता है उसे उपवास या उपवासकार कहा जाता है परंतु बहुत भूख लगने के बाद से मृत्यु तक के उपवास को भूख से मरना (Starving) कहलाता है। उपवास चिकित्सा विशेषज्ञ डा. कैरिंगटन इन दोनों के अंतर को बहुत ही भली–भांति समझाया है। उपवास का वास्तविक ज्ञान न होने पर अथवा उसके नियमों का ठीक–ठाक पालन न करने पर उपवास शरीर को बडी–2 से हानि भी पहुंचा सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उपवास किसी योग्य चिकित्सक की देख–रेख में ही करना हित्तकर है। भोजन की मात्रा को कम कर देना उपवावस नहीं है। अर्थात ठुस–ठुसकर न खाना अथवा कम खाना दोनो ही उपवास से दूर की बातें है। उपवासकाल में शुरू के दो या तीन दिन तक ही थोडा कष्ट का अनुभव होता है, उसके बाद किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। उपवास के महत्व के हमारे देश के सभी धर्मगुरूओं ने एकमत से स्वीकारा है। इसके द्वारा हम शरीर के विजातीय द्रव्यों को शरीर से निष्कासित करने का कार्य भी करते है। यह हमारे शरीर के लिए कितना महत्व रखता है। यह हम निम्न प्रकार से अध्ययन करेंगें।

1. विषाक्त चीजों के प्रयोग से जहां सबसे पहले हमारे आमशय पर प्रभाव पडता है। वहीं पर उपवास करने से हमारे आमशय में उपवास का प्रभाव यह होता है कि भूख लगती है लेकिन भूख सताना बंद कर देती है।

2. जिगर :– जिगर हमारे शरीर की प्रयोगशाला है। खाना पाचन तंत्र की प्रक्रिया से चलता हुआ आंतों की म्युक्स झिल्ली के द्वारा रक्त में अवशोषित हो जाता है। और पचा हुआ खाना रक्त वाहनियों द्वारा जिगर तक पहुंचता है। जिसमें से जिगर विजातीय तत्व को समाप्त कर देता है। उपवास के दौरान एक तरफ ऐसे विषाक्त तत्वों का शरीर में आना बंद हो जाता है जबकि दूसरी ओर जिगर रक्त में संचित विष को शरीर से बाहर निकलने का कार्य ज्यादा अच्छे ढंग से कर पाता है। जबकि दैनिक जीवन में आहार के लेते रहने से जो विष शरीर में आता है जिगर केवल उसी को भार करने में लगा रहता है। संचित विष की प्रक्रिया के लिए समय एवं क्षमता एवं नहीं मिल पाती।
3. प्रतिरोधक क्षमता बढती है :– जैसे–जैसे हमारे शरीर में जमा हुए विजातीय द्रव्य कम होने शुरू होते है वैसे–वैसे शरीर के सभी ढंग अपनी कार्य क्षमता के अनुरूप कार्य सुचारू रूप से करते है। जिससे रोगों से लडने की क्षमता बढ जाती है क्योंकि उपवास द्वारा शरीर के विभिन्न भागों से विजातीय द्रव्य निकल पाते है।
4. शरीर के वजन को नियंत्रित करता है :– उपवास द्वारा आवश्यकता से अधिक भोजन से जो चर्बी हमारे शरीर को स्थूल रूप दे देती है उसमें उपवास के समय में उसी अनावश्यक चर्बी से कम करके शरीर में चर्बी की आवश्कता को पूरा किया जाता है। इस प्रकार शरीर की चर्बी को कम करके वजन घटाया जा सकता है त्वचा की निष्कासन क्षमता बढना। उपवास में हम ठोस पदार्थों का सेवन बंद कर देते है। तथा शरीर मे पानी की मात्रा अधिक लेना प्रारंभ कर देते है जिससे त्वचा के भीतरी सतह पर विजातीय द्रव्यों के कारण जो फोडे, फुन्सी इत्यादि हो जाते है उनके विष को पसीने द्वारा बाहर निकालने के लिए पानी की मात्रा बढनी आवश्यक है जो उपवास के दौरान स्वतः ही बढ जाती है। तथा विष को बाहर निकालकर त्वचों से संबंधित विभिन्न रोगों से बचाती है।
5. नशे के दुष्परिणाम दूर करती है :– दिन प्रतिदिन जो हम तंबाकू, चाय, काफी अथवा अन्य नशीली दवाओं का सेवन करके जो हानिकारक द्रव्य जमा कर देते है उनका भी उपवासकाल में शोधन अथवा प्रभावहीन कर दिया जाता है। इस प्रकार उपवास में विभिन्न प्रकार के नशों की आदत पर अंकुश लगाया जा सकता है।

6. मनोवैज्ञानिक प्रभाव :– उपवास द्वारा हमारे शरीर मस्तिष्क की चिंता, उदासी, अकेलापन, तनाव और भय के रूप में नकारात्मक विचार पनपते है जो हमारे शरीर पर विषाक्त प्रभाव डालना प्रारंभ कर देते है तो उससे शरीर के साथ साथ मन एवं मस्तिष्क पर भी प्रभाव आना स्वाभाविक है जिससे हमारी सामाजिक स्थिति एवं पारिवारिक संबंधो पर भी नकारात्मक प्रभाव पडता है। जिस पर दवाओं का कुछ समय तक प्रभाव दिखाई देता है। परंतु पूर्णतः रोगमुक्त नही हो पाते क्योंकि यह हमारी आदतों परिवर्तित हो जाता है। उपवास द्वारा हम ऐसे शरीर के विभिन्न दोषों को नियंत्रण के साथ साथ विचारों में सकारात्मक परिवर्तन और सात्विक रसाहार द्वारा हमारे शरीर से निकलने वाले विभिन्न एंजाइमस भी प्रभावित होते है। इस सारी प्रक्रिया में मन मस्तिष्क में पैदा हुए ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रतिशोध जैसे आक्रमक भाव समाप्त होने शुरू हो जाते है।
7. शरीर शुद्धिकरण की प्रक्रिया तेज होती है :– उपवास में ठोस पदार्थों का सेवन बंद करने से आंतो में जमा मल के कम होने से आंतो द्वारा शोषित सडा हुआ रस हमारे रक्त में जाना बंद हो जाता है क्योंकि आंतों का जमा एवं सूखा मल जो विभिन्न गैस पैदा करते है वह शरीर से बाहर निकलना प्रारंभ हो जाता है। साथ ही पानी के सेवन से आंतों में सूखे हुए मल से जो गर्मी बढती है वह भी पानी के ज्यादा सेवन करने से घटनी शुरू हो जाती है।
8. आध्यात्मिक प्रभाव :– सभी धर्मों में किसी भी पूजा या अनुष्ठान में उपवास का विशेष योगदान होता है क्योंकि आध्यात्मिक कार्य हेतु मन में शांति, प्रसन्नता एवं आस्तिकता का होना आवश्यक होता है जो उपवास द्वारा श्वास प्रक्रिया गंधहीन एवं नियंत्रित होती है। जबकि उपवास प्रांरभिक तीन चार दिनों तक श्वास में दुर्गंध आती है। उपवास द्वारा रक्तचाप, नाडी की गति भी संतुलित हो जाती है। इसके द्वारा सोचने, समझने, पढने–लिखने एवं विचारने की क्षमता बढ जाती है।

9. विभिन्न प्रकार के उपवास :– कोई भी जीवित प्राणी अनिश्चिकाल तक बिना भोजन किए उपवास पर नहीं रह सकता। अतः एक समय सीमा उपवास के लिए आवश्यक हो जाती है। जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न होती है जिसका निर्धारण रोगी की अवस्था उसकी शारीरिक क्षमता एवं

रोग की आवश्कतानुसार चिकित्सक की देख–रेख में की जाती है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के उपवास के विषय मे जानना आवश्यक है। उपवास के प्रकार को निम्न प्रकार से समझ सकते है।

उपवास के प्रकार :–

1. मुख्यतः उपवास दो प्रकार का ही माना जाता है जिसमें एक जल उपवास एवं दूसरा रसाहार उपवास लेकिन उपवास के विभिन्न प्रकार आज देखने को मिलते है। जिनमें से दिन में एक बार के भोजन का उपवास अथवा एक आहार का उपवास, दुग्धोंपवासों, मट्ठा उपवास, रसोंपवास, फलोंपवास एवं समय के आधार पर एक दिन का लघु उपवास, साप्ताहिक उपवास, दीर्घ उपवास इत्यादि प्रमुख।
2. जलोंपवास को पूर्णोपवास के नाम से भी जाना जाता है जिसमें व्यक्ति केवल जल को ही दिनभर लेता रहता है। जल के अतिरिक्त किसी प्रकार का फल एवं अन्य ठोस एवं रस इत्यादि का सेवन नहीं किया जाता। यह एक ऐसा उपवास है जो जीर्ण अथवा पुराने रोगों में किया जाता है। ऐसे रोगों में जहां शरीर में विजातीय द्रव्य बहुत इकट्ठे हो जाते है और बीमारियां भी अनेकों इकट्ठी आ जाती है। वहां पर उन सभी रोगों का उपचार करना असंभव हो जाता है तब एक मात्र यदि उपचार है तो वह है उपवास। इसमें रोगी को मानसिक रूप से तैयार करना आवश्यक हैं। उन रोगों में जिनमें शरीर की कार्य क्षमता ठप हो जाती है ऐसे में उपवास राम बाड सिद्ध होता है परंतु ऐसी बीमारियों में जिनमें शरीर को कार्य गिरता रहना जारी रहता है। उनमें बहुत दिनों का उपवास करने की सलाह नहीं दी जाती है। साथ ही हृदय एवं खून की कमी में केवल आंशिक उपवास या बहुत कम समय का उपवास कराया जाता है। साथ ही गर्भवती स्त्रियों को उनके गर्भकाल में उपवास कराना उचित नहीं है। जब कोई रोगी पहली बार लंबा उपवास करती है तो उसके साथ कुछ विषमताएं आ सकती है लेकिन जैसे–विजातीय द्रव्य कम होते जाते है वैसे ऐसे लक्षण कम हो जाते है। उपवास के दिनों में रक्त संचालन व नाडी मंडल की सर्तकता कुछ कम हो जाती है। इस कारण रोगी को बेहोशी अथवा चक्र आने की शिकायत आ जाती है। उपवास की अवधि में आंतों में बहुत

दिनों का मल जमा होने के कारण जब वह आंतों को छोडकर बाहर आता है तब मरोड भी पैदा हो सकती है। ऐसे में गुनगुने पानी का एनिमा देंना चाहिए। शुरू के दिनों मे सिरदर्द की शिकायत भी अकसर देखने को मिलती है।

10.6 सारांश :–

उपरोक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि रूप की प्रारम्भिक अवस्था में ही यदि उपवास वह भी रसाहार उपवास। प्रारम्भ कर दिया जाय तो रोग की भंयकर अवस्था आने से रूक सकती है इसी महत्व को समझते हुए पहले के बहुत महापुरूषों ने इसे अपने जीवन में अपनाया उपवास में एक पदार्थ उपवास, जल उपवास, साप्ताहिक एक दिन का उपवास, लघु उपवास, दीर्घ उपवास आदि को अपनाकर शरीर के सभी तल पाचक रस एवं हार्मोन्स नियमित होते है अनावश्यक चर्बी कम हो जाती है शरीर हल्का हो जाता है जीवनीय शक्ति बढती है। मनोरोग मे लाभ होता है। इतना लाभ होने पर भी विशेष सावधानी रखना अतिआवश्यक है कि किसी भी प्रकार के उपवास में जल का सेवन बंद करना या कम करना प्राण घातक हो सकता है। अतः किसी भी रोग की अवस्था में उपवास करने से पहले चिकित्सा विशेषज्ञ का परामर्श व मार्गदर्शन आवश्यक है।

10.7 बोधात्मक प्रश्न (अभ्यासार्थ)

प्रश्न. 1 – उपवास का अर्थ और उसके महत्व का वर्णन कीजिए।

प्रश्न. 2 – उपवास के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन करे।

प्रश्न. 3 – उपवास में कि जाने वाली विभिन्न सावधानियों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न. 4 – उपवास और भूखमरी से क्या अन्तर है? उदाहरण सहित व्याख्या करो।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ –

- प्राकृतिक आर्युविज्ञान – राकेश जिन्दल
- उपवास चिकित्सा – बर्नर मैकफेडन
- प्राकृतिक चिकित्सा – डा. सतीश गोयल

- प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन – डा. हेनरी लिंडलार
- प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र – आचार्य शेषाद्रि स्वामिनाथन
- वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डा. ओ. पी. सक्सेना
- Fasting can sour your life – H. N. Shelton

इकाई : 11 – प्राक्रतिक चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न यंत्रों का परिचय

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 प्राकृतिक चिकित्सा विधियाँ

11.4 सारांश

11.5 बोधात्मक प्रश्न

11.6 संदर्भ ग्रंथ

11.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न उपचार विधियाँ जो पंच महाभूत द्वारा विकसित हुई है। उनका स्वरूप समय के साथ साथ परिवर्तन होते हुए आज विद्युत और फाइबर के समावेश द्वारा आकर्षक व आधुनिक रूप में प्रयुक्त हो रहा है। जहां बल्टी, तसले और मग्गे इत्यादि का प्रयोग होता था वहीं उनके स्थान पर आज हॉट–फुट एण्ड आर्म बाध (हाथ – पैर का गर्म स्नान) फाइबर युक्त यंत्रों के प्रयोग से होता है। भाप स्नान के लिए पानी के भगोने तथा चारपाई के प्रयोग के स्थान पर आज विद्युतीय भाप यंत्र एवं फाइबर की भाप पेटी का प्रयोग किया जाता है। उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि सरल व सुलभ चिकित्स पद्धति ने भी आधुनिक रूप धारण कर लिया जो आज की आवश्यकता भी है क्योंकि साफ सफाई एवं यंत्रों के प्रयोग को आज का शिक्षित प्राणी शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है। इसी तरह के विभिन्न यंत्रों के विषय में उनकी विस्तृत जानकारी का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक हो गया है। अतः हम आगे इस इकाई में इन्हीं यंत्रों के प्रयोग एवं उसमें ध्यान रखने वाली सावधानियों का अध्ययन करने का प्रयास करेगें।

11.2 उद्दे□य

प्राकृतिक चिकित्सा में विभिन्न उपचार विधियों की विधि का अध्ययन करना।

- इन विधियों का रोगों में प्रयोग हेतु जानकारी।

- यंत्रों के प्रयोग में सावधानी एवं उनका महत्व।

11.3 प्राकृतिक चिकित्सा विधियाँ

प्रारम्भिक अवस्था में प्राकृतिक चिकित्सा का स्वरूप एकदम साधारण था। जिसमें किसी प्रकार के यंत्रों की आवश्यकता नहीं थी उस समय केवल कुछ बर्तनी से ही पंच महाभूत चिकित्सा सम्पन्न की जाती थी परन्तु जैसे जैसे समय और विज्ञान की प्रगति हुई वैसे वैसे ही प्राकृतिक चिकित्स में उनेकों यंत्रों के प्रयोग में कुछ मूलभूत चिकित्सा की कमियों को दूर करना सम्भव हो रहा है। उदाहरण के लिए लौहे के बर्तनों या उपकरणों में जहां जंग लगने की सम्भावनाएं रहती थी उसी के स्थान पर वर्तमान में फाइबर के उपकरणों का उपयोग होने लगा है। इनके रख रखाव एवं स्वच्छता क कारण ही आज इनका प्रचलन भी बढ़ता जा रहा है। यंत्रों में विद्युत के प्रयोग की शुरूआत भी पिछले दो दशक से प्रारम्भ हुई है। जिनसे प्रमुख रूप से भाप स्नान में भाप बनाने वाला यंत्र जेट स्प्ते में बिजली की मोटर का प्रयोग, जाकुंजी में मोटर का प्रयोग और मालिश में म मसाजर (विद्युत) का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राकृतिक चिकित्सा में भी आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसमें प्रयुक्त होने वाले विभिन्न यंत्रों का विवरण इस प्रकार है।

धारापात

1 जेट स्त्रे यंत्र – जेट स्त्रे यंत्र के द्वारा पानी काफी तेजी से निकलता है। जैसाकि नाम से ही ज्ञात होता है कि इसमें तेज धाराओं से प्रभावित अमे विशेष पर स्नान कराया जाता है। इस यंत्र में किसी प्रकार की विद्युत का प्रयोग नहीं होता क्योंकि इसको नल की टोटी में एक रबड़ की नलिका के साथ जोड कर नल के द्वारा जल के प्रवाह का खोल दिया जाता है। जिससे तेजी से पानी निकलता है। आजकल इसमें भी पानी के प्रेशर को बढ़ाने हेतु मोटर का प्रयोग भी किया जाता है। इसके द्वारा घुटने, कंधे, हाथ, कमर, छाती आदि रोगों में उपचार दिया जाता है। इसको संधियों, पेट व अन्य पेशियों में देने से पाचन संस्थान के रोग रीढ़ पर देने से रीढ़ के रोग, स्नायु तंत्र संबंधित विकार तथा तनाव व अनिद्रा आदि कई रोग दूर किए जा सकते है इसका प्रयोग बौद्धिक थकान और लकवा में भी किया जा सकता है।

सावधानियां

गर्भाशय, गुर्दे, आंत, यकृत चर्म रोग तीव्र सूजन, अलसर इत्यादि ये दो तीन मिनट तक दे सकते है।

वतुलाकार

2 वतुलाकार जेट स्प्रे यंत्र

इस यंत्र में सात फीट की ऊँचाई पर एक फव्वारा लगा होता है। जिसके नीचे 10–10 इंच के अन्तरान पर पतले छिद्रों वाले गोलाकार होते हुए भी सामने का भाग काट दिया जाता है अर्थात् गोलाकार पाइप का आगे का हिस्सा काटने के बाद किराने बन्द कर दिए जाते है इस तरह से पानी केवल छिद्रों से ही अन्दर की ओर तेजी से निकलता है। इन्हीं C आकार पाइपाके कि कटे हुए भाग से प्रवेश करते हुए व्यक्ति को उनके बीच में खड़ा किया जाता है और खड़े हुए व्यक्ति दर तेज धाराओं का प्रवाह चालू किया जाता है। इस स्नान में कुछ देर गमर कुछ देर ठण्डा अर्थात् दोनों तरह के पानी का प्रवाह किया जा सकता है। इस स्नान को देने से चारों और शक्तिशाली धाराओं के द्वारा भीतरी ओर बाहरी अंगों की मालिश हो जाती है। इस स्नान का प्रयोग सूर्य स्नान भाप स्नान, गीलीचादर, लपेट इत्यादि से उपचार देने के पश्चात इसक प्रयोग भी किया जाता है।

3 हाइड्रोकोलन यंत्र

इस यंत्र का उदगम विदेशों में प्रारम्भ हुआ धीरे धीरे भारत वर्ष में भी इसका प्रयोग होना प्रारम्भ हो गया। इस यंत्र को एनिमा का एक विकसित रूप भी कहा जा सकता है इस यंत्र के प्रयोग का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी स्वीकार कर प्रयोग कर रहा है। जहां एनिमा द्वारा बड़ी आंत के कुछ भाग को ही साफ किया जा सकता है। वही इस यंत्र के द्वारा बड़ी घांत के आधे भाग की सफाई की जा सकती है। एनिमा में पानी की मात्रा की मात्रा समित होती है परन्तु इसमें पानी की मात्रा का कोई निर्धारण नहीं होता क्योंकि इस यंत्र में गुदा द्वार के द्वारा एक ऐसी नलि बड़ी आंत की ओर डाली जाती है जिसमें पानी भी लगातार चलता रहता है पानी से गीला होकर मल कर बाहर निकलने की प्रक्रिया भी निरन्तर होती रहती है। यही इस यंत्र की विशेषता भी कही जाती है। इससे पानी को आंत में रोक कर रखने की प्रक्रिया नहीं होती। वैसे तो इस यंत्र में किसी प्रकार का प्रेशर अथवा दाब नहीं होता है। इससे मुख्य रूप से पानी की शुद्धता बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि यह पानी आंतों में प्रवेश कराया जाता है। अथवा अस्वच्छ जल के कारण

आंतों में संक्रमण की भी सम्भावना बनी रहती है इसी के साथ इस यंत्र में शरीर के ताप के अनुसार पानी के तापमान का निर्धारण करने हेतु एक तापमान को निर्धारित करने हेतु एक तापमान नियंत्रक यंत्र भी इसके साथ लगा होता है। जिससे शरीर के तापमान के अनुसार ही पानी क तापमान नियंत्रित कर उसे शरीर में प्रवेश कराया जाता है।

रोगी को इसका प्रयोग सामान्यतः साप्ताहिक कराते हुए कुल तीन से चार आवृतियां दी जा सकती है। इसके प्रयोग से पहले दिन रोगी को अल्पाहार कराते हुए दलिया या खिचडी दी जाती है और उसके बाद में इस यंत्र द्वारा एक से डेढ घण्टे तक बडी आंत की सफाई वाले यंत्र के प्रयोग के बाद रोगी को दलिया अथवा खिचडी घी डालकर खिलाई जाती है। साथ साथ रोगी को आंत को अपनी स्वाभाविक स्थिति में आने तक विश्राम कराया जाता है। इससे एक विशेष ध्यान रखना आवश्यक है कि रोगी उपचार के तुरन्त बाद शारीरिक श्रम न करें एवं गरिष्ठ भोजन का सेवन, भी अत्यन्त कष्टकारी हो सकता है। इस यंत्र में किसी प्रकार की विद्युत मोटर नहीं होता परन्तु पानी की शुद्धता हेतु लगे जल शुद्धि यंत्र में एवं पानी के तापमान को नियंत्रित करने हेतु विद्युत का प्रयोग किया जाता है।

4 भाप स्नान यंत्र

यह यंत्र मुख्य रूप से दो भागों से मिलकर बना है। भाप बनाने वाला यंत्र तथा भाप पेटी या कमरा भाप बनाने का यंत्र इस यंत्र के द्वारा जल को वाष्प में परिवर्तित कर भाप तैयार की जाती है इस यंत्र के अतिरिक्त भाप बनाने के लिए कुकर का भी प्रयोग किया जाता है। कुकर में पानी डालकर कुछ भाग खाली छोड देना चाहिए तथा ढक्कन लगा कर सीटी को हटा कर नोजल पर रबड का पाइप जोड दिया जाता है। इस पाईप की लम्बाई सुविधानुसार ली जा सकती है। तथा कुकर को आंच पर रख देते है। भाप बनने पर इसका प्रयोग सम्पूर्ण भाव स्नान पेटी के साथ तथा विशेष अंग पर भी किया जा सकता है।

भाप पेटी या बक्सा –

यह एक चकौर बक्सा आकार का होता है यह लकड़ी और फाइबर का बना होता है। यह इतना लम्बा व चौडा होता है कि इसमें रोगी सरलता पूर्वक कुर्सी पर बैठ सके। इस बक्से के सामने की तरफ एक दरवाजा होता है। जिसे खोल कर रोगी को इसमें कुर्सी

या स्टूल डालकर उस पर इस प्रकार बैठाते है कि उसकी गर्दन बाहर होती है। तथा सम्पूर्ण शरीर बक्से के भीतर ही रहता है। रोगी के बैठने पर दरवाजा बंद कर देते है। तथा भाप बनाने वाले तंत्र को इस पेटी के साथ जोड देते है जिससे भाप इक्ट्ठा होने लगती है।

इस स्नान को देने से पहले रोगी को पानी पिलाकर उसके सिर पर ठण्डे पानी का तौलिया भी रखा जाता है।

भाप का कमरा –

इस बक्से की तरह ईट तथा सीमेन्ट से बने छोटे कमरे में भी भाप इक्ट्ठा करके भाप स्नान काराया जाता है। इसमें एक साथ कई रोगी भाप स्नान ले सकते है यह कमरा इतना बडा होता है कि इसमे एक बार में 3–4 लोग आ जाए। यह चारों ओर से बन्द होता है। इससे शरीर में इक्ट्ठे हुए विजातीय द्रव्य पसीने के साथ शरीर से सरलता से बाहर निकाले जा सकते है।

5 जलान्तर्गत जलीय मालि□ा टब

यह विशेष प्रकार का स्नान टब होता है। इसे बनाने में फाइबर का प्रयोग किया जाता है। इसमें मोटर तथा मशीनों द्वारा जल के भीतर ही रोगी के पूरे शरीर की मालिश की जाती है। जल के विभिन्न तापों का प्रयोग भी इसमें किया जा सकता है तथा जल के विभिन्न दबावों के द्वारा ही शरीर के अलग अलग भाग की मालिश सम्भव होती है। इस टब में पानी भर उसमें रोगी को इस प्रकार लौटा दिया जाता है कि केवल रोगी का सिर टब से बाहर होता है तथा पूरा शरीर जल के भीतर तथा इस टब से जुडी मोटर को चालु करते ही टब में लगे अलग अलग जल के स्रोतों से तेज दबाव के साथ पानी निकालकर रोगी के शरीर पर पड़ता है।

इस स्नान के द्वारा रक्त का संचार सुचारू हो जाता है। मांस पेशियों में लचीलापन आने लगता है। शरीर के सभी संस्थानों कि क्रिया सुचारू करती है।

6 इमरसन स्नान टब –

यह एक विशेष प्रकार का टब होता है यह भी फाइबर तथा सीमेन्ट का बना होता है। इसमें ठण्डे या गर्म दोनों प्रकार के जल प्रयोग किया जाता है। इसे गर्भ या ठण्डे जल

के नल से जोड दिया जाता है तथा शीतल, न्यूट्रल घर्षण युक्त तथा क्रमिक ठण्डा और गरम टब स्नान इसके द्वारा दिया जा सकता है।

7 एफ्यूजन –

यह भी एक मग के आकार का यंत्र होता है यह मग एक होल पाइप के साथ तथा छिद्रों वाली टोटी के रूप में होता है। जिसमें से पानी की एक तथा अनेक धाराओं से विभिन्न अंगों पर स्नान दिया जाता है। जैसे छाती पर, घुटने पर, कमर पर आदि। यह स्नान हृदय को शक्ति प्रदान करता है। फेफड़े भी सशक्त होते है। सभी प्रकार के दर्दों में राहत पहुंचाता है। इससे शरीर में स्फुर्ति आती है।

8 भंवर कूप स्नान टब

यह विशेष आकार का टब होता है। यह कुंए के आकार का अर्थात् गोल आकार का टब होता है। इसमें मोटर के द्वारा तीव्र गति से घुमाव को जल में उत्पन्न करके गोल–गोल भंवर सदृश्य लहरें पैदा की जाती है यह अत्यन्त आनन्ददायी तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाला स्नान है। इस स्थान के द्वारा गुर्दे, यकृत, त्वचा, फेफड़ों तथा संस्थान की सक्रियता बढ़ती है।

9 कटिस्नान टब

यह विशेष प्रकार का कुर्सीनुमा टब होता है। इसका आकार इस तरह का होता है कि रोगी के बैठने पर उसकी पीठ इससे सटी रहती है और नाभिकीय कटि प्रदेश भाग पानी में डूबा रहता है तथा बाकी का शरीर पानी से बाहर रहता है दोनो पैर व हाथ टब के बाहर रहते है पैर गीले नहीं होने चाहिए तथा पैरों के नीचे लकड़ी या प्लास्टिक का पटरा रखा जाता है। इसी टब के द्वारा गरम, ठण्डा तथा क्रमिक कटि स्नान रोगी को उपचार में कराया जाता है। इस के द्वारा पेट संबंधी मूत्र संबंधी,, स्त्रीजन्य विकारों में लाभ मिलता है।

यह एक विशेष प्रकार का स्नान होता है। कटि स्नान पेट के भाग पर रक्त के संचार को तीव्र करता है। जिससे पेट में विधि उपस्थित सभी अवयव जैसे यकृत, पित्ताश्य, अग्नाश्य, छोटी आंत, बड़ी आंत, प्रजन्न अंग तथा रीढ़ के पास स्थित गुर्दों आदि की क्रियाशीलता में वृद्धि होने लगती है। यह पेट को साफ करने में भी सहायक होता है। यह स्नान सभी

रोगों में लाभ पहुचाता है। परन्तु ज्वर, सिरदर्द, भूख अवरूढ़ता, कब्ज, गैस, बवासीर, पीतिया, पेट की गर्मी, अंजीर्ण तथा उदर संबंधी रोगों में बहुत ही लाभप्रद है। कटि स्नान तीन प्रकार का होता है।

1 ठण्डा कटि स्नान

2 गर्म कटि स्नान

3 गर्म और ठण्डा कटि स्नान

1 ठण्डा कटि स्नान –

इस स्नान के लिए टब में ठण्डाा पानी इतनी मात्रा में हो की रोगी की नाभि पानी में डुब जाए, रोगी को टब में बैठाकर उसके पैरों को किसी लकड़ी की चौी पर रखे तथा स्नान के दौरान रोगी तौलिया स`पेट पर बायी से दायी और धीरे धीरे रगड़े इस स्नान को 10 से 15 मिनट तक किया जा सकता है।

लाभ – यह स्नान कब्ज, बदहजमी, मोटापे में लाभ पहुंचाता है।

सावधानियां – पेट के किसी भी अवयव में सूजनह होने पर यह स्नान नहीं देना चाहिए। कमर दर्द, बुखार, उल्टी, दस्त तथा रजोधर्म के दिनों में भी यह स्नान नहीं करना चाहिए।

2 गर्म कटि स्नान – गर्म कटि स्नान के लिए, कटि स्नान टब में गर्म जल भर ले। रोगी को टब में बैठाने से पूर्व उसे 1–2 गिलास ठंडा जल पिलाएं तथा सिर पर ठण्डे पानी में भीगा हुआ तौलिया लपेट दे इसके बाद रोगी को टब में इस प्रकार बैठाए की उसके पैर टब के बाहर ही रहे तथा पैर किसी चोकी के ऊपर रखें। रोगी स्नान के समय किसी कपड़े की सहायता से पेट पर गोलाकार गति में फ्रिक्शन करता रहे। यह स्नान 10 से 15 मिनट तक किया जा सकता है। स्नान की अवधि के पश्चात रोगी को ठंडे जल का स्नान भी कराना चाहिए।

लाभ –

गर्म कटि स्नान स्त्री रोगों, उदर रोगों, मलाशय या मूत्राशय में सूजन के कारण उत्पन्न रोगों, शियाटिका, लम्बर – स्पौनडिलांसिस तथा तंत्रिका तंत्र के विकारों में लाभदायक है।

सावधानियां –

इस स्नान के कमजोर, उच्च रक्तचाप बुखार तथा स्त्रियों में रजोधर्म होने की अवस्था में नहीं देना चाहिए।

3 गर्म ठण्डा कटि स्थान – इस स्नान को रोगी को कराने के लिए सर्वप्रथम गर्म कटि स्नान की तरह ही रोगी को 2 गिलास ठण्डा पानी पिलाना चाहिए तथा सिर पर ठण्डी लपेट लगानी चाहिए इस स्नान को करापे के लिए दो कटि स्नान टब होते है। एक टब में गर्म तथा दूसरे टब में ठण्डा पानी भरा होता है। रोगी को पहले 5 मिनट के लिए गर्म टब में 3 बार दोहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस स्नान को अन्य विधि द्वारा भी दिया जा सकता है।

इस विधि में रोगी को गर्म पानी के टब में 3 मिनट तथा 1 मिनट ठण्डे पानी के टब में बैठाया जाता है। यह क्रिया क्रमशः 3–3 बार दोहराई जाती है।

लाभ – इस स्नान के द्वारा मांसपेशियों व अन्य अवयवों में क्रियाशीलता तथा क्रमाकुंचन संचलन में वृद्धि होती है। यह स्नान पुराने दर्दों तथा पेट के अन्य सभी विकारों में लाभदायक है।

10 गर्म हस्त पाद स्नान

इस स्नान को रोगी को देने के लिए दो बाल्टियों या विशेष प्रकार के यंत्र की सहायता से किया जा सकता है। इस स्नान को कराने से पूर्व रोगी को 1–2 गिलास ठंडा पानी पिलाकर तथा सिर पर ठंडी लपेट लगानी चाहिए। इसके पश्चात रोगी के दोनों हाथों को गर्म पानी डुबोकर रखे तथा दोनों पैरों को भी दुसरी बाल्टी में टखने तक गर्म पानी में डुबोकर रखे। रोगी को सुविधानुसार किसी लकड़ी के स्टूल पर या कुर्सी पर बैठाकर स्नान कराना चाहिए। चेहरे को छोड़कर पूरा शरीर कम्बल से ढक देना चाहिए। थोडी थोडी देर में बाल्टियों में गर्म पानी मिलाते रहना चाहिए। जिससे पानी का तापमान बना रहे। रोगी के बीच में थोडा थोडा पानी भी पिलाते रहना चाहिए।

लाभ – इस स्नान के द्वारा हाथ और पैरो की रक्तवाहिकाएं फैल जाती है। जिससे रक्त का संचार बढ़ने लगता है और रक्त वाहिनियों में सुचारू रूप से दौड़ने लगता है। यह स्नान अस्थमा खांसी तथा नसों से संबंधित रोगों में लाभ पहुचाता है।

सावधानियां – उच्च रक्तचाप, कमजोर, तथा हृदय संबंधित रोगों में यह स्नान वर्जित है।

11 रीढ़ स्नान –

रीढ़ स्नान को अग्रेजी में Spinal Bath कहते है। यह स्नान चार प्रकार से किया जा सकता है।

पहली विधि – इस विधि में एक लम्बी तोलियां को ठंडे जल में भिगोकर निचोड लिया जाता है। तथा रोगी तोलियों के दोनों सिरों को इस प्रकार पकड़कर रखता है कि रीढ की हड्डी को उससे रगड सके। इस स्नान में हर एक दो मिनट में तोलिया को ठंडे पानी में भिगो कर निचोड लेना चाहिए। इस स्नान को 5 से 10 मिनट तक किया जा सकता है।

दूसरी विधि – इस विधि में रोगी को लकडी की चौी पर नंगे बदन उकडू बैठाकर उसकी रीढ़ की हड्डी पर किसी बर्तन या लोटे द्वारा ठंडे पानी की पतली धार को बिना रूके गिराते है। यह स्नान 5 से 12 मिनट तक किया जा सकत है। स्नान के पश्चात रीढ को सूखे कपड़े से रगड़ना चाहिए।

तीसरी विधि –

इस विधि में एक विशेष प्रकार का टब होता है। उस टब में ठंडा पानी भरकर रोगी को इस तरह पानी के बल लेटाना होता है कि सिर्फ रीढ़ की हड्डी तथा उसके आस पास पानी का स्पर्श होता रहे। यह स्नान 5 से 20 मिनट तक दिया जा सकता है। स्नान के बार रोगी की पीठ को सूखे तोलिये से रगड कर गर्म कर देना चाहिए।

लाभ – उपरोक्त रीड स्नान की विधियों द्वारा कमर में रक्त का संचालन बढ़ाकर स्नायुओं को सशक्त बनाया जा सकता है। यह स्नान निम्न रक्तचाप, अनिद्रा आदि रोगों से लाभ पहुंचाता है।

2 गर्म रीढ स्थान – इस विधि के लिए रीढ स्नान टब में गर्म पानी भर ले रोगी को यह स्नान देने के पूर्व ठंडा पानी पिला कर सिर पर गीली लपेट लगानी चाहिए। रीढ़ स्नान के समय रोगी के पैरो के लकड़ी की चौकी पर रखना चाहिए। पैर सूखे रहना चाहिए। गर्म रीढ़ स्नान के दौरान टब में पानी का तापमान बनाए रखने के लिए बीच बीच में गर्म पानी मिलाते रहे यह स्नान 5 से 10 मिनट तक दिया जा सकता है। इसके बाद रोगी को ठंडे पानी से स्नान कराना चाहिए।

लाभ – रीढ़, पीठ तथा कमर दर्द समाप्त हो जाते है। फेफड़ों से संबंधित रोगों में भी लाभदायक है।

12 नेत्र स्नान

नेत्र स्नान के लिए शीशे का गिलास या नेत्र स्नान करने वाला गिलास जिसे Eye glass कहते है की आवश्यकता होती है। गिलास में गुलाब जल, त्रिफला, फिटकरी तथा नींबू का जल भरकर बारी बारी से आंखे 5–7 मिनट तक डाले और उसी जल के भीतर खोले तथा बंद कर दूसरी आंख के स्नान के लिए दुबारा जल भरे। ऐसा 2–3 बार करें।

लाभ – यह स्नान नेत्रों के लिए तथा नेत्र विकारों में लाभकारी है तथा यह नेत्र के आसपास रक्त संचार में वृद्धि करता है। नेत्रों में खुजली या जलन को दूर करता है।

13 मेहन स्नान

इस स्नान को लिंग स्नान, शिश्न स्नान व इन्द्रिय स्नान भी कहते है। इस स्नान के अविष्कार लूई कूने है। यह स्नान स्त्री रोगों को भी लाभकारी है।

विधि – इस स्नान के लिए एक टब के अन्दर 6–8 इंच ऊँचा स्टूल रखे। इस टब में ठंडा पानी इतना भरे की स्टूल सतह के पास तक पानी आ जाए तथा स्टूल की सतह सूखी रहे।

इस स्टूल पर नंगे शरीर बैठ कर पैरों को टब से बाहर से रखी दूसरी चौकी पर रखे। स्त्री रोगी किसी मुलायम कप को टब के पानी में भिगो कर योनि के मुंह के ऊपरी हिस्से को धीरे धीरे बिना रूके धोती रहे। इससे बाहर की चमड़ी को ही जाता है, भीतर का भाग नहीं। यह स्नान 5 मिनट से लेकर 20 मिनट तक किया जा सकता है। स्नान के पश्चात् तौलिया अथवा हथेली शरीर रगड़कर गर्म कर लेना चाहिए।

मेहन स्नान पुरूषों के लिए – पुरूषों को भी उसी प्रकार टब में बैठा कर जननेन्द्रिय के मुंह के ऊपर की चमड़ी के अन्तिम सिरा को या शिशन के अग्रभाग की चमड़ी को बाये हाथ की दो अंगुलियों से पकड़कर थोड़ा आगे खींचकर रखें फिर मुलायम से पानी उठाकर उसे धीरे धीरे धोना चाहिए। यह स्नान 5 से 20 मिनट तक करना चाहिए। तथा शरीर को तौलिया या हथेली द्वारा गर्म कर लेना चाहिए।

लाभ – इस स्नान के द्वारा शरीर स्थित दुर्द्रव्यों की गई शान्त हो जाती है, स्नायु शक्तिशाली होते है। जीवनशक्ति में भी वृद्धि होती है।

सावधानियां – इसमें कई बार स्नान के पश्चात शरीर का विकास घर्षण के स्थान पर प्रकट हो जाता है। जिससे उस स्थान पर जलन आदि होने लगती है जो अच्छा चिन्ह है इससे घबराना नहीं चाहिए। इस स्नान में ठण्डे जल का प्रयोग करना चाहते तथा कपड़ा मुलायक होना चाहिए।

14 एनिमा

यंत्र – एनिमा पोट व टयूब

एनिमा एक ऐसा उपचार है जिसके द्वारा मलाश्य के भीतर एक यंत्र की सहायता से जिसे एनिमा पोट कहते है। घोल पहुंचाकर आंतो से विजातीय द्रव्य को बाहर निकाला जाता है। इस यंत्र में एक पोट देता है जिसमें एक नलिका लगी होती है एक टयूब को सिरा जुड़ा रहता है।

एनोमा देने से पूर्व एनीमा पोट को ठीक से साफ करके पोछ लेना चाहिए। इस पोट में तैयार जल भर पोट को 3–4 फुट ऊँचा लटकाना चाहिए। एनीमा देने से पहले तख्त के पैताने को 3 इंच ऊँचा कर रोगी को उस पर बाई करवट से लैटाकर पोट के नोजल पर तेल या वैसलीन लगातार गुदा में प्रवेश कराना चाहिए । फिर धीरे धीरे पानी के घोल को मलाश्य में जाने देना चाहिए। इस दौरान यदि रोगी के पेट में दर्द हो तो कुछ देर पानी के बहाव को रोक देना चाहिए। आमतौर पर 200 से 1 लीटर पानी मलाश्य के भीतर पहुंचाया जा सकता है। कुछ देर पानी को भीतर ही रोकना चाहिए तथा थोड़ा चलना फिरना चाहिए और उसके बाद शौचालय में जाकर उसे धीरे धीरे पानी और पेट में जमे मल का त्याग करना चाहिए।

लाभ – एनीमा मल को घुलाकर बाहर निकलता है तथा जमा हुआ मल, कब्ज, अजीर्ण आदि से राहत मिलती है। इससे आंते शक्तिशाली बनती है तथा आंतों में रक्त संचार तेज होकर उसकी क्रियाशीलता में तीव्रता आती है।

सभी असाध्य रोगों में लाभकारी है।

सावधानियां –

- ऋतु रोग और रोगी के अनुसार ही एनीमा जल तैयार करना चाहिए।
- एनीमा पोट लेटने के स्थान से 1 1/2 मीटर ऊँचाई पर टागना चाहिए।

- एनीमा के समय दर्द हो तो तुरन्त बन्द कर लेना चाहिए।
- एनीमा के बाद ठण्डा या गरम जल स्नान करना चाहिए बिना कारण एनीमा नहीं लेना चाहिए।

15 थ्री – इन – वन हीप बाध

जैसा कि इसका नाम है वैसा ही इसका काम भी है। इसके द्वारा तीन प्रकार के भिन्न भिन्न कटि तथा रीढ नान टबो का लाभ लिया जाने के कारण इसे थ्री इन वन ट्रीप बाथ कहते है। इस विशेष टब के द्वारा साधारण कटि स्नान, रीढ स्नान तथा स्पाइनल स्प्रे तीनों का एक साथ लाभ लिया जा सकता है। इसमें ठण्डे और गर्म दोनों प्रकार क`जल प्रयोग किया जा सकता है। आजकल चिकित्सा केन्द्रों में इस प्रकार के टबों का प्रचलन बढ़ गया है। इसके द्वारा उपरोक्त स्नानों के सभी लाभ प्राप्त किए जा सकते है।

16 चेहरे का भाप स्नान यंत्र –

यह मुख्य रूप से चेहरे पर भाप लेने के लिए तैयार किया गया है। इससे सुविधापुर्वक चेहरे का भाप स्नान लिया जा सकता है। इस यंत्र के द्वारा जल को विद्युत द्वारा चालित मशिन से परिवर्तन कर भाप बनाई जाती है। इससे वाष्प के साथ अजवाइनख तुलसी के पत्ते, युक्लीपटरन का तेल आदि डालकर भी आप तैयार की जाती है। भाप तैयार होने पर चेहरे को यंत्र के ऊपर ले जाते है जिससे सरलता से भाप श्वसन के साथ शरीर के भीतर लिया जा सकता है। भाप लेते समय तौलिया से सिर को ढक्कर रखना चाहिए। यह स्नान इसे 7 मिनट तक लिया जा सकता है।

लाभ – इससे चेहरे पर रक्त का संचार बढने एवं चेहरे पर रोनक आती है तथा गले के रोगों, टॉसिल, सायनोसाइटिस आदि में लाभकारी है।

17 रबड़ की बोतलें

टब तथा यंत्रों के अतिरिक्त जल चिकित्सा में सेक के लिए रबड़ से निर्मित बोतलों का भी प्रयोग किया जाता है इन बोतलों में गर्म तथा ठण्डा जल भरकर सफाई की जाती है।

11.4 सारांश

हमने इस इकाई के माध्यम से पंच महाभूत चिकित्सा प्रणाली के साधारण उपचार यंत्रों के आधुनिक रूप से विषय में जानकारी प्राप्त की साथ ही उन यंत्रों के विभिन्न बिमारियों में प्रयोग से किस प्रकार रोग का उपचार किया जा सकता है। उसका अध्ययन भी किया। इन यंत्रों में बढ़ते विद्युत प्रयोग को आधुनिकता से जोड़ते हुए उसके विकास को आज के युग की आवश्यकता से जोड़ते हुए प्राकृतिक चिकित्सा के विकसित रूप का विवेचन भी किया। अध्ययन के पश्चात हमने जाना कि वास्तव में इन यंत्रों के माध्यम से दिए गए उपचार से रोगों के उपचार में अद्वितीय परिणाम प्राप्त हकए जा सकते है। उपचार की गुणवत्ता मे ंसुधार देखा जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा के प्रारम्भिक रूप से आज तक के प्रयुक्त होने वाले यंत्रों के प्रभावों का अध्ययन कर हम प्राकृतिक चिकित्सा पर गौरवान्वित अनुभव कर सकते है तथा उसके परिणाम भी इसकी लोकप्रियता के साथ देखे जा सकते है।

11.5 बोधात्मक प्रश्न

1 प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न विधियों का संक्षेप में वर्णन करें।

2 हाइड्रोकोलन यंत्र का एनिमा यंत्र से तुलनात्मक विवेचन करें।

3 भाप स्नान की विधि उसमें ध्यान रखने वाली सावधनियां तथा किन रोगी मे ंइसका प्रयोग किया जाता है।

4 स्पाइनल स्प्रे की विधि बताते हुए उसके लाभों का वर्णन करें।

11.6 संदर्भ ग्रंथ

1 प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – राकेश जिन्दल

2 वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ.पी. सक्सेना

3 प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र – आचार्य शेषाद्रि स्वाभिनाथन्

4 जल चिकित्सा – फादर क्नाइप

इकाई : 12 – एनिमा विधि, यंत्र प्रयोग एवं उसमें प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के द्रव्य

इकाई संरचना

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 कोलोन हाईड्रोथैरेपी

12.3 एनिमा विधि

12.4 एनिमा की आयुर्वेदिक अवधारणा

12.5 ऐनिमा में प्रयुक्त द्रव्य

12.6 एनिमा से पूर्व व बाद में आवश्यक बातें (सावधानियां)

12.7 एनिमा का महत्व

12.8 सारांश

12.9 बोधात्मक प्रश्न

12.10 संदर्भ ग्रंथ

12.0 प्रस्तावना

मलाशय शरीर की सबसे अधिक गंदगी बदबूदार द्रव्य अथवा मल को धारण करने वाला अंग है। भोजन का पाचन होने के पश्चात् अवशोषण होता होता है एवं बहुत भोजन का भाग अपचा भी रह जाता है इसके पश्चात एक निश्चित आवृति एवंसमयके अनुसार इस मल का गुदाद्वार द्वारा शरीर से निष्कासन हो जाता है यह क्रम सामान्यतः एक निश्चित आवृति एवं अवधि में पूरा हो जाता है परन्तु इस क्रम में जब भी बदलाव आता है तो कब्ज की स्थिति हो जाती है भोजन की प्रकृति मात्र, दूषिता एवं अनियमित्ता के कारण पाचन तंत्र की खराबी से एवं आंतों से कमांकुचन गति के सामान्य न होने के कारण कब्ज रोग घेरने लगता है इस रोग के सहज प्राकृतिक उपचार के लिए एनिमा यंत्र द्वारा

मल के समय से विसर्जन की प्राकृतिक क्रिया प्रयोग में लायी जाती है जिसे एनिमा कहते है इस एनिमा यंत्र द्वारा मल को गुदाद्वार द्वारा विभिन्न द्रव्यों को आंतों में ले जाया जाता है एवं विरेचन कराया जाता है।

12.1 उद्दे□य

एनिमा प्राकृतिक चिकित्सा में सबसे आवश्यक चिकित्सासाधनों में माना जाता है आजकल बिगड़ती जीवन शैली से कब्ज एवं कब्ज जनित रोगों से रक्षा के लिए एनिमा किसी संजीवनी बूटी से कम नहीं है प्रस्तुत इकाई में आयुर्वेद एवं पंचकर्म में एनिमा के प्रयोग के संबंध में पढ़ेगें। एनिमा का वर्गीकरण एवं प्रक्रिया के संबंध में प्रस्तुत इकाई जान सकेंगे आधुनिक यंत्र कोलोन हाइड्रोथेरेपी के सिद्धान्त यंत्र एवं विधि की जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे। आंतों क्रमानुचन गति का कब्ज एवं कब्ज जनित रोगों पर परोक्ष प्रभाव पड़ता है ऐनिमा के संबंध में जटिलताएं भी है इसके संबंध में आपको जानकारी प्राप्त होगी।

12.2 कोलोन हाईड्रोथैरेपी

यह एक आधुनिक यंत्र है। जिसके द्वारा बड़ी आंत के मध्य भाग तक क ामल मिना किसी हिंसक माध्यम के धीरे धीरे बाहर निकलता है इसकी विशेषता यह है कि इसमें बड़ी आंत में पानी चढ़ाने के साथ साथ ही भीगे तथा आंत से छुटा हुआ मल भी साथ साथ एक ट्यूब के माध्यम से शोचालय में सीधा जाता रहता है जबकि एनिमा में थोड़ा सा पानी आंत में चढ़ाने के बाद पानी या द्रव्य को रोक दिया जाता है और कुछ देर बाद मल को बाहर निकालने के लिए शोच जाना पड़ता है। इसमें जल की मात्रा की एक सीमा होती है उसी प्रकार मल बहार निकलने की भी अथवा मल को गीला करने की एक सीमा होती है परन्तु उपरोक्त मशीन द्वारा हम तब तक पानी चढ़ाने व मल बाहर करने की संयुक्त प्रक्रिया चालू रख सकते है जब तक कि बड़ी आंत का मध्य भाग मलविहिन नहीं हो जाता है। यह प्रक्रिया कुछ विशेष कारणों से अत्यधिक लाभदायक है उदाहरण के लिए इस मशीन द्वारा पानी का तापमान बोडी या शरीर के तापमान के अनुसार घटाया बढाया जा सकता है। साथ ही इस में प्रयोग होने वाला पानी अथवा द्रव्य द्रव्य शोषित व बिना किसी संक्रमण के प्रयोग किया जाता है जो आंतो के लिए बहुत ही आवश्यक है। इसके बाद रोगी को पूरे दिन धी खिंचड़ी खिलाकर आराम करने की सलाह दी जाती है।

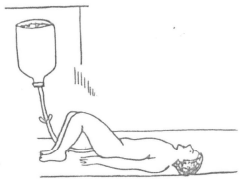

रबर की बोतल द्वारा एनिमा

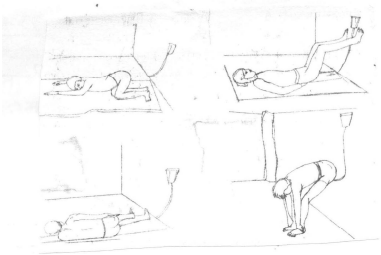

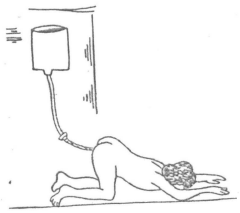

एनिमा लेने की विधि

12.3 एनिमा विधि

एनिमा विधि चार्ट

जिस प्रकार से शरीर में विजातीय द्रव्य निकालने हेतु फेफड़े त्वचा एवं मूत्रेन्द्रिय काम करते है उसी प्रकार बड़ी आंत भी हमारे शरीर से एकत्र मल को बाहर निकाल कर शरीर शुद्धि का कार्य करती है। प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा मल एकत्र होते होते पूरी आंत में मल का जमना शुरू हो जाता है जिससे हमारे स्वास्थ्य पर इसके बुरे प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इससे बचाव हेतु हमें दिन प्रतिदिन की अपनी आदतों को सुधारना तो आवश्यक है ही किन्तु इसके साथ बड़ी आंत को साफ करने के लिए एनिका प्रयोग किया जाता है। जिसका अभिप्राय है कि पानी द्वारा बड़ी आंत में जमे हुए मल कोमिला करके बाहर निकालने के लिए इस यंत्र का सहारा लिया जाता है। इस यंत्र में एक डब्बे के निचले हिस्से पर पानी निकालने के लिए एक पाईप जुड़ा होता है तथा उसी पाईप के दूसरे किनारे पर एक पानी की टूटी लगी होती है। इस पट्टी के दूसरे भाग पर एक रबर की ट्यूब जो लगभग 14 इंच लंबी होती है लगा दी जाती है। डब्बे में से पानी ट्यूब के द्वारा टूटी तक आता है और टूटी के बाद लगी नाली में टूटी खोलने से पानी चलना शुरू हो जाता है। यह 14 इंच की नाली गुदा द्वार के द्वारा बड़ी आंत तक सरसों का तेल या धीरे निकलकर सूखे व चिपके हुए मल को गीला करता है।

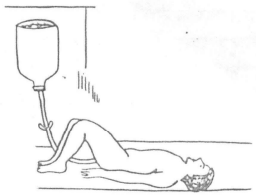

रबर की बोतल द्वारा एनिमा

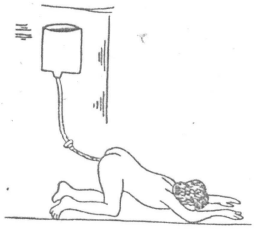

एनिमा लेने की विधि

इस नली द्वारा सो से दो सौ ग्राम पानी बड़ी आंत में पहुंचा दिया जाता है तथा इस मिनट तक इस पानी को अंदर रोक कर रखने का प्रयास किया जाता है। तत्पश्चात अथवा पानी को रोके जाने में असमर्थ होने पर शौच जाना चाहिए।

उपरोक्त संपूर्ण प्रक्रिया को ही एनिमा कहा जाता है। अब प्रश्न उठता है कि एनिमा लेते समय व्यक्ति के शरीर की अवस्था किस प्रकार रखनी चाहिए यह चार प्रकार से हो सकती है। पहली अवस्था में व्यक्ति खड़े होकर टांगें चौड़ी करते हुए आगे की ओर झुक जाता है और एनिमा पाइप गुदा द्वार में प्रवेश करा दिया जाता है। दूसरी अवस्था में जमीन पर घुटने टिकाते हुए दोनों हाथ और माथा आगे जमीन पर लगा दिया जाता है। जिससे नितम्ब ऊपर उठ जाते है तथा छाती का हिस्सा पृथ्वी को छुता रहता है। तीसरी अवस्था में एक टेबल जो एक तरफ से ऊँची और एक तरफ से नीची होती है उस पर ऊँचे वाले भाग की तरफ नितम्ब और नीचे वाले भाग की ओर सिर करके व्यक्ति को बायीं करवट लेटाकर एनिमा दिया जाता है। चतुर्थ अवस्था में भी तीसरी विधि में प्रयुक्त टेबल प्रयोग की जाती है लेकिन शरीर की स्थिति बायीं करवट न होकर व्यक्ति को घुटने मोड़कर कमर के बल सीधा लेटाकर एनिमा दिया जाता है।

उपरोक्त विवेचन में हमने जाना कि एनिमा किस प्रकार दिया जाता है। अब हम पढ़ेंगे कि आयुर्वेद में एनिमा की प्रक्रिया का नामकरण किस प्रकार है।

आयुर्वेद में एनिमा (अंत्र स्नान)

आयुर्वेदिक औषधिय प्रत्यारोपन उपचार जिसे बस्ती के नाम से जाना जाता है। अपने आप में तिल के तेल, कॉफी, ऐसिडोफिलस या पानी वाले एनीमा के बाद मलाशय में एक तरल रूप में एक हर्बल काढ़े को दवा के रूप में दिए जाने को शामिल करती है। यह उपचार आंतों की सफाई शरीर की आर्द्रता से मुक्त करने और शरीर के निचले हिस्से को तनाव और अकड़न से मुक्त करने में उपयोगी है। यदि आप परजीवी या फंगस से पीड़ित है तो विदंग या नीम पाउडर कएक अतिरिक्त चम्मच उपयोगी हो सकता है। इस यंत्र को दस मूल कहा जाता है। संस्कृत में इसका अर्थ दस मूलों से बना हुआ होता है। यदि गैस की प्रवृत्ति है और आंतों में सूजन या श्लेष्मा है तो दसमूल में एक चम्मच त्रिफला का उपयोग अत्यन्त लाभकारी हो सकता है।

त्रिफला में प्रयोग किए गए तीनों जड़ी–बूटियों को त्रिदोष से संबंधित और उनके असंतुलन के लिए अलग अलग लिया जा सकता है।

जिगर और पित्ताशय की सफाई के लिए कॉफी एनिमा लेने की सलाह दी जाती है क्योंकि ये अपने क्रमिक प्रवृत्ति के कारण इन अंगों से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालते हुए इन्हें साफ करती है।

12.4 एनिमा की आयुर्वेदिक अवधारणा

वायु प्रकोप आंतों में ही पैदा होती है। बस्ती वायु विकारों के लिए सबसे प्रचलित उपचार है हालांकि आमतौर पर समय की एक निर्धारित अवधि के दौरान कई एनिमा की आवश्यकता होती है। इससे कब्ज, पेट फूलना, जीर्ण ज्वर, सर्दी, यौन रोग, गुर्दे की पथरी, दिल का दर्द, पीठ दर्द, साइटिका और जोड़ों के अन्य दर्द से राहत मिलती है। कई अन्य वायु विकारों जैसे जोड़ों के दर्द, मांसपेशियों में ऐंठन और सिरदर्द का उपचार भी बस्ती द्वारा किया जा सकता है।

वायु रोगजनन में एक बहुत सक्रिय सिद्धान्त है। अगर हम बस्ती के उपयोग से वायु को नियंत्रित करते है तो हम बीमारियों की जड़ तक जाने में सफल हो जाते हैं।

वायु रोगों की अभिव्यक्ति में मुख्य कारण होता है। यह मल, मूत्र, पित्त और मूलमूत्र के अन्य वेगों को रोकने की इच्छा के लिए जबाव देह होता है। वायु मुख्य रूप से बड़ी आंतों में स्थित होता है लेकिन अस्थि ऊतक भी वायु के लिए एक स्थान होता है। इसलिए गुदा द्वार द्वारा दी जाने वाली दवाएं अस्थि ऊतक को प्रभावित करती है। आंतों का बलगम हड्डियों के बाहरी कवर से संबंधित होता है। हड्डियों को पोषण प्रदान करता है। इसलिए गुदा द्वार द्वारा दी जाने वाली दवाईयां हड्डियों की तह गहरी ऊतकों में जाते हुए वायु विकारों को ठीक करती है।

पारंपरिक ग्रंथों के अनुसार बस्ती के चार मुख्य प्रकार है। नीचे बस्ती के प्रत्येक प्रकार का उसके संकेतों और विपरीत संकेतों के साथ सूचीबद्ध वर्णन किया जा रहा है।

1 अनुवासन (तेल एनिमा) का शुद्ध वायु विकारों में प्रयोग किया जाता है और जब व्यक्ति में वायु असंतुलन से संबंधित अतिरिक्त भूख या सूखापन का लक्षण दिखता है।

2 निरूह अस्थापन (कोढ़े का एनिमा) का उपयोग अन्य बहुत सारी स्थितियों जैसे वायु निकासी के लिए, तंत्रिका रोग, आंत में वायु की स्थितियों, गठिया, कुछ बुखार की स्थितियों, बेहोशी, कुछ मूत्र रोग, भूख, दर्द, अत्यधिक एसिडिटी और हृदय रोगों के लिए किया जाता है।

3 उत्तर बस्ती (पुरूषों में मूत्रमार्ग के द्वारा महिलाओं की योनी के माध्यम से) का उपयोग कुछ चयनित वीर्य और स्खलन विकारों के लिए किया जाता है इसका उपयोग मूत्र क्रिया के दौरान दर्द या मूत्राशय में संक्रमण से जुड़े कुछ अन्य समस्याओं के लिए भी किया जा सकता है। मधुमेह से पीड़ित लोगों को इसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

4 मात्रा बस्ती (दैनिक तेल) एनिमा का उपयोग इस अवस्था में किया जाता है। जब व्यक्ति अत्यधिक कार्य करने के कारण या वनज उठाने के कारण ज्यादा यौन क्रिया तो ज्यादा चलने से या लम्बे समय से वायु विकारोंसे पीड़ित हो तो इसका प्रयोग किया जाताहै। इसके लिए मौसम आहार इत्यादि का कोई बन्धन नहीं है।

12.5 ऐनिमा में प्रयुक्त द्रव्य

रोग लक्षण एवं स्थिति के अनुसार एनिमा के युक्त होने वाले द्रव्य विभिन्न प्रकार के हो सकते है।

क साधारण जल का प्रयोग – सामान्य स्थिति में एनिमा के लिए साधारण जल का प्रयोग किया जा सकता है। यह शील अथवा गुनगुना भी हो सकता है। शीतल जल द्वारा (8 डिग्री से 18 डिग्री से.) वृहदान्त्र का अंतिम भाग सिकुड़ता है। इस सिकुड़ने की प्रक्रिया में आंतोंको बल मिलता है। आंतों के नीचे के भाग मलाशय एवं अंतिम कोलोन के भाग में स्थित रक्त वाहिनियां, कोष एवं उत्तकों के सिकुडने में इनमें संचित मल का निष्कासन आंतों में होता है एवंज ल के साथ गुदाद्वार द्वारा यह मल शरीर से बाहर निकल जाता है। गुनगुने अच्छा गरम जल के एनिमा के द्वारा एनिमा (36 डिग्री से 50 डिग्री से.) से आंतों मलाशय एवं इसके आस पास के अंगों में स्थित रक्त वाहिनियां फैलती है। आंतों के भीतर जल का पृष्ठ तनाव गुनगुने पानी से कम हो जाता है। इससे आंतों के नीचे मल ढीला होकर आसानी से गुदाद्वार द्वारा बाहर निकल जाता है।

ख नीबू पानी के द्रव्य का एनिमा – एक लीटर जल में एक नींबू को निचोड़कर छान लें। आवश्यकतानुसार 250 एमएल से 1 लीटर तक नींबू जल का प्रयोग एनिमा में करते है।पूर्ववत वर्णन के अनुसार गरम गुनगुना अथवा शीतल ताप क नींबू पानी प्रयोग में लाया जा सकता है।

ग खट्टे मट्ठे का प्रयोग – मुट्ठे को सामान्य ताप पर रखकर थोड़ा सा खट्टा कर लें एवं अच्छा जल मिलाकर एनिमा के लिए प्रयोग कर सकते है। खट्टे मट्ठे का एनिमा मल को बाहर निकालने में अत्यन्त सहयोगी सिद्ध हुआ है।

घ नमकीन गुनगुना एनिमा पानी – निम्मन रक्त चाप निर्जलीकरण में लवणों की कमी में नमकीन पानी का एनिमा दिया जाता है।

च नींबू पानी का एनिमा – आंतों की नीचे के भाग की एवं मलाशय की सफाई के लिए नींबू पानी का एनिमा दिया जाता है।

छ नीम का एनिमा – एक मुट्ठे नीम के पत्तों को जल में उबालकर छानकर ठंडा कर लें। संक्रमण घाव आदि की स्थिति में नीम को पानी देना लाभदायक है।

ज ताप एवं मात्रा घटते या क्रम में एनिमा (ग्रेजुएटिड एनिमा) आंतों के अधिक विस्तार की स्थिति में जल आते अधिक फैल जाती है। जो ताप एवं मात्रा घटते क्रम एनिमा लाभकारी है। प्रारम्भ में एनिमा पानी की मात्रा 2 लीटर से प्रारम्भ करते है प्रारम्भिक ताप 100डिगी फे. तक होना चाहिए। अर्थात 15 दिन के गेजुएटिड एनिमा में पहले दिन 2 लीटर एनिमा जल एवं 100 डिग्री फे. ताप का पानी आंतों में चढ़ाया जाताहै। तत्पश्चात् 15 दिन तक प्रतिदिन 195मि.ली. पानी कम व प्रतिदिन 2 डिग्री फे. ताप को कम किया जाता है। इस प्रकार 15 वें दिन 125 मि.ली. पानी व 70 डिग्री फे. ताप रह जाता है।

12.6 एनिमा से पूर्व व बाद में आव□यक बातें (सावधानियां)

एनिमा प्राकृतिक चिकित्सा की अहम् उपचार क्रिया है। इसके लिए आवश्यक जानाकारी होना अति महत्वपूर्ण है। एनिमा के विषय में यहां पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण सहित आवश्यक जानकारियां दी गयी है। जो कि निम्नावत् है –

1 एनिमा से पूर्व प्राकृतिक चिकित्सा – कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर पूर्व कुछ प्राकृतिक चिकित्सा साधनों का अपनाना आवश्यक है जैसे टब

स्नान, मिट्टी पट्टी, गीली पट्टी, लपेट, ठंडा गरम सेक आदि प्राकृतिक चिकित्सा साधनों से आंतों में स्थित मल को ढीला करने में सहायक है। इस चिकित्सा से आंतों की दीवारों का मल मुलायम होने लगता है। इसके पश्चात एनिमा की क्रिया द्वारा मल आसानी से बाहर निकलता है।

2 एनिमा की आदत – एनिमा एक उपचार क्रिया है जो आंतों की सफाई में सहयोगी है परन्तु प्रश्न यह उठता है कि कुछ दिनों तक (महिनों तक) एनिमा लेने से शौच एनिमा निर्भर तो नहीं हो जाती। क्या बिना एनिमा के मल का निष्कासन ठीक प्रकार से तो होगा? रेशेदार आहार, सलाद, अंकुरित अथवा फलों का भोजन के प्रयोग शौच को एनिमा निर्भर नहीं होने देता। इसका एक समाधान यह है कि एनिमा द्रव्य की मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिए एवं धीरे धीरे कम करनी चाहिए। उदाहरण के लिए एक सप्ताह तक यदि उपचार हेतु एनिमा प्रतिदिन दिया जाता है तो धीरे धीरे पहले एक दिन फिर 2–3 दिन छोड़कर एनिमा दें। आप देखेंगे कि बिना एनिमे के भी मल निष्कासन होने लगेगा। इस प्रकार एनिमा की आदत नहीं पड़ेगी।

3 एनिमा के पश्चात प्राकृतिक चिकित्सा – एनिमा के पश्चात बहुत सी प्राकृतिक क्रियाऐं स्वास्थ्य लाभ में अति सहयोगी हैं। एनिमा के पश्चात मालिश, गरम ठंडा सेक, टप स्नान, वाष्प स्नान, टप स्नान, रीढ़ स्नान आदि प्राकृतिक चिकित्सा क्रियाएं प्रतिविपकरण में सहयागी है।

4 भोजन एवं एनिमा – एनिमा लेने क`कम से कम एक घण्टे तक ठोस भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए तथा 30 मिनट तक तरल पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। एनिमे के पश्चात आंतों को सामान्य रूप से पाचक रसों के स्त्रावण के संतुलन में थोड़ा समय लगता है। इसी प्रकार भोजन के 3–4 घंटे तक सामान्यतः एनिमा नहीं दिया जाना चाएि। एनिमा आंतों की क्रमाकुंचन को कुछ देर के लिए कम करता है। भोजन को पचाने के लिए ऊर्जा में कुछ समय तक ह्रास होता है जिससे पाचन क्रिया पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इसीलिए भोजन के 3–4 घंटे तक एनिमा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

5 एनिमा एवं उपवास – उपवास के दौरान अंगों द्वारा मल की उत्सर्जन होता है। यकृत, अमाशय एवं अन्य अंगों पर मलों का निष्कासन होता है। ऐसे में शरीर पर उभाड़ों को बाहर निकालने के लिए दैनिक एनिमे की आवश्यकता पड़ती है। शरीर के छिद्रों से जिनसे मल का उत्सर्जन होता है। सफाई की प्रक्रिया को बहाया जाता है। उपवास के दौरान दैनिक एनिमे की क्रिया शरीर पर उभाड़ों के प्रभाव को कम करती है।

6 एनिमा एवं सामान्य शौच – एनिमे की क्रिया व सामान्य शौच जो प्रतिदिन आती है में अन्तर है। एनिमा की क्रिया वास्तव में दैनिक शोच के पश्चात् अलग से होनी चाहिए।

7 यदि शौच का दबाव हो – एनिमा लेते समय अगर शौच का दबाव बनने लगे तो एनिमा द्रव्य आंतों में चढ़ाना बन्द कर देना चाहिए। द्रव्य चढ़ाना चाहिए। इस द्रव्य को पेट में लगातार 10 से 15 मिनट तक रोकने का प्रयास करें। चुपचाप बाई करवट लेटना चाहिए।

8 एनिमा प्राकृतिक दैनिक शौच के पश्चात् – जैविक घड़ी के अनुसार प्रातः काल प्रतिदिन शौच आना अनिवार्य है। किसी किसी को यह खुलकर आता है किसी किसी को यह कम मात्रा में आता है। अथवा बार बार आता है। एनिमा लेने से पूर्व दैनिक शौच से निवृत होना आवश्यक है।

9 आंतों की संवेदनशीलता की स्थिति में – जब आंतों किसी रोग का संक्रमण अथवा घाव के कारण संवेदनशील हो गयी हो तो ऐसे में एनिमा द्रव्य कम दबाव के साथ साथ धीरे धीरे चढ़ाना चाहिए। एनिमा रबड़ ट्यूब को भी गुदामार्ग से सावधानी एवं धीरे धीरे चढ़ाना चाहिए। किसी भी प्रकार का यांत्रिक दबाव इस स्थिति में आंतों पर नहीं पड़ना चाहिए।

10 एनिमा यंत्र साफ हो – एनिमा यंत्र ट्यूब एवं पॉट स्वच्छ रहना आवश्यक है। इसके लिए नली के अंदर कोई कीट पतंगा चीटी आदि होगी तो निकल जाती है। यंत्र के साथ होने से संक्रमण का खतरा भी टल जाता है।

11 एनिमा पानी की मात्रा – प्राकृतिक चिकित्सा में एनिमा 6 माह के बालक से पुनः प्रोढ एवं वृद्धावस्था तक अलग अलग होती है। 6 माह के बालक को 100 मि.ली. से 500 मि.ली. तक ही एनिमा दिया जा सकता है। 10

वर्ष से 6 वर्ष तक 100 मि.ली. से 200 मि.ली. तक ही एनिमा पानी पर्याप्त है। 6 वर्ष से 12 वर्ष तक 250 मि.ली. से आधा लीटर तक 500 मि.ली. से 1 लीटर तक एनिमा पानी पर्याप्त है।

25 वर्ष की आयु से ऊपर 1 लीटर से 1.5 लीटर तक एनिमा पानी दिया जा सकता है। हालांकि यह व्यक्ति व्यक्ति पर भी निर्भर करता है। मलाशय एवं आंतों में अधिक वायु एवं आकार तल होने पर अधिक मात्रा में एनिमा पानी आंतों में प्रवेश किया जा सकता है। एनिमा पानी की अधिक मात्रा से उत्तम एनिमा पानी को मलाशय एवं आंतों के भीतर रोकना है। जितनी देर तक एनिमा पानी आंतों को अपने भीतर रोक सकते है। उतना ही मल निष्कासन उत्तम होता है। अधिक देर तक पानी को आंतों व मलाशय में रोकने से पानी का पुनः आवेशषित होता है। आंतों में तरावट आनी है। इससे आंते मुलायम भी होती है। मल फुलकर बाहर निकलता है।

12 जल का सेवन एनिमे से पूर्व – एनिमा सेने से पूर्व 2–3 बार उत्तम माना गया है। जल का सेवन करने से आंतों के ऊपरी भाग में व अमाशय से अपचित, पचित भोजन पर नीचे की ओर दबाव पड़ता है। यह दबाव नीचे आंतों (कोलोन) तक को प्रभावित करता है। जल पीने के बाद भी गुदा मार्ग से चढ़ाया गया जल अधिक मल को लेकर बाहर निकलता है। यह निकाला गया मल जब कोलोन से खाली होता है तो आंतों के ऊपरी भाग (डयूडिनम व सीकम) में पाचित व अपचित भोजन नीचे की ओर खिसकता है जिससे अगले मल को आंतों से स्वतः सुलभ निकलने में आसानी बनी रहती है। आंतों की क्रमाकुंचन गति भी सामान्य होती है व पाचन रसो का स्त्रावण भी आसानी से होता है।

13 एनिमा टेबल व शौचालय – जिस स्थान पर एनिमा दिया जा रहा हो उसे शौचालय की दूरी अधिक नहीं होनी चाहिए। कुछ कमजोर रोगी अथवा एनिमा रोगी पानी को न रोक पाने में असफल रोगी बीच में ही एनिमा पानी को मल के साथ पिचकारी की भांति बाहर निकाल देते है। उससे

बीच का स्थान गंदा हो जाता है। कपड़े खराब होने की संभावना भी बढ़ जाती है।

14 एनिमा यंत्र की सफाई – एनिने की क्रियापूर्ण होने के पश्चात एनिमा यंत्र को साबुन से अच्छी प्रकार से धोकर सुखा देना चाहिए। कभी भी एनिमा यंत्र में पानी को थोड़ी भी मात्रा में भरकर नहीं छोड़ना चाहिए।गीला एनिमा यंत्र कवक अथवा जीवाणुाओं का घर बन जाता है। इस प्रकार प्रतिदिन एनिमा यंत्र की सफाई आवश्यक है।

15 एनिमा पानी की दबाव – एनिमा लेते वक्त एनिमा पानी का दबाव कम से कम व धीमी गति का होना चाहिए। तेज दबाव के कारण पानी का बहाव भी तेजहोता है। इससे पानी भी कम मात्रा में आंतों में अधिक मात्रा में प्रवेश होता है एवं अधिक देर तक एनिमा पानी को रोकना संभव होता है।

16 क्या एक बार एनिमा पर्याप्त है? एनिमा एकया दो बार मल को आंतों से बाहर निकाल पाने में सक्षम है परन्तु केवल एनिमा लेते रहने से शरीर पूर्णतः स्वस्थ्य नहीं रह सकता। पूर्व व पश्चात् प्राकृतिक के चिकित्सा क्रियाओं को भी अपनाना आवश्यक है। मिट्टी व पानी के चिकित्सा साधन आंतो से मल का फुलाते है एवं आंतों को मुलायम बनाते है। व एनिमा फुले मल व मुलायम मल को शरीर से बाहर निकालने में सहयोगी है। इन प्राकृतिक क्रियाओं के साथ साथ आहार का प्रबन्धन भी आवश्यक है। सलाद, फल, अंकुरित एक हल्का आहार लेना आवश्यक है। भोजन में प्रतिदिन 30 से 40 प्रतिशत तक रेशेदार भोजन होना आवश्यक है। यह रेशदार आहार अथवा खक्षंश उपतेक्ष रूप से पाचन क्रिया का नियमन करता है। क्रमाकुंचन गति रेशदार आहार से ठीक होने लगती है।

इस प्रकार मात्रा एनिमा स्वस्थ होने का एकमात्र समाधान नहीं है। एनिमे के साथ साथ अन्य प्राकृतिक उपचार एवं प्राकृतिक आहार आवश्यक है।

12.7 एनिमा का महत्व

प्राकृतिक चिकित्सा के एनिमा सबसे महत्वपूर्ण चिकित्सा साधन है। अन्य किसी भी साधन को प्राकृतिक चिकित्सा में नजर अंदाज किया जा सकता है परन्तु एनिमा को नहीं किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा में भोजन ग्रहण करने से भी अधिक मलों को बाहर

निकलने पर जोर दिया गया है। इससे आंतों की सफाई पहले नम्बर पर आती है। एनिमा केवल मलाशय एक आंखों की सफाई तक ही सीमित नहीं है। एनिमा के लाभ अनन्त है। इसका महत्व बहुत अधिक है। एनिमाद्वारा निम्न लाभ प्राप्त होता है।

1 एनिमा से मलाशय एवं आंतों के नीचे के भाग का मल निकलता है।

2 शिथिल पड़ी आंतों में हलचल, क्रमानुकुंचन गति प्रारम्भ होने लगती है। यह गति सामान्य होने पर पाचन संस्थान में पाचन, अवशोषण एवं मल के निष्कासन की प्रक्रिया सामान्य होने लगती है जो कि शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए अहम् है।

3 एनिमा से शरीर निरोगी, निर्मल कांतिमय एवं सुन्दर दिखने लगता है।

4 टांतों की सामान्य सफाई होती है एवं रक्त की शुद्धि होती है।

5 रस सेरक्त, रक्त से मांस, मांस से भेद, भेद से मज्जा, मज्जा से अस्थि एवं अस्थि से वीर्य शुद्ध होता है। जिसे वह वीर्य शुद्ध है उससे वीर्यवान, ओजस्वी सन्तान का जन्म होता है।

6 कब्ज जो हजारों रोगों की नानी है एनिमा से कब्ज का नाश होता है। कब्ज के होने से शरीर में सड़न दुर्गन्ध एवं रोगों का संचय होना आरम्भ हो जाता है। एनिमा कब्ज नाशक है।

7 कब्ज के ठीक होने से आंतों की गर्मी शांत होती है। विजातीय द्रव्य शरीर के बाहर निकलते है। जिससे रोगों के व संक्रमण होने की संभावना क्षीण होती है। क्योंकि विजातीय द्रव्यों के शरीर में रूकने के कारण ही सूक्ष्म रोगाणुओं के पनपने की सम्भावना बनी रहती है।

8 एनिमा रक्त की शुद्धि में भी सहयोगी है। रक्त दाब दूर होते है।

9 एनिमा रेचक दवाओं से छूटकारा दिलाता है। रेचक दवाओं से अपचे भोजन के साथ पर पचित भोजन जिसमें से अवशोषण नहीं हुआ है को भी आंतों से बाहर निकाल फेंकता है। उसमें कुछ समय पश्चात शरीर में पोषक तत्वों की कमी होने लगती है। इस प्रकार एनिमा रेचक दवाओं का एक सुंदर प्राकृतिक विकल्प है जो शरीर को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करने मेंसहयोग करता है।

10 आंतों में मल के पड़े रहने से हानिकारक सूक्ष्म जीवों के पनपने की सम्भावना बनी रहती है। एनिमा इस मल को बाहर निकाल हानिकारक सूक्ष्मजीवों से शरीर की रक्षा करता है।

11 ज्वर के प्रारम्भिक लक्षणों में एनिमा शरीर का ज्वर केरागों से बचाता है।

12 गर्भवती महिलओं के लिए एनिमा गर्भकाल को सामान्य चलाने में सहायक है। प्रसव से पूर्व एनिमा लेने से प्रसव सुखपूर्वक होता है।

13 बहुत से लक्षण रोगों (बुखार, जुकाम, दस्त, उल्टी आदि में) एनिमा तत्काल लाभ प्रदान करता है।

14 जीर्ण रोगों के असर कोकम करने में भी एनिमा अत्यन्त लाभकारी है।

15 एनिमा को मुख्य उपचार साधन न मानकर सहायक उपचार साधन समझें। पूर्व स्वास्थ्य लाभ के लिए अन्य प्राकृतिक उपचार एक साधन एवं भोजन का प्राकृतिक नियमन आवश्यक है। रचनात्मक सोच भी स्वास्थ्य को स्थाई लाभ प्रदान करती है।

12.8 सारां

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट जानकारी मिली कि एनिमा कब्ज हटाने बड़ी आंत की सफाई करने हेतु विभिन्न प्रकार क`जल या द्रव्य (शोधित रूप में) मल द्वारा बड़ी आंत में चढ़ाया जाता है। कुछ विशेष रोगों बवासीर, फोड़ा, बड़ी आंत का टयूमर व आंत्रशोध इत्यादि वर्जित है। इससे जो कब्ज विभिन्न दस्तावर औषधियों से दूर नहीं हो पाती है वह इसके द्वारा अहिंसक तरीके से हटाई जा सकती है। इसमें कौन से द्रव्यों अथवा पानी का प्रयोग किया जाता है। एनिमा लेने से पहले क्या दूसरे सहायक उपचार दिए जा सकते है। एनिमा करने के पश्चात् किन बातों का तथा खान–पान का ध्यान रखना आवश्यक है। जिससे दोबारा कब्ज का शिकार ना होना पड़े। स्वास्थ्य में ऐनिमा का किस प्रकार और कितना महत्व है, उसकी संपूर्ण जानकारी आपको इस इकाई के माध्यम से दी गई है।

12.9 बोधात्मक प्र न

1 एनिमें का आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयोग पर प्रकाश डालिए।

2 एनिमा की प्रक्रिया का वर्णन करो।

3 एनिमा के संबंध में कौन कौन सी जटिलताएं है। वर्णन करो।

4 एनिमा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के जल का वर्णन करें।

12.10 संदर्भ ग्रंथ

1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – राकेश जिन्दल
2. वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ.पी.सक्सेना
3. बुनियादी प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. सुखबीर सिंह